कक्षा 11

चित्रकला

भारतीय कला

भाग–1

भारतीय कला

भारतीय कला भाग–I

कक्षा 11 के चित्रकला विषय की पाठ्य पुस्तक

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर

पाठ्य पुस्तक निर्माण समिति

पुस्तक –भारतीय कला (भाग–1) कक्षा–11

संयोजक एवं लेखक :– डॉ. मदन सिंह राठौड़, आचार्य
दृश्यकला विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

लेखकगण :–

1. डॉ. किरण सरना, आचार्य
दृश्यकला विभाग, वनस्थली विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वनस्थली
2. डॉ. इन्द्रसिंह राजपुरोहित, विभागाध्यक्ष
चित्रकला विभाग, राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर
3. डॉ. शालिनी भारती, विभागाध्यक्ष
चित्रकला विभाग, राजकीय महाविद्यालय, कोटा
4. डॉ. रामसिंह भाटी, सहायक आचार्य
चित्रकला विभाग, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर
5. डॉ. महेश सिंह, सहआचार्य, दृश्य कला विभाग
वनस्थली विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वनस्थली
6. श्री सुबोध कुमार जोशी, प्रधानाचार्य
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, बिछौर, चित्तौड़गढ़

प्रस्तावना

"कलांति ददातीति" अर्थात मानवीय अनुभूत भावों की सौंदर्यपूर्ण अभिव्यक्ति जो सुख प्रदान करने वाली हो कला है।

मानव अनुभूति और कल्पना द्वारा जो बिम्ब मन में अमूर्त सृजित होते हैं वो सांसारिक उपादानों के माध्यम से कला रूप में अभिव्यक्त होते हैं, जिसमें "वसुधैव कुटुम्बकम्" भावाग्रह सामाजिक रूप धारण कर जीवन को आनन्दमयी व परिपूर्ण बनाते हुए मानव सभ्यता और संस्कृति के उत्तरोत्तर उन्नयन में सृजनरत रहता है। यही विशुद्ध सृजन स्वयं में सत्यनिष्ठ है तथा शिवत्व का भाव समाहित किये होता है, जो कि कलाकार के सौन्दर्यबोध से उद्भासित होकर कलाकृति में जीवन्त हो उठता है।

भारतीय कला परम्परा में "सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" जीवन दर्शन की मूल दार्शनिक अवधारणा रही है, जहाँ सौन्दर्य सदैव सत्य का अनुगामी और शिवत्व को धारित किये होता है। यही कारण है कि भारतीय कला मानवीय मूल्यों की संवाहक है जिसमें कल्पना–प्रियता, मानव व मानवेत्तर प्रकृति का सामंजस्य, धार्मिक सहिष्णुता, आदर्शवादिता और प्रतीकात्मकता जैसे नैतिक आग्रह अन्तर्निहित हैं।

भारतीय कला ने समस्त भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक विषमताओं तथा सांस्कृतिक व धार्मिक विभिन्नताओं के उपरान्त भी न केवल अपने चिंतन स्वरूप को बचाये रखा अपितु नवीन सांस्कृतिक धाराओं को आत्मसात् कर विकास के पथ पर आज भी निरन्तर अग्रसर है।

भारतीय कला को जानने के लिये आवश्यक है कि उसके मूल स्वरूप और तत्कालीन भारतीय जीवन–दर्शन को ठीक से समझने तथा उसके व्यावहारिक पक्ष को कला में खोजने का प्रयास किया जाए।

भारतीय दर्शन में आध्यात्मिक उष्मा विशेष महत्व के साथ स्थापित है। अतः हिन्दू, बौद्ध, जैन आदि सभी धर्म विषयक चित्रण और मूर्तन में आध्यात्मिक कांति का विस्तार व्याप्त है वहीं व्यावहारिक पक्ष विषयक सृजन में निर्वेद व उत्साह का भाव नवजीवन को संचारित करता जान पड़ता है, जो कि जीवन को समग्र बनाने में सहायक है।

कालान्तर में भारतीय कला ने प्राग्–प्राक् कला रूपों को ग्रहण करते हुये राजवंशीय संरक्षण में पोषित सांची, भरहुत, अजन्ता, बाघ, बादामी, ऐलोरा, एलिफेंटा, लघु चित्रण रूपों और बंगाल शैली से निकल कर आधुनिक कालखण्ड तक की विकास यात्रा में नवीन आयामों को स्थापित किया है। यहाँ के कलाकारों ने विषय और संयोजन की दृष्टि से अनेक नवीन प्रयोग चित्रकला और मूर्तिकला में किये और इस प्रयोगवादी धारा के फलस्वरूप ही भारतीय कला ने तात्कालीन परिवेश में जो अपनी श्रेष्ठता सिद्ध की, वह अजर अमर हो गयी।

प्रत्येक राष्ट्र की सम्प्रभुता की पहचान उसकी सभ्यता और सांस्कृतिक परम्परा में निहित है। इस परम्परा को अखण्ड व अक्षुण बनाये रखने के लिये आवश्यक है कि परम्परागत मौलिक विशेषताओं का अग्रिम पीढ़ी को हस्तांतरण हो अस्तु सशक्त माध्यम के रूप में कला और शिक्षा ही सवर्था उपयुक्त जान पड़ते हैं।

प्रश्न यह उठता है कि भारतीय कला की इस गौरवमयी ऐतिहासिक एवं समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर का अध्ययन अथवा प्रशिक्षण कैसे हो ? चूंकि कला ही व्यक्तित्व का वह रचनात्मक पहलू है जो शिक्षा के सम्पूर्ण स्वरूप

को बौद्धिक एवं तार्किक रूप से विश्लेषित कर मानव के व्यावहारिक पक्ष को परिवर्तित करने में सक्षम है। अतः विद्यार्थी को सभी पक्षों के बुनियादी अध्ययन के साथ कला का अध्ययन भी समान रूप से महत्वपूर्ण व आवश्यक है।

शिक्षा की मूल अवधारणा में कला शिक्षा की आवश्यकता को, इसी मंशा के चलते केन्द्रीय शिक्षा बोर्ड और माध्यमिक शिक्षा बोर्ड में विद्यालयी शिक्षा के स्तर पर चरणबद्ध तरीके से लागू किया है।

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर द्वारा कक्षा ग्यारहवीं के चित्रकला विषय के पाठ्यक्रमानुसार सैद्धान्तिक प्रश्न पत्र हेतु प्रस्तुत पुस्तक "भारतीय कला, भाग–1" को तीन इकाईयों में विभक्त कर अध्ययन सम्मत बनाते हुये विभिन्न कालखण्डों में भारतीय कला इतिहास के क्रमिक विकास के प्रस्तुतीकरण में खण्ड "अ" में कला, कला के तत्व सिद्धान्त, माध्यम, तकनीक व कला शिक्षा और समाज विषयक अध्ययन सामग्री जो कला के अर्थ व महत्ता को रेखांकित करती है। वहीं खण्ड "ब" में भारतीय चित्रकला के प्रारम्भिक चरणों में अजन्ता, बाघ, बादामी एवं लघुचित्रण शैली के सन्दर्भ रूप में पाल एवं जैन शैली को अध्ययन वस्तु बनाया है। चूंकि पुस्तक का प्रस्तुतीकरण कालक्रम के अनुसार है जिसमें कला में मूर्तन की अवधारणा को सैंधव सभ्यता, बौद्ध, हिन्दू, जैन मूर्तिशिल्पों के विशेष संदर्भ में मौर्य, शुंग, सातवाहन, कुषाण व गुप्तकालीन मूर्तिकला का विश्लेषणात्मक अध्ययन दिया गया है। पुस्तक में यथास्थान चित्र, मानचित्र एवं रेखांकन आदि का समावेश अध्ययन के उद्धेश्य से सहयोगी हैं।

छात्रों को विषय के सैद्धान्तिक अध्ययन के साथ प्रायोगिक कार्य में भी सहयोग प्राप्त हो इस हेतु पुस्तक के अन्तिम अध्याय में प्रायोगिक पक्ष के अध्ययन प्रणाली की चर्चा की गई है। चूंकि प्रायोगिक कार्य में अध्यापक स्वयं दिशा निर्देश हेतु उपलब्ध होता है फिर भी छात्रों को सहयोग की दृष्टि से वस्तु–चित्रण प्रविधि, रंगांकन तकनीक एवं संयोजन हेतु आवश्यक निर्देशों के साथ–साथ तकनीकी शब्दावली और विशेष परिभाषाओं का समावेश किया गया है।

पुस्तक लेखन में सभी सहलेखकों ने अपने अनुभव और ज्ञान से मौलिक एवं प्रभावी लेखन प्रस्तुत किया है, जिस हेतु मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक की भाषा यथासम्भव वैज्ञानिक, तार्किक व बोधगम्य रखने का प्रयास किया गया है। पुस्तक लेखन व सम्पादन में पूर्ण सावधानी बरती गयी है फिर भी मानवीय त्रुटि सम्भव है, सुधार एवं सुझाव हेतु सुधिजनों के विचारों का सदैव स्वागत है। निश्चित ही पाठकगण के सुझाव आगामी प्रकाशन को अधिक परिष्कृत करने में सहायक होंगे।

डॉ. मदनसिंह राठौड़

संयोजक

अनुक्रमणिका

खण्ड–अ

इकाई–1

कला, कला तत्व और सिद्धांत, माध्यम और तकनीक, कला, शिक्षा और समाज

1 कला और कला के विभिन्न स्वरूप 1
2 चित्रकला के मूलाधार 12
3 चित्रण माध्यम एवं तकनीक 31
4 कला, शिक्षा और समाज 40

खण्ड–ब

इकाई–2

भारतीय चित्रकला

5 प्रागैतिहासिक कला 50
6 बौद्धकालीन चित्रकला 57
7 पाल एवं अप्रभ्रंश/जैन शैली 80

खण्ड–स

इकाई–3

सिन्धुघाटी मूर्ति शिल्प, बौद्ध, जैन तथा हिन्दू मूर्ति शिल्प

8 सिन्धुघाटी सभ्यता के मूर्ति शिल्प – मोहनजोदड़ो और हड़प्पा 85
9 बौद्ध, जैन तथा हिन्दू मूर्ति शिल्प 96

प्रायोगिक चित्रकला

10 अंकन एवं अनुअंकन 122

विशिष्ट परिभाषाएँ 131
पारिभाषिक शब्दावली 138

खण्ड–अ

इकाई–1

कला, कला तत्व और सिद्धांत, माध्यम और तकनीक, कला शिक्षा और समाज

अध्याय

1

कला और कला के विभिन्न स्वरूप

(अ) कला – अर्थ एवं परिभाषा

कला का अर्थ –

कला संस्कृति की सुन्दरतम् अनुभूति है। जो संस्कृति जितनी उदार होती है, उसकी कला में उतना ही सूक्ष्म सौन्दर्य सहज साकार होता है। उदात्तता की दृष्टि से प्राचीन भारतीय संस्कृति विश्व में श्रेष्ठ है।

अनादिकाल से ही कला के प्रति मानव के हृदय में स्वाभाविक आकर्षण रहा है। कला मानव आत्मा के बाह्य और आन्तरिक संसार के प्रभाव की प्रतिक्रिया है, इसलिए वह आत्मा की अभिव्यक्ति है।

कला की अभिव्यक्ति में सामान्यतः तीन तत्व कार्य करते हैं–

1. सौन्दर्य के प्रति मानव का स्वाभाविक आकर्षण और सौन्दर्य को स्वतः उत्पन्न करने की भावना।
2. संसार की वस्तुओं, दृश्यों एवं आकृतियों का अनुकरण और उनकी यथार्थ प्रतिकृति करने की भावना।
3. कलाकार के द्वारा अनुभूत भावनाओं को मूर्त रूप में अंकित करके दूसरों के लिए व्यक्त करने की प्रवृत्ति।

प्रथम प्रकार की कला में सुन्दर आकृति ही सब कुछ है। अतः इस प्रकार की कला अधिकांश में आकृतिमूलक है। दूसरे प्रकार की कला में पहले से उपस्थित किसी वस्तु की अनुभूति प्रस्तुत की जाती है। जो प्रतिकृतिमूलक है और तीसरे प्रकार की कला पूर्णतः अभिव्यंजनात्मक है। उसमें आकृति का आकार, रंग–रूप आदि सब गौण है। उसकी सफलता इसी में है कि कलाकार जिस भावना को व्यक्त करना चाहता है, उसे कितने सशक्त रूप में व्यक्त कर सकता है।

कला शब्द से तात्पर्य है स्पष्ट अभिव्यक्ति। ''कंलाति'' अर्थात् सुख प्रदान करने वाली मधुर कृति भी कहलाती है।

कला शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद के आठवें मण्डल में ''यथा कलां यथा शफं'' के रूप में प्रयुक्त हुआ भारत में प्राचीन काल में कला के लिए शिल्प शब्द का भी प्रयोग हुआ। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में शिल्प और कला दोनों शब्दों का अलग–अलग प्रयोग किया। ''न तज्जानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न साकला।''

भारतीय दर्शन में कला को ''सत्यं, शिवम्, सुन्दरम्'' रूप में माना गया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर का मानना है कि ''जो सत्य है, जो सुन्दर है, जो कल्याणकारी है वही कला है। गाँधी जी ने कला को आत्मा का ईश्वरीय संगीत कहा है। भारत में जीवन से जुड़े प्रत्येक कार्य को कला मानते हुए कलाओं की संख्याएँ निर्धारित की गई हैं। जैसे वात्स्यायन के कामसूत्र में (64) चौसठ, ललितविस्तर में (86) छियासी, शुक्रनीतिसार में (64) चौसठ कलाओं एवं प्रबन्ध कोश में (72) बहत्तर प्रकार की कलाओं का वर्णन प्राप्त होता है।

कला की परिभाषाएँ

कला कल्याण की जननी है। इस धरती पर मनुष्य की उदयवेला का इतिहास कला के ही हाथों से लिखा गया। विश्वात्मा की सर्जनाशक्ति होने के कारण सृष्टि के समस्त पदार्थों में कला का **आधार** है। कला अनन्तरूपा है। प्रकृति की

प्रत्येक रचना तथा जीवन के प्रत्येक क्रिया–कलाप में कला दृष्टिगोचर होती है। यह जीवन का अनुपम और अमूल्य अंग है।

कला के संबंध में समय–समय पर विद्धानों ने अपने विचार दिए हैं। यथा नन्दलाल बसु के शब्दों में, कला आनन्द की अभिव्यक्ति है। कलाकार अपने मानस में जो आनन्द अनुभव करता है, उसी को अनुभव करने के लिए वह रचना करता है।

तत्वतः अपने व्यापक रूप में कला मानव की सृजनात्मक शक्ति का किसी भी मानसिक तथा शारीरिक, उपयोगी या आनन्दमयी या दोनों से युक्त वस्तु के निर्माण के लिए किया गया कौशल–युक्त उपक्रम है।

वस्तुतः मनुष्य अपनी इन्द्रियों व मन द्वारा, बाह्य जगत की समस्त वस्तुओं का स्थूल ज्ञान एवं उनके प्रति रसानुभूति का अनुभव करता है और उसे ही कला के माध्यम से दूसरों के सामने प्रदर्शित करता है। कला केवल मनुष्य तक ही सीमित नहीं है। पशु–पक्षी और कीट पतंगों के क्रिया–कलापों में भी कलात्मकता परिलक्षित होती है। ईश्वर की रचना में मानव को सर्वश्रेष्ठ कृति माना जाता है। अतः उस में कला के प्रति रूझान होना स्वाभाविक है। इसी स्वाभाविक प्रवृत्ति के फलस्वरूप वह चित्र रचना करता है।

कंलाति अर्थात् सुख प्रदान करने वाली मधुर कृति कला कहलाती है, किन्तु इसके साथ–साथ 'कला' शब्द का सामान्य अर्थ कुशलतापूर्वक किया गया कार्य होता है। प्राचीन काल में ''शास्त्रों'' में (64) चौंसठ प्रकार की मूल कलाओं व कालान्तर में दृश्य कला, ललित कला तथा शिल्प कला में वर्गीकृत हुई। जिसे आधुनिक काल में कलाओं को ललित कला, शिल्प, कौशल आदि के नामों से जाना जाता है। मानव जीवन के जितने भी क्रिया–कलाप व चेष्टाएं हैं वे सब कला के अन्तर्गत ही आती हैं। सामान्यतः कला के गुणों के आधार पर दो वर्गो में विभाजित किया गया है–

1. ललित कला
2. उपयोगी कला

ललित कला का सम्बन्ध, सौन्दर्य बोध व आध्यात्मिक चेतना से है जबकि उपयोगी कला का लक्ष्य मानव की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति से है। यदि कलाकृति बौद्धिक सौन्दर्य से सम्बन्धित है तो वह ललित कला वर्ग में रखी जाएगी और यदि कृति भौतिक सौन्दर्य से सम्बन्धित है तो वह उपयोगी कला वर्ग में रखी जाएगी।

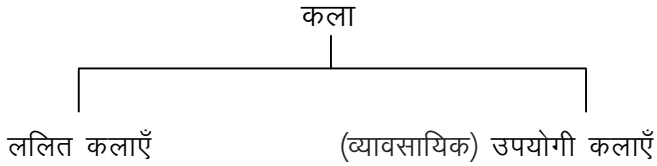

उपयोगी कला के अन्तर्गत एक प्रकार की अनेक कृतियों का सृजन किया जाता है परन्तु ललित कलाओं में मौलिकता व रचनात्मकता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। ललित कला का उद्देश्य अभिव्यंजना के साथ–साथ आनन्द की प्राप्ति है। तात्त्विक दृष्टि से इन कलाओं के विशिष्ट गुण होते हैं और इन गुणों को ही आधार मान कर यह विभाजन किया जाता है एवं ललित कलाएँ मानव के सौन्दर्य, संस्कृति एवं आनन्द पक्ष से जुड़ी होती हैं। ललित कलाओं के अनेक स्वरूप एवं पक्ष माने जाते है एवं उनकी प्रकृति के आधार पर उनके विभाजन किए जाते हैं।

ललित कलाएँ

ललित शब्द से ही **'ललित कलाओं'** की उत्पति हुई। ललित कलाओं का विभाजन निम्न प्रकार से भी किया जाता है–

दृश्य कलाएँ रुप पर आधारित कला है इसलिये इन्हें **रूपात्मक कलाएँ** और मंचीय कलाएँ गति पर आधारित कला है, इसलिये इन्हें **गत्यात्मक कलाएँ या प्रदर्शनकारी कलाएँ** भी कहा जाता है।

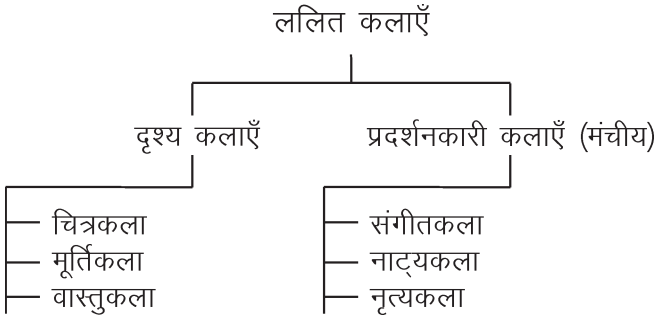

उपरोक्त कलाओं की सामान्य विशेषताएँ निम्न है –

1. **चित्रकला :** भाव–तत्त्व, विचारों तथा कल्पनाओं को प्रकटीकरण करने की कला अर्थात **व्यंजनाश्रित कला।**
2. **मूर्तिकला :** भाव व सामग्री द्वारा रूप व्यंजित करने की कला अर्थात **रूपाश्रित कला।**
3. **वास्तुकला** : मानव मन की उच्च आकांक्षाओं, विशाल योजनाओं को भौतिक माध्यमों द्वारा प्रकटीकरण करने की कला अर्थात **आकाराश्रित कला।**

4. **संगीतकला** : स्वर, गीत व वाद्यों के द्वारा सार तत्त्वों को स्वरों– तालों– लहरियों – ध्वनियों के माध्यम से प्रस्तुत करने की कला अर्थात **स्वराश्रित** व **ध्वनि आश्रित कला**।
5. **नाट्यकला** : अंग–संचालन, गीत, भाव और ताल के समन्वय को ऐन्द्रिक भावों द्वारा प्रस्तुत करने की कला अर्थात **मुद्राश्रित कला।**
6. **नृत्यकला** : भावाभिनय, गायन–वादन, संगीत–नृत्य के सम्बन्ध–भावनाओं को प्रस्तुत करने की कला अर्थात **अभिनयाश्रित कला**।

व्यावसायिक कला

कला का उपयोग जब जीवन से सम्बन्धित होता है अथवा कलाएँ जब जीवन–उपयोगी किसी कार्य में प्रयुक्त होती है या उपयोगिता का ध्यान रख कर जब वस्तुओं में सजावट की जाती है तो वह उपयोगी कलाएँ कहलाती हैं। उपयोगी कलाएँ व्यावसायिक व भौतिक जगत से सम्बन्धित होती है। उपयोगी कलाएँ किसी व्यवसाय, उत्पादक व उपभोक्ता से जुड़ी होती है। चाक्षुष तत्त्व का ध्यान रख इस कला का विभाजन निम्न प्रकार से किया गया है –

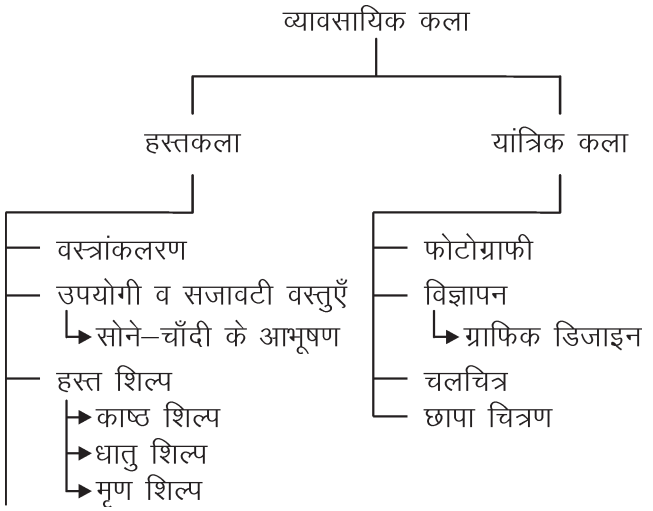

उपरोक्त कला व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रतिदिन काम आने वाली भौतिकवादी वस्तुओं को एक कला रूप में प्रस्तुत करती है। जिसमें वस्तु को सुन्दर, कलात्मक छवि के साथ अभिव्यक्ति भी समाहित होती है। साधारण शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि उपयोगी कला किसी उद्देश्य को लेकर तैयार की गई कला है, जो व्यक्ति के व्यावहारिक ज्ञान को प्रभावित करती है तथा यह जानकारी देती है कि उसके खाने–पीने, पहनने एवं उपयोग के लिए कौनसी वस्तुएँ उपयोगी एवं उपयुक्त हैं।

(ब) कला के विभिन्न स्वरूप

आदिम कला

आदिम कला शब्द विश्व के विभिन्न भागों में वनों आदि में आदिम अवस्था में रह रही जनजातियों की कला के लिये प्रयुक्त होता है। शहरी सभ्यता से सुदुर स्थित इन क्षेत्रों में रहने वाली जनजातियों की कला का उद्‌गम प्रागैतिहासिक कला से ही माना जाता है। इस प्रकार आदिम कला का इतिहास उतना ही पुराना कहा जा सकता है, जितना मानव का इतिहास। मनुष्य का प्रकृति से प्रथम साक्षात्कार हुआ उस समय से ही उसने निर्माण के तारतम्य से अपने जीवन को सुखी तथा समृद्ध बनाने की चेष्टा की और इस निर्माण कार्य के फलस्वरूप उसने ऐसी कृतियों का सृजन किया जो उसके जीवन को सुखद और सुचारू बना सकें। इसी समय से मनुष्य की ललित भावना भी जाग उठी और उसने अपनी मूक भावनाओं को अनगढ़ पत्थरों के यन्त्रों तथा तूलिका से बनी टेढ़ी–मेढ़ी रेखा–कृतियों के रूप में गुफाओं और चट्टानों की भित्तियों पर अंकित कर दिया। उसके जीवन की कोमल भावनाएँ तथा संघर्षमय जीवन की सजीव झाँकियाँ आदि मानव की कलाकृतियों के रूप में आज भी सुरक्षित हैं। आदि काल से आज तक मनुष्य रेखा तथा आकार, तक्षण तथा कर्षण के द्वारा अपनी भावनाओं को व्यक्त करता चला आ रहा है। मानव ने रेखा और आकार के माध्यम से अपनी प्रकृति, आत्मा और युग का सदैव स्वागत तथा अंकन किया है। मानव की इन असंख्य चित्राकृतियों के आधार पर चित्रकला की आज एक निश्चित परिभाषा निर्धारित हो चुकी है।

चित्र 1

इन चित्रों में आदि–मानव का जीवन परिलक्षित होता है।

अतः पशु और पशुओं के आखेट दृश्य तथा जादू के विश्वास के प्रतीक चिन्हों का चित्रण इस समय की कला का प्रधान विषय था।

चित्र 2

इन चित्रों में मानव ने अपने भावों को सरल रूपों तथा ज्यामितीय आकारों में संजोया है। यह कृतियाँ आदि मानव की बाल–सुलभ प्रकृति की उत्तम झाँकी हैं। इन चित्रों में प्रागैतिहासिक युग के मनुष्य का सम्पूर्ण इतिहास संचित है। इन चित्रों की सीमा रेखाएँ, गतिशील हैं, यद्यपि चित्र असंयत और सरल हैं। जिसमें सांभर, बाहर–सिंगा, महिष, गैंडा, हाथी, घोड़ा, सुअर जैसे पशुओं का स्वाभाविकता के साथ अंकन किया है।

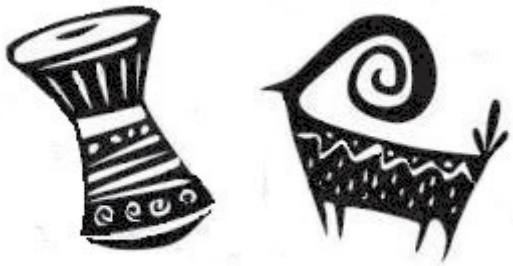

चित्र 3

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में उत्तराखण्ड, आन्ध्रप्रदेश, बिहार, बंगाल, गुजरात, कर्नाटक, केरल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, मणिपुर, उड़ीसा, राजस्थान व तमिलनाडु आदि में लगभग 75 आदिम जनजातियाँ निवास करती हैं। जिन्होंने अपनी परम्परागत कलात्मक विशिष्टताओं को बनाए रखा है।

लोक कला

प्रत्येक युग की मानव की सौंदर्यानुभूति उस युग की कला में प्रकट होती रही। सौंदर्यानुभूति के साथ उस युग के आचार, व्यवहार, विश्वास, जीवन संघर्ष व संकल्पों एवं लोक जीवन की सम्पूर्ण झांकी को प्रस्तुत करने का कार्य लोक कलाओं द्वारा किया गया, वस्तुतः लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है।

भारतीय 'लोककला' संस्कृति के आदर्शों का स्वरूप है। वस्तुतः लोक कलाएँ संस्कृति की जननी भी हैं और पोषक भी। देशकाल और परिस्थिति के अनुरूप सामाजिक मूल्यों, मान्यताओं और परम्पराओं में शनै–शनै होने वाले परिवर्तनों व संवर्द्धन को भी लोक कलाएँ प्रतिबिम्बित करती हैं।

हमारी परम्परागत लोक रूचियों को जीवित रखने के लिए भारत के विभिन्न प्रदेशों में लोक कलाओं ने जो अद्‌भुत कार्य किया है विज्ञान और दर्शन की दृष्टि से उसकी तुलना नहीं की जा सकती।

किसी भी विशिष्ट स्थान की लोक कलाएँ उस विशिष्ट स्थान की लोक संस्कृति पर आधारित होती हैं। लोक कलाओं की उत्पत्ति के स्त्रोत, कुछ महत्वपूर्ण कारक हैं, जिनके सामंजस्य से, जिनके कारण से लोक संस्कृति और लोक कलाओं का जन्म होता है और जो लोक कलाओं के स्वरूप को निर्दिष्ट और निर्धारित करते हैं इनमें लोक विश्वास, लोक चिंतन, लोकानुरंजन, लोक मूल्य और लोकाचार आदि महत्वपूर्ण हैं।

चित्र 4 माँड़नें

लोक कला किसी विशिष्ट व्यक्ति द्वारा सृजित नहीं होती। यह सामाजिक एवं अनुष्ठानिक प्रक्रियाओं के बीच प्रस्फुटित हुआ वह वृक्ष है, जो धीरे–धीरे सामाजिक पोषण प्राप्त कर पल्लवित एवं फलित होता है। नाना प्रकार के लोक उसकी शीतल छाया एवं उसके मधुर फलों का रसास्वादन करते हैं। यह सबकी सम्पत्ति है, किसी व्यक्ति विशेष की नहीं। यह निरंतर व्यवहार से इतनी प्रिय व पूजनीय बन जाती हैं कि यह विशिष्ट अनुष्ठानों, सांस्कृतिक पर्वों एवं उत्सवों का प्राण बन जाती है।

लोक कलाकार किसी चित्रशाला में जाकर शिक्षा नहीं प्राप्त करता और न ही किसी दुरूह सिद्धांत व शैली की जटिलता में नहीं पड़ता है। वो नये सृजन की लोकेष्णा से दूर रहता है।

जन्मजात कौशल ही उसका सर्वस्व है। उसके आँगन में ही उसे सभी उपयुक्त कला सामग्री मिल जाती है। घर की सुख–समृद्धि ही उसकी कला का पुरस्कार है। वह सर्वमान्य रंग रेखाओं के साथ अपने सीधे–सादे लोगों के लिए चित्र निर्माण करता है।

हमारे अज्ञातनाम लोक कलाकारों ने जिनमें नारियों की मुख्य भूमिका रही। जिन्होंने अपनी पवित्र निष्ठा को अपने हृदय की अजस्त्र रसधारा द्वारा अभिसिंचित करके कुछ ऐसी सहज सुंदर कलाकृतियाँ हमें दी, जो हमारे राष्ट्र की संपूर्ण चेतना को अह्लादित करती हैं।

प्रायः सभी हस्त–निर्मित वस्तुओं एवं धार्मिक अनुष्ठानों में एक कलामय सीधी–सादी कला का प्रकटीकरण होता है एवं कदली वृक्ष, पीपल वृक्ष, तोरण द्वार, चक्र, सूरज, चाँद, तारा, मछली, जल, घट, पत्ते, मोर, बेल, आम, आड़ी–तिरछी रेखाएँ, वृत, लहरिया, त्रिभुजों व वर्गों से बनी ज्यामितीय मानवाकृतियाँ, घोड़े–हाथी, तलवार–ढाल, भाला आदि प्रचलित रूपों को संयोजित किया जाता है और यह संयोजन होता है कहानी के अनुसार। सभी अलंकरणों में सरलता, सुलभता, अनुभूति, चेष्टा, मनोवृत्ति आदि सहज मानवीय गुण हैं। सभी लोक जीवन को संवारने, सजाने हेतु उसके अंगों के प्रतीक हैं। रंग जो मिल जाए या जिसे स्त्रियाँ तैयार कर लें, तूलिका तूल (रूई) की बनी हुई, पन्नी, कोयला, हल्दी, चावल व गोंद का लेप, सूखे रंगीन पाउडर व मिट्टियाँ, रंगीन कपड़े, गोबर की टिकलियाँ, मुलतानी मिट्टी, पान–पत्ती, धागे, कलावा आदि सभी वस्तुएँ मांगलिक पर्वानुसार प्रयोग की जाती हैं।

चित्र 5

लोककला के प्रमुख बिन्दु

- लोक कला सहज है, अपरिष्कृत है।
- यह हृदय की सीधी नैसर्गिक छवि को प्रदर्शित करती है।
- इसकी प्रविधि व संसाधनों में कृत्रिमता व जटिलता नहीं होती।
- अभ्यास की कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती है।
- पूरी कथा को एक ही चित्र में प्रतीकात्मक रूपों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है।
- यह विषय–वस्तु, धार्मिक उत्सवों, पर्वों, संस्कारों व लोकानुरंजनों से जुड़ी होती है।
- इसका रचयिता अज्ञात व अनाम होता है।
- साधारण जन स्वयं ही इस कला का आश्रयदाता होता है।
- लोक–कला शाश्वत है, उसकी परम्परा का कभी लोप नहीं होता है।

राजस्थान प्रदेश लोक कलाओं की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध प्रदेश है। यहाँ लोक जीवन से जुड़ी अनेक कलाएँ प्रचलन में हैं। जिन्हें निम्न तालिका से समझा जा सकता है।

- **माँडना :** राजस्थान की विविध जातियों द्वारा विभिन्न अवसरों पर घरों की भित्तियों या फर्श पर बनाए जाने वाले आलंकारिक रूपाकार।
- **गुदना :** विविध जातियों द्वारा शरीर पर बनाए जाने वाले रूपाकार।
- **चित्राम :** मेवाड़ क्षेत्र में मांगलिक अवसरों पर भित्तियों पर बनाए जाने वाले रूपाकार।
- **फड़ :** भीलवाड़ा, शाहपुरा, क्षेत्र में लोक देवताओं की जीवन गाथाओं को प्रस्तुत करने वाले कपड़े पर बने चित्र जिन्हें लोक गायन की शैली में पढ़ा जाता है।
- **कावड़ :** लकड़ी का छोटे आकार का मंदिर जिसके कपाट पर विविध हिस्सों पर विभिन्न देवताओं की गाथाएँ बनी होती हैं एवं जिन्हें अनुष्ठान के रूप में प्रदर्शित किया जाता है।
- **मिट्टी का काम :** लोक देवी देवताओं व लोक जीवन से जुड़े पक्ष पर मिट्टी का काम। इसमें खिलौने भी बनाए जाते हैं।

लोक जीवन से जुड़ी लोक कलाओं में, लोक में व्याप्त प्रतीकों को सहज ही देखा जाता है। इनमें लोक जीवन पूरी तरह प्रकट होता है। इसका उदाहरण राजस्थान के माँडनों में देखा जा सकता है। माँडना भूमि अलंकरण होता है। धरती पर आलेखित किये जाने वाले लोकचित्र, माँडने जगत की मांगलिकता के प्रतीक हैं। प्रेम व आनन्द के प्रतीक हैं। जिनमें लोक मंगल, लोक रंजन, अलंकरण, चरित्र व अन्य प्रतीक स्पष्ट दिखाई देते हैं।

भित्तिचित्रण परम्परा

भारत में भित्तिचित्रण कला की समृद्ध परम्परा प्रागैतिहासिक काल से आरम्भ होकर लोक कला या आदिम कला के रूप में पल्लवित होती हुई अजंता की गुफाओं में अपने चरम विकास पर पहुँची।

भारत में जोगीमारा गुफा के चित्र भित्ति चित्रण परम्परा के प्रथम उदाहरण है। इनमें आरम्भिक काल के भित्तिचित्र बने हैं। जोगीमारा के बाद अजन्ता में भित्तिचित्रण परम्परा प्राप्त होती है। महाराष्ट्र प्रान्त में औरंगाबाद के पास अजन्ता के गुफा मन्दिरों का निर्माण हुआ। यहाँ स्थापत्य के साथ–साथ मूर्तिकला एवं भित्तिचित्रण कला की भी उन्नत परम्परा विकसित हुई।

चित्र 6 – मृगजातक, अजन्ता गुफा चित्र

अजन्ता के समान समृद्ध चित्रण परम्परा से युक्त पाँचवीं व छठी शताब्दी में बने बाघ गुफाओं के चित्र भी कलात्मक एवं तकनीकी दृष्टि से उच्च कोटि के है।

बम्बई प्रान्त में आइहोल नामक स्थान के पास बादामी में चालुक्यों द्वारा निर्मित गुफामंदिरों में भीं भित्तिचित्र मिले हैं। कला की दृष्टि से ये भी अपने काल के उत्तम चित्र थे।

मद्रास में तंजोर के पास सित्तनवासल नामक स्थान है। यहाँ शक्तिशाली पल्लव राजा महेन्द्रवर्मन् प्रथम (600–625 ई.) द्वारा बनवाये गुफा मन्दिर हैं। इनकी भित्तियों पर भी बहुत सुन्दर चित्र बने हैं, जिनकी शैली अजन्ता के समान है, सित्तनवासल के कुछ चित्र जैन धर्म से सम्बन्धित भी हैं। यहाँ की भित्तिचित्र परम्परा भी विशुद्ध भारतीय रूप में विकसित हुई। 'वेरूल' अथवा 'एलोरा' अजन्ता से कोई 50 मील दूर स्थित हैं। यहाँ के शिल्पियों ने पूरी पहाड़ियों को ही मन्दिरों एवं गुफा मन्दिरों में भित्तिचित्र पाए गये हैं।

राजस्थान में भी महलों, हवेलियों आदि में एक भित्तिचित्रण परम्परा विकसित हुई। फ्रेस्को बुनो राजस्थान की भित्तिचित्रण की विधि को आराइश या आलागीला कहा जाता है। इसमें गीली भित्ति पर चित्रण किया जाता है। राजस्थान में जयपुर, बूंदी, कोटा, जोधपुर, बीकानेर एवं शेखावाटी क्षेत्र अपने भित्तिचित्रों के लिए प्रसिद्ध हैं।

लघु चित्रण परम्परा

अजन्ता, बाघ आदि के भित्ति चित्रों के बाद भारत में 9वीं शती में पाल व जैन शैलियाँ आरम्भ हुई। जिनमें ताड़ पत्रों पर छोटे चित्र बनाए गये। बाद में यह चित्र कागज के ऊपर भी बनाये गये। राजपूत शैली, मुगल शैली और समकालीन शैलियों में कागज (वसली) पर बनाये गये लघु चित्रों की परम्परा का ही विकास हुआ। इस प्रकार भारत में लघु चित्रों का प्रारम्भ जैन एवं अपभ्रंश शैली के चित्रों से माना जाता है। मध्यकाल (15वीं से 18वीं सदी) भारतीय लघु चित्रण का स्वर्णिम काल था जिसमें मुग़ल, राजपूत एवं पहाड़ी आदि शैलियाँ सम्मिलित हैं। राजस्थान में मेवाड़, मारवाड़, कोटा, बूँदी, जयपुर एवं किशनगढ़ आदि क्षेत्रों में लघु चित्र परम्परा विकसित हुई।

प्रारम्भ में लघु चित्र ताड़ पत्रों के ऊपर चित्रित किये गये। जिनमें रंगों का प्रयोग हुआ। कालान्तर में लघु चित्रों को मुख्यतः 'वसली' पर बनाया जाने लगाताकि ये लम्बे समय तक स्थाई रह सके।

चित्र 7 – राधा कृष्ण, कांगड़ा शैली

सामग्री एवं उपकरण

(क) वसली

वसली वास्तव में हाथ से बना कागज होता है। इसमें कई कागजों की पतली–पतली परतों को लेई से चिपका कर तैयार किया जाता था। लघुचित्रों में अनेक प्रकार के कागजों का प्रयोग हुआ जैसे सियालकोटी, हरीरी, गौनी, तब्रेजी व सांगानेरी आदि। जयपुर में पोथीखाने में अनेक पुस्तकों में इन कागजों की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

(ख) ब्रश

प्रायः कलाकारों द्वारा गिलहरी की पूँछ के बालों की ब्रश का प्रयोग किया जाता था।

(ग) रंग

इस पद्धति में विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक रंगों का प्रयोग किया जाता था, जैसे – पीला, पेवड़ी, गऊ गोली एवं हरिताल, लाल हिंगलू, गेरू, महावर एवं सिन्दूर, नीला–नील, काला काजल, हरा, सफेद–खड़िया एवं सोना व चाँदी (जो विशेष विधि से तैयार किये जाते हैं) आदि रंगों का प्रयोग हुआ है।

(घ) प्रविधि

लघुचित्रण परम्परा में चित्र निर्माण की प्रक्रिया में एक विशेष अनुक्रम का प्रयोग किया गया जो निम्न प्रकार है।

1. **आबीना** – केवल जल में ब्रश को भिगोकर रेखांकन करना (सूखे कागज पर पानी की रेखाएँ स्पष्ट होती हैं जो कि चित्र के प्रारूप को निर्धारित करने में सहायता करती है।) आब = जल, बीना = देखना
2. खाका = जलीय रेखाओं के आधार पर हल्के लाल रंग से रेखाकंन करना।
3. रंगमेजी = रंग भरना (इसके भी दो क्रम होते थे)
   - **अ – दागीना** – चित्र के विविध भागों जैसे आकृति, आकाश, वृक्ष, वनस्पति, वेशभूषा आदि को उसमें लगाये जाने वाले रंगों से चिन्हित करना।
   - **ब – पोतना – (भरना)** – चिन्हित किये गये रंगों से उस भाग में रंगों को भरना।
4. **गोलाई** – रंगों की हल्की व गहरी तानों से गोलाई उभार दिखाना।
5. **साया सुसमा** – शेडिंग
   - **अ – साया =** गहरी तानों की रेखाओं से छायांकन का प्रभाव उत्पन्न करना।
   - **ब – सुसमा =** विभिन्न रंगों से किसी वस्तु में उभार का प्रभाव उत्पन्न करना।
6. **सिया कलम** – स्याही का प्रयोग चित्र में आवश्यकतानुसार स्याही की रेखाओं का प्रयोग करना।
7. **गुलापाम्बा** – आभूषणों में पीले व सफेद रंगों का प्रयोग करना।
8. **सुफेदा =** आँख के तारे व मोतियों आदि के आभूषणों में गाढ़े सफेद रंग का प्रयोग।
9. **ज़रब =** चित्रों में बहुमूल्य एवं मध्य बहुमूल्य रत्नों जैसे मोती, माणक, पन्ना आदि का प्रयोग करना, जयपुर शैली के अनेक चित्रों में इस प्रकार के रत्नों का प्रयोग होता है।

आधुनिक कला

आधुनिक कला (मॉडर्न आर्ट) शब्द एक विश्वव्यापी अन्तर्राष्ट्रीय शब्द है जिसके अर्न्तगत प्रायः उन्नीसवीं शतीं के मध्य से बीसवीं शतीं के मध्य के कला आन्दोलनों की गणना की जाती है। मॉडर्न आर्ट के उद्भव के पीछे औद्योगिक क्रान्ति, शहरीकरण, आर्थिक, राजनीतिक एवं तकनीकी परिवर्तन आदि कारण रहे।

औद्योगिक क्रान्ति व फोटोग्राफी आदि के कारण कला जगत् में भी पूर्व निर्धारित मान्यताओं व परम्पराओं आदि पर आधारित रूपाकारों से भिन्न कलारूपों की सर्जना आरम्भ हुई एवं कला में आधुनिकतावाद आरम्भ हुआ जिसमें नये कलारूपों की खोज एवं प्रयोग हुए, साथ ही इसमें कलाकारों को किसी विशिष्ट विचारधारा या अनुशासन में बंधने को मजबूर नहीं किया, वरन् व्यक्तिगत भावनाओं के अनुसार अपना रास्ता खोजने या अपनाने को प्रोत्साहित किया।

पश्चिम में आधुनिक कला प्रभाववाद, उत्तर प्रभाववाद, प्रतीकवाद, फाववाद, अभिव्यंजनावाद, दादावाद, अतियथार्थवाद आदि कला आन्दोलनों का समन्वित रूप माना जाता है। इन आन्दोलनों में 1914 ई. के प्रथम विश्वयुद्ध व 1939 ई. के द्वितीय विश्वयुद्ध की भूमिका भी स्पष्ट दिखाई देती है।

भारत में ब्रितानी साम्राज्य कायम होने के बाद शिक्षा, कला, साहित्य, संस्कृति तथा सामाजिक क्षेत्रों में अंग्रेजों का प्रभुत्व त्वरित गति से बढ़ने लगा। चित्रकला के क्षेत्र में पाश्चात्य सभ्यता के अनुकूल राजा रवि वर्मा ने तैल चित्र बनाए। रवि वर्मा ने यूरोपीय पद्धति में तैल माध्यम में, छाया प्रकाश आदि के द्वारा नाटकीय प्रभावयुक्त अनेक चित्र बनाये, जिनके विषय विशुद्ध भारतीय रहे।

भारतीय कला के क्षेत्र में एक नई दिशा देने का कार्य ब्रिटिश कलाविद् ई. बी. हैवेल ने किया। 1907 ई॰ में कलकत्ता में स्थानीय कला स्कूल के प्रिंसिपल ई॰ बी॰ हैवेल तथा अवीन्द्रनाथ टैगोर ने इंडियन सोसायटी आफ ओरिएन्टल आर्ट नामक संस्था की स्थापना की। संस्था का प्रमुख ध्येय परम्परागत कला शैली तथा आधुनिक विचारधाराओं के समन्वय से एक नवीन शैली का निर्माण करना था। धीरे–धीरे संस्था ने कलाकारों को शिक्षा देने का भी प्रबन्ध किया।

कालान्तर में कई प्रतिभाशाली चित्रकार इस संस्था द्वारा निकले। नन्दलाल बोस, क्षितीन्द्र नाथ मजूमदार, असितकुमार हल्दार, मुकुल दे, देवीप्रसाद राय चौधरी आदि– आदि कलाकारों ने अपनी रचनात्मक धारा से राष्ट्रीय चेतना को अपूर्व बल प्रदान किया और इनसे प्रभावित होकर भावी कलाकारों ने देश के विभिन्न हिस्सों में जाकर आधुनिक कला के विचार का प्रचार–प्रसार किया।

चित्र 8 – आकृति मूलक – नन्दलाल बोस 'ऐरावत पर इन्द्र'

चित्र 8 – अमूर्त – रामकुमार – बनारस घाट

(स) शिल्प और कला के प्राचीन ग्रन्थ

प्राचीन भारतीय साहित्य में शिल्प एवं चित्रकला का वर्णन प्रचुर मात्रा में मिलता है।

ऋग्वेद में यज्ञशालाओं की वेदियों पर अलंकृत स्त्री–पुरूषों की आकृतियों का विवरण एवं धर्म पर अग्निदेव के चित्र का प्राचीनतम् चित्रण सम्बन्धी विवरण हमें ऐतरेय उपनिषद, वृहदारण्यक, ब्रह्मसूत्र, छान्दोग्य, कठोपनिषद आदि में मिलता है।

भारतीय साहित्य के प्रतिनिधि महाग्रन्थ रामायण में वाल्मीकि ने सुन्दरकाण्ड में रावण के भवनों का वर्णन करते हुए रावण की चित्रशाला का भी उल्लेख किया है। कैकयी का राजप्रासाद भी चित्रों से सुशोभित था। राम के प्रासाद में भी भित्तिचित्र उत्कीर्ण थे। रावण के पुष्पक विमान के कक्ष भाग भी चित्रांकित थे। चित्र सज्जा के अन्य वर्णन भी रामायण में मिलते हैं। रामायण के समान महाभारत में भी अनेकों कला सम्बन्धी उदाहरण प्राप्त होते हैं। महाभारत में सत्यवान के लिए लिखा गया है कि वह भित्तियों पर घोड़े के चित्र अंकित करता था। इसलिए बचपन में उसका नाम चित्राश्व पड़ा। महाभारत में ही युधिष्ठिर की सभा का बड़ा रोचक वर्णन प्राप्त होता है, इसमें कहा गया है कि युधिष्ठिर की सभागृह की दीवारें भांति–भांति के चित्रों से सुशोभित थीं।

रामायण व महाभारत के बाद पाणिनीकृत अष्टाध्यायी में शिल्प को चारू व कारू के अर्थों में प्रयोग करते हुए पशु, पक्षी, पुष्प, वृक्ष, नदी आदि के सांकेतिक लक्षणों के साथ उनके अंकन विधान पर भी प्रकाश डाला गया है।

प्रजापति शिल्प, सरस्वती शिल्प, शिवतत्वरत्नाकर, शिल्परत्न, कीर्तिलता आदि ग्रन्थों में चित्रों की सामग्री तथा चित्र निर्माण प्रविधि के विस्तृत विवरण उपलब्ध हैं। उस समय की सामग्री आज जैसी वैज्ञानिकता लिए तो नहीं थी, वह अधिकांशतः व्यक्तिगत प्रयोगों पर ही अधिक निर्भर थी। साहित्य तथा शिल्प ग्रन्थों में चित्रण के लिए अधिकांशतः भित्ति का ही उल्लेख उपलब्ध होता है।

बौद्ध साहित्य में भी चित्रों का वर्णन प्राप्त होता है। 'विनय पिटक' में लेप्य चित्र शब्द का प्रयोग चूने से लिपी–पुती भित्ति पर बने चित्रों के लिए हुआ है। इसी प्रकार महाउम्मग जातक में एक ऐसे विशाल भूमिगृह का उल्लेख है जिसकी इष्टिका निर्मित भित्तियों पर पहले सुन्दर सफेद पलस्तर किया गया और फिर उस पर निपुण चित्रकारों ने चित्र बनाये। इस प्रकार जमीन बांध कर और घुटाई करके छत में अनेक प्रकार के खिले हुए कमल पुष्पों के फुल्ले लिखे गये। अजंता गुफा सं. 2 और 17 में इस प्रकार के मंडलाकृति पुष्पालंकरण पाये जाते हैं।

'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' भी चित्रशास्त्र का एक उल्लेखनीय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में चित्रशास्त्र के प्रायः सभी विषयों का प्रतिपादन किया गया है। इसमें चित्रकला के तकनीकी, कलापक्ष व चित्रण पक्ष पर प्रौढ़ विवेचना मिलती है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के तृतीय खण्ड में अध्याय 35 से लेकर अध्याय 43 तक ''चित्रसूत्रम'' प्रकरण में चित्र सम्बन्धी जानकारी प्राप्त होती है।

भोज के 'समरांगण सूत्रधार' में भी 'चित्रकर्म' पर बहुत ही सारगर्भित सामग्री संचित की गई है। चित्रकर्म को छः अवान्तर अध्यायों में विभक्त कर भित्तिचित्रण प्रविधि व उसके उपकरण ब्रश, कूंची आदि का वर्णन हुआ है।

मध्यकालीन अधिकृत शिल्प शास्त्रीय कृति 'अपराजितपृच्छा' में चित्र के उद्देश्य, उत्पत्ति एवं क्षेत्र अथवा विस्तार का जो विवेचन है वह बड़ा ही मार्मिक है। इस ग्रन्थ की प्रमुख विशेषता, पत्र एवं कंटक के अनुरूप नागर, द्रविड़, वेसर, कलिंग, यामुन तथा व्यन्तर नाम की छः चित्र शैलियों का प्रतिपादन है।

संस्कृत के प्रायः सभी महान लेखकों ने अपनी रचनाओं में चित्रण परम्पराओं का भी उल्लेख किया है। मालविकाग्निमित्र में चित्रशाला, तिलकमंजरी में चित्र शालिका व उत्तररामचरित में अभिलिखित वीथिका शब्द आया है। बाणभट्ट के हर्षचरितम् व कादम्बरी में व्यक्ति चित्रण सम्बन्धित विवरण प्राप्त होता है।

रघुवंश के 16वें सर्ग में विध्वस्त अयोध्या नगरी का वर्णन करते हुए कालिदास ने लिखा है कि वहाँ के प्रासादों की भित्तियों पर पहले नाना भांति के पद्मवन चित्रित थे, जिनके मध्य में बड़े–बड़े हाथियों को दर्शाया गया है।

अन्य ग्रन्थों में ''मयमत'', ''मानसार'', ''चित्रकर्म शिल्पशास्त्र'', ''शिल्पकलादीपिका'' वृत्तांत वर्णन है जिनमें चित्रकला के विधि विधानों, लक्षणों आदि पर अनूठी सामग्री उपलब्ध है यद्यपि आज की कला इन लक्षण ग्रन्थों के नियम उपनियमों के आधार पर रूप ग्रहण नहीं करती फिर भी इनका अपना विशिष्ट महत्व है। शिल्प एवं कला के ग्रन्थों में से कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थों का विवेचन निम्न प्रकार है।

1. चित्रसूत्रम्
2. समरांगण सूत्रधार
3. मानसोल्लास

चित्रसूत्रम्

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के तृतीय खण्ड में पैंतीसवें (35वें) अध्याय से तयालीसवें (43वें) अध्याय तक 'चित्रसूत्रम्' प्रकरण है। यह विवरण संवादात्मक है। मार्कण्डेय मुनि राजा वज्र की चित्र संबंधी समस्त जिज्ञासाएं पूर्ण करते है। इस ग्रंथ का सर्वप्रथम अंग्रेजी में अनुवाद 'डॉ. स्टेलाक्रैमरिश' ने किया था बाद में 'डॉ. आनन्द कुमार स्वामी' एवं श्री शिवराम मूर्ति ने भी इसका अनुवाद

प्रस्तुत किया। डॉ. प्रियबाला शाह ने इसका हिन्दी रूपान्तर किया।

चित्रसूत्र भारतीय चित्रकला की प्रौढ़ परम्परा को दर्शित करने वाला एक मात्र ग्रंथ है। इसके नौ अध्यायों में प्राचीन भारतीय चित्रविद्या की व्यापकता एवं तकनीक सम्बन्धी महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है।

सम्पूर्ण 'चित्रसूत्रम्' निम्न नौ अध्यायों में विभक्त है –

1. आयाममानवर्णन
2. प्रमाणवर्णन
3. सामान्यमानवर्णन
4. प्रतिमालक्षणवर्णन
5. क्षयवृद्धि
6. रंगव्यतिकर
7. वर्त्तना
8. रूपनिर्माण
9. श्रृंगारादिभावकथन

प्रथम अध्याय में **'नृत्तं चित्रं परंमतम्'** अर्थात नृत्य को परम चित्र मानते हुए मुनि ने हंस भद्र, मालव्य, रूचक व शशक आदि पॉच पुरूषों के लक्षणों की विस्तार से चर्चा की है।

द्वितीय अध्याय प्रमाण को स्पष्ट करने वाला है। इसमें प्रत्येक अंग के प्रमाण को समझाया गया है। जैसे मुख 12 अगुंल, मस्तक 4 अगुंल हो आदि, सिर से पॉव तक के अनुपात को विस्तार में बताया गया है। इसमें इनके वर्ण की भी चर्चा मिलती है।

तृतीय अध्याय सामान्य मान से सम्बंधित है। इसमें भी अनुपात को स्पष्ट करते हुए बालों व ऑखो के बारे में वर्णन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय देवप्रतिमाओं के लक्षणों से सम्बन्धित है। इसमें प्रतिमाओं के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है।

पंचम् अध्याय अपने आप में एक विशिष्ट अध्याय है, जिसमें चित्रकला के क्षयवृद्धि सिद्धान्त को स्पष्ट किया गया है। साथ ही आकृति स्थिर व चलायमान कैसे हो सकती है यह भी स्पष्ट किया गया है।

छठा अध्याय पूर्णतः प्रविधि से सम्बन्धित है। इस अध्याय में रंगों की बात हुई है जिसमें पॉच प्रकार के प्रधान रंग माने गये है – श्वेत, पीत, पीलापन लिए श्वेत, कृष्ण और नील। हे राजन् इनके अवान्तर भेद तो सैकड़ों है।

सातवॉ अध्याय चित्रों में वर्गीकरण से आरम्भ होता है। जिसमें चार प्रकार के चित्र कहे है – सत्य, वैणिक, नागर और मिश्रण इनके लक्षण मैं बता रहा हूँ ओर इनके लक्षणों को बताने के बाद मुनि तीन प्रकार की रेखाओं पत्रवर्त्तना, आहैरिकवर्त्तना (सूक्ष्मरेखा) व बिन्दुवर्त्तना की व्याख्या की है। इस प्रकार यह अध्ययन भी स्वयं में अत्यन्त महत्वपूर्ण है एवं इसकी विभिन्न विद्वानों ने अलग–अलग रूप में व्याख्या की है।

आठवॉ अध्याय देवताओं, ऋषियों, गन्धर्वो, दैत्य, दानवों, पिशाच, बौने, कुबड़े, सेवकों व अनेक प्रकार के मानवों व मानवेतर प्राणियों को बनाने की विधि पर प्रकाश डाला है। इसी अध्याय में दृश्य व समुद्रों के चित्रों की भी व्याख्या मिलती है।

नवां अध्याय रसों की व्याख्या है। नाट्यशास्त्र व चित्रलक्षण आदि ग्रन्थ में 9 रसों की अवधरणा प्राप्त होती है। चित्रसूत्र में भी नव रस की पुष्टि करते हुए कहा गया है –

श्रृंगारहासकरूणवीररौद्र भयानकाः।
वीभत्साद्भुतशान्ताश्च नव चित्र रसा स्मृताः।।

''चित्र के लिए श्रृंगार, हास्य, करूण, वीर, रौद्र, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त नामक नौ रस कहे गये है।'' यह अध्याय अपने आप में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। विशेष रूप से इसमें चित्र के सौन्दर्यपक्ष की अत्यन्त गहन समीक्षा की गई है।

अन्त में चित्रकला को सर्वश्रेष्ठ मानते हुए कहा है कि–

''कलानां प्रवरं चित्रं धर्मकामार्थमोक्षदम्।
मांगल्यं प्रथमं चैतद्गृहे यत्र प्रतिष्ठितम्।।''

चित्रकला सभी कलाओं में श्रेष्ठ है। यह धर्म, काम, अर्थ व मोक्ष देने वाली है। जिस घर में इसकी प्रतिष्ठा की जाती है, वहॉ पहले से ही मंगल होता है।

''यथा सुमेरूः प्रवरो नगानां यथाण्डजानां गरूडः प्रधानः।।
यथा नाराणां प्रवरः क्षितीशस्तथा कलानामिह इचित्रकल्पः।।''

''जैसे पर्वतों में सुमेरू श्रेष्ठ है, पक्षीयों में गरूड़ प्रधान है और मनुष्यों में राजा उत्तम है उसी प्रकार कलाओं में चित्रकला उत्कृष्ट है।'' इन्हीं शब्दों के साथ मार्कण्डेय मुनि 'चित्रसूत्रम्' को समाप्त करते है।

चित्रविधा की जिन प्राविधिक बातों का वर्णन इसमें किया है, वे प्राचीन भारत के कलात्मक वैभव को प्रस्तुत करती हैं, वे आज भी तर्कसंगत दिखाई देती हैं क्योंकि इनका आधार वैज्ञानिक रहा। अतः 'चित्रसूत्र' का कला के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

समरांगण सूत्रधार

महाराजाधिराज भोजदेव (1010–1055–ई.) विरचित 'समरागंणसूत्रधार' एक पूर्वमध्यकालीन अधिकृत उपलब्ध 84 अध्यायों युक्त शिल्पग्रन्थ है, जिसमें प्रायः सभी प्रमुख कलाओं का प्रतिपादन है जिसको सात भागों में विभक्त किया गया है। सातवें भाग में चित्रकर्म पर छः अध्याय – चित्रोद्धेश्य, भूमिबंधन, लेप्यकर्मादि, अष्डक, प्रमाण, मनोत्पत्ति और रस दृष्टिलक्षण है। इसमें छः कलाओं का अधिकृत विवेचन है – 1. भवनकला 2. नगरकला 3. प्रासादकला 4. मूर्तिकला 5. चित्रकला 6. यन्त्रकला।

'समरांगणसूत्रधार' के पंचम पटल चित्रलक्षण के दूसरे अवान्तर अध्याय चित्रभूमि बन्धन व तीसरे अवान्तर अध्याय चित्रकर्मा लेप्यादि कर्म में भित्तिचित्रण विधा की विस्तृत विवेचना की गई है।

इसी में आगे कुड़यभूमि बन्धन भाग में भित्तिचित्रण के लिए दीवार तैयार करने की विधि बताई गई है।

पुस्तक के आगे के भाग में 'लेप्यकर्मादिकलक्षण – में विभिन्न रंगों की मिट्टियों का वर्णन करते हुए सित, क्षौद्र, सदृश, गौर और कपिल वर्णों की मिट्टियाँ प्रशस्त मानी गई हैं।

मिट्टियों के वर्णन के बाद पाँच प्रकार के ब्रशों का वर्णन हुआ है। इसमें बैल के कान के रोमों से बना कूर्चक (ब्रश) बुद्धिमान मनुष्य के धारण योग्य बताया गया है।

मानसोल्लास

कल्याण के चालुक्य राजा विक्रमादित्य के पुत्र सोमेश्वर भूपति ने 1131 ई. में 'अभिलाषितार्थचिन्तार्माणि' नामक एक विश्वकोषात्मक ग्रन्थ लिखा जिसका दूसरा नाम 'मानसोल्लास' भी है। जिसे मैसूर विश्वविद्यालय ने प्रकाशित किया है। इसमें राजनीति, गणित, ज्योतिष, तर्कशास्त्र, काव्यशास्त्र, संगीत, वास्तुकला, चित्रकला आदि विषयों का समावेश है।

मानसोल्लास की तीसरी विशंति के प्रथम अध्याय में चित्रकला पर विचार किया गया है। इस ग्रन्थ का चित्रकर्म वर्णन बड़े ही क्रमबद्ध ढंग से है। जिनमें चित्रकार स्वरूप, चित्राभित्ति, लेखनी–लेखन, शुद्ध वर्ण, मिश्र वर्ण, चित्र वर्ण, पक्षसुत्रलक्षण, ताल लक्षण, तिर्यकमान लक्षण और सामान्य चित्र प्रक्रिया आदि ग्यारह अध्यायों में चित्र कर्म का वर्णन है। स्फटिक मणि के समान स्वच्छ व दर्पण के समान चिकनी भित्तियों पर सूक्ष्म रेखा विशारद नाना रंग के चित्र बनाया करते थे।

रंग योजना के सम्बन्ध में कहा गया है कि आधार भित्ति का जो स्थान निम्नतर हो वहाँ एक रंगे चित्र में श्यामल वर्ण का प्रयोग होना चाहिए और जो स्थान उन्नत हों वहाँ उज्जवल या फीके रंग का उपयोग करना चाहिए। सोमेश्वर के अनुसार सफेद, लाल, पीला और काला चार प्रमुख रंग है। श्वेत रंग शंख के चूर्ण से बनाया जाता था। इसी प्रकार दरद से शोण रंग, अलक्तक से लाल रंग, गेरू से लोहित रंग, हरताल से पीत रंग और काजल से काला रंग बनाया जाता था। चित्रों में सोने के उपयोग का विधान पहले–पहले इसी ग्रन्थ में पाया जाता है, चित्रों के लिए सोने के तबक से हलकारी सोना बनाने की जो प्रक्रिया इसमें दी गई है, वह आजकल की प्रक्रिया से अधिक भिन्न नहीं है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघुउत्तरात्मक प्रश्न

1. कला का अर्थ बताइये।
2. आदिम कला का सामान्य परिचय दीजिये।
3. 'लोक कला' समाज के किस वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं?
4. भारतीय भित्ति–चित्रण परम्परा का संक्षिप्त परिचय दीजिये।
5. लघु चित्रण क्या है?
6. ललित कलाओं में किन कलाओं की गणना होती है?
7. कला एंव शिल्प का वर्णन करने वाले तीन ग्रंथों के नाम लिखिए।
8. चित्रसूत्र ग्रंथ को कितने अध्यायों में बॉटा गया है?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. कला के अर्थ एंव परिभाषा का वर्णन कीजिये।
2. राजस्थान की लोक कलाओं पर निबन्ध लिखिये।
3. भारतीय भित्तिचित्रण की आराइश (आलागीला) पद्वति पर प्रकाश डालिये।
4. लघु चित्रण की प्रविधि, कागज एंव रंगों के बारे में विस्तार से लिखिये।
5. ललित कला एंव व्यावसायिक कला के अन्तर को स्पष्ट करिये।

अध्याय

2

चित्रकला के मूलाधार

(अ) चित्रकला के तत्व

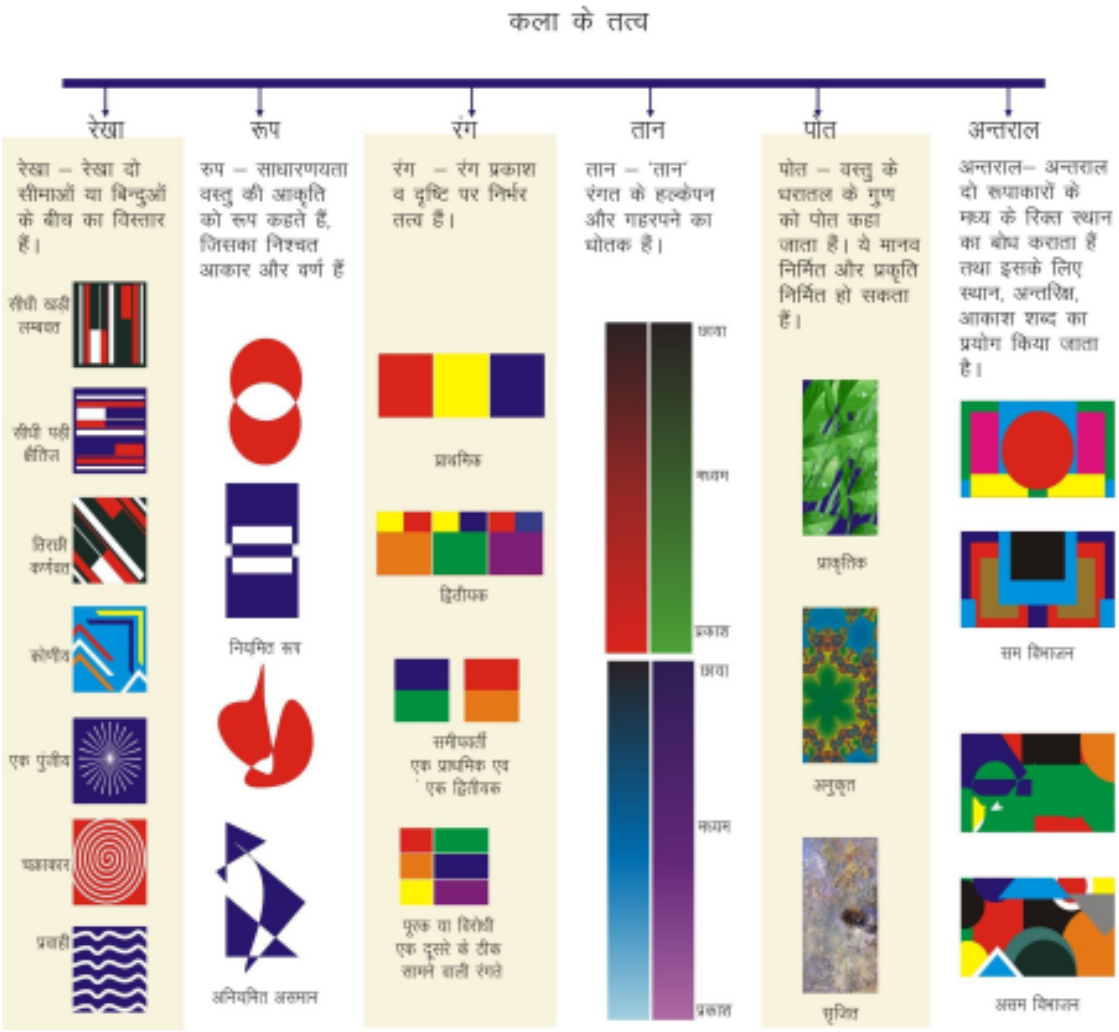

चित्र के तत्व

चित्रकला मनुष्य के विचारों को दृश्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करती है और इस अभिव्यक्ति को संयोजित ढंग से प्रस्तुत करने में कला के तत्वों का योगदान होता है। कलाकृति इन तत्वों की संयोजनात्मक रूप व्यवस्था होती है एवं इस संयोजन को आकर्षक बनाने में निम्न तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इन्हें चित्रकला के मूल तत्व कहा जाता है।

चित्रकला के तत्व

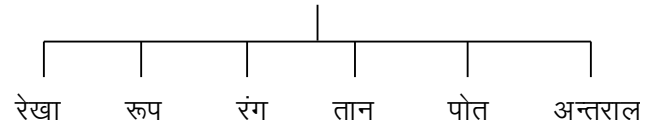

1. रेखा

कला सृजन में रेखा दृश्य अभिव्यक्ति का सर्वाधिक सरल एवं महत्वपूर्ण माध्यम है। रेखा को हम चित्रकार के भावों की अभिव्यक्ति का प्राचीनतम आधार भी मान सकते हैं। यह दृश्य सम्प्रेषण का प्राथमिक साधन है। यह दृश्यकला की सबसे छोटी इकाई बिन्दु है एवं रेखा दो बिन्दुओं या दो सीमाओं के बीच का विस्तार है और कई बिन्दुओं के जुड़ाव या बिन्दुओं के पंक्तिबद्ध समूह से ''रेखा'' बनती है।

किसी भी चित्र में रेखा का प्रतीकात्मक महत्व होता है और वह रूप की अभिव्यक्ति व प्रवाह को अंकित करती है।

रेखाओं का वर्गीकरण

रेखाओं का प्रमुख उद्देश्य होता है रूप का सृजन एवं भावों की अभिव्यक्ति। प्रत्येक रेखा के कुछ सामान्य प्रभाव होते है जिनका सम्बन्ध हमारी मनोदशाओं व संवेदनाओं से होता है और चित्र रचना में कलाकार इन रेखीय गुणों का लाभ उठाता है। रेखाएँ विभिन्न प्रकार की मानी गई हैं –

- **सीधी–खड़ी अथवा लम्बवत् रेखा**

सीधी खड़ी रेखाएँ ऊँचाई और उर्ध्वगमन की प्रतीक हैं। जैसे – पेड़ सीधा खड़ा होता है, व्यक्ति खड़ा होता है आदि। ये रेखाएँ हमारे मन में उच्चता, महत्वाकाँक्षा, दृढ़ता, गौरव, अभिजात्य, स्थिरता एवं शाश्वतता की अनुभूति जगाती है।

- **सीधी पड़ी या क्षैतिज रेखा**

लम्बवत् रेखा आकार को आधार प्रदान करती है। मनुष्य विश्राम अथवा सुप्तावस्था में क्षैतिज स्थिति में होता है। ये रेखाएँ मानसिक शान्ति, विश्राम, निष्क्रियता, सन्तुलन, स्थिरता, मौन आदि भावों की घोतक है।

- **तिरछी अथवा कर्णवत् रेखा**

ये रेखाएँ अन्तराल में तिरछी व आड़ी खींची जाती है। अतः ''कर्णवत्'' कही जाती है। ये रेखाएँ गति, तीव्रता, उत्तेजना, व्याकुलता एवं नाटकीयता आदि भावों का संचार करती है।

- **कोणीय रेखा**

जो रेखाएँ शीघ्रता से दिशा परिवर्तित करती हैं। वे कोणीय रेखाएँ कही जाती है। ये रेखाएँ असुरक्षा, अस्पष्टता, व्याकुलता, संघर्ष, क्षणिकता व आघात के भावों को प्रस्तुत करती है।

- **एक पुंजीय रेखा**

ये रेखाएँ शोभा, प्रसार, स्वच्छन्दता, लिप्तता व अभिलाषा आदि भावों की घोतक है।

- **चक्राकार रेखा**

वृत्ताकार एवं कुण्डलित सर्पाकार रेखाएँ चक्राकार रेखाओं के अन्तर्गत आती है। ये रेखाएँ गति, उत्तेजना, वृद्धि, शक्ति, निरन्तरता व पूर्णता आदि भावों की घोतक हैं।

- **प्रवाही रेखा**

लयात्मक व प्रवाहयुक्त रेखायें, जैसे नदी की प्रवाहयुक्त व लयात्मक रेखाएँ इसके अन्तर्गत आती हैं। ये रेखाएँ गति, माधुर्य, लावण्य आदि भावों को दर्शाती है।

2. रूप

कलाकार के चित्र भूमि पर अंकन प्रारम्भ करते ही रूप का निर्माण आरम्भ हो जाता है। इस रूप सृजन के साथ ही चित्र भूमि सक्रिय हो जाती है और वह सक्रिय रूपों आकारों तथा सहायक आकारों के मध्य विभक्त हो जाती है। इन्हें ही रूप कहा जाता है। इस प्रकार वह क्षेत्र या स्थान है जिसका निश्चित आकार और वर्ण है। इसका निर्धारण वस्तु के बाह्य रूपाकार से होता है। आकृतियों के बिना दृश्य कलाओं का अस्तित्व ही नहीं है। आकृति की रचना विषय की आवश्यकतानुसार सादृश्यमूलक, आकृतिमूलक या अमूर्त भी हो सकती है। रूप या आकार अनेक प्रकार के हो सकते है। जिन्हें उनके प्रभाव के अनुसार निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है।

रूप का वर्गीकरण

(क) नियमित

जिसके दोनों भाग समान हों जैसे – वृत्त, आयत, त्रिकोण, चतुर्भुज आदि।

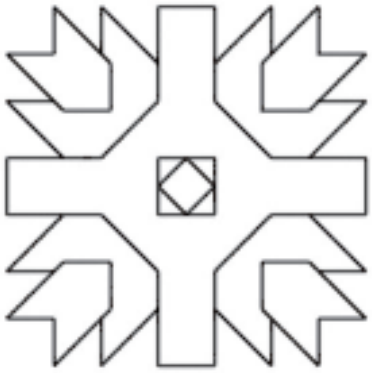

चित्र 1 (नियमित आकार रचना)

- **आयताकार**

ऐसे रूपाकार जिनमें रेखाएँ समकोणीय होती है। ये रूप स्थिरता, दृढ़ता, शांति, एकता आदि भावों को बताते हैं।

- **त्रिभुजाकार**

ये वे आकार हैं जिनका आधार शीर्ष की अपेक्षा चौड़ा होता है। जैसे – पिरामिड का आकार। ये आकार स्थिरता, सुरक्षा व शाश्वतता व विकास का भाव प्रकट करते हैं।

- **विलोम त्रिभुजाकार**

ये आकार उल्टे त्रिभुज की आकृति के समान होते हैं, जो त्रिभुज के रूपाकार से विपरित स्थिति में प्रदर्शित हो रहे होते हैं। ये रूपाकार अनिश्चय, अशांति, लिप्तता व शीघ्र परिवर्तन आदि प्रभावों को उत्पन्न करते हैं।

इनके अतिरिक्त रूप को यर्थाथवादी, आंलकारिक, सरल, काल्पनिक व प्रतीकात्मक भेदों के आधार भी समझा जा सकता है। प्रत्येक कलाकार अपनी भावनाओं एवं संवेदनाओं के आधार पर बाह्य स्वरूपों से प्रेरणा ग्रहण कर, अपने चित्रों में मौलिक रूपों का सृजन करता है।

(ख) अनियमित

जिसका एक भाग दूसरे भाग के समान न हो। जैसे – शंख, पत्ती आदि।

चित्र 2 (अनियमित आकार रचना)

3. रंग/वर्ण

रंग चित्रकला का एक महत्वपूर्ण तत्व होता है। रंग वस्तुतः प्रकाश का गुण है जो नेत्रों के द्वारा मस्तिष्क के द्वारा अनुभव किया जाता है। प्रकाश की किरणें जब किसी वस्तु के ऊपर पड़ती हैं तो वह वस्तु प्रकाश के कुछ भाग को आत्मसात् कर परावर्तित (प्रतिबिम्बित) करती हैं और वह प्रतिबिम्ब हमें रंग के रूप में दिखाई देता है। इसे इन्द्रधनुष के उदाहरण से भी समझा जा सकता है जहाँ प्रकाश की किरणें विबग्योर (Vibgyor), बैंगनी (V), आसमानी (I), नीला (B), हरा (G), पीला (Y), नारंगी (O) एवं लाल (R) रंगों की आभाओं में दिखाई देती हैं। इसे त्रिकोण शीशे के द्वारा भी समझा जा सकता है।

प्रत्येक रंग के कुछ भौतिक गुण होते हैं, जिन्हें निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।

- रंगत
- मान
- प्रबलता
- हल्की रंगत
- गहरी रंगत

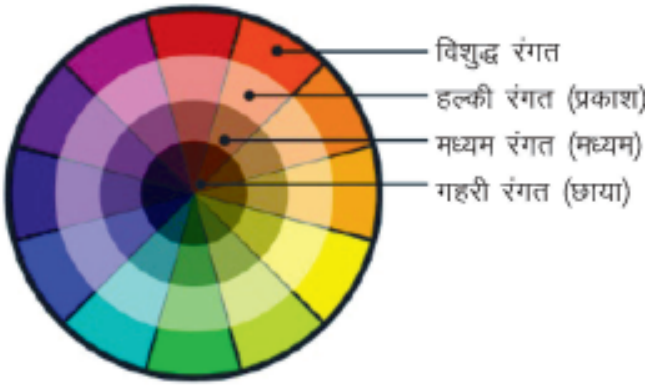

चित्र 3

- **रंगत**

रंगों का स्वभाव रंगत कहलाता है। 'रंगत' रंग का वह गुण होता है जिसके द्वारा हम लाल, पीले व नीले के बीच का भेद समझते हैं।

- **मान**

मान रंगत में हल्केपन व गहरेपन का सूचक है। इसे रंगों का गहरापन व हल्कापन भी कहते हैं। किसी भी रंग में काला रंग मिलाने से गहरा तथा श्वेत रंग मिलाने से हल्का प्रभाव प्राप्त होता है। प्रकाश से लेकर अन्धकार तक सफेद व काले रंग के अनेक मिश्रण हो सकते हैं। इनके मिश्रण से रंगों के मान को घटाया–बढ़ाया जा सकता है। यही श्वेत व काले रंग के विभिन्न मान कहलाते हैं।

- **प्रबलता**

रंगों की प्रबलता का अभिप्राय प्रायः चटकदार रंगों से होता है। रंगों में चटकपन शुद्धता के कारण भी हो सकता है और किन्हीं रंगों के मिश्रण द्वारा भी अर्थात जिन रंगों में चटकपन हो या जिन रंगों के मिश्रण से रंगों में तेजपन आ जाए, उन रंगों का यह गुण प्रबलता कहलाती है।

- **हल्की रंगत**

किसी भी रंग में श्वेत रंग मिलाने से उस रंग का हल्का रंग बनता है। इसे उक्त रंग के मान का बढ़ना कहते हैं या उक्त रंग की आभा कहते हैं। किसी एक रंग के उपवर्ण जिससे उसके हल्के–गहरेपन का आभास होता है।

- **गहरी रंगत**

किसी भी रंग में काला रंग मिलाने से गहरा रंग बनता है। इसे उक्त रंग छाया कहते हैं तथा यह उक्त रंग के मान का घटना कहलाता है। इससे वस्तुओं में ठोसपन या धुँधलापन का प्रभाव उत्पन्न होता है।

रंग भेद

- **प्राथमिक रंग**

प्राथमिक रंग तीन होते हैं – लाल, पीला और नीला। ये मौलिक रंग द्रव्य होते हैं। ये किन्हीं अन्य रंगों के मिश्रण से नहीं बनते बल्कि इनके मिश्रण से अन्य रंग बनते हैं।

- **द्वितीय रंग**

किन्हीं दो प्राथमिक रंगों को मिलाकर प्रायः तीन द्वितीयक रंग बनते हैं। यह रंग होते हैं – नारंगी, बैंगनी और हरा। इन्हें हम ''द्वितीय श्रेणी के रंग कहते हैं।

पीला + लाल = नारंगी
लाल + नीला = बैंगनी
नीला + पीला = हरा

- **तृतीयक/समीपवर्ती रंग**

द्वितीय श्रेणी के दो रंगों के मिश्रण से जो रंग तैयार होते हैं। उन्हें हम समीपवर्ती या तृतीयक रंग कहते हैं।

नारंगी + बैंगनी = तृतीयक रंग
बैंगनी + हरा = तृतीयक रंग
हरा + नारंगी = तृतीयक रंग

चित्र 4 प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक रंग चक्र

- **पूरक या विरोधी रंग**

वर्ण–क्रम में एक दूसरे के ठीक सामने आने वाली रंगते एक–दूसरे की विरोधी रंगते होती हैं अथवा किन्हीं भी दो प्रमुख रंगतों को मिला दिया जाये तो इससे प्राप्त द्वितीयक रंगत शेष बची हुई मुख्य रंगत की विरोधी रंगत होती हैं। जैसे – लाल का विरोधी या पूरक है – हरा, नारंगी का पूरक है नीला और बैंगनी का पूरक है पीला।

- **अवर्णीय रंग**

श्याम एवं श्वेत को अवर्णीय रंग माना जाता है। लेकिन किसी भी रंगत की तानों के लिए दो रंग महत्वपूर्ण होते हैं।

- **उष्ण तथा शीतल रंग**

प्रकाश के प्रभाव से जब हम रंगों को देखते हैं। तब उत्तेजना के विचार से कुछ रंगों में उष्णता का प्रभाव और कुछ रंगों में शीतलता का प्रभाव उत्पन्न होता है। चित्र में उष्ण रंगों से वस्तु निकट व शीतल रंगों से वस्तु के दूर होने का आभास होता है, जो रंगों से वस्तु के दूर होने का आभास होता है। जो रंग सूर्य के आस–पास वाले रंगत के होते हैं वे उष्ण स्वभाव के और जो रंग प्राकृतिक सुन्दरता जैसे पेड़–पौधे, सागर–आकाश के सम्बद्ध होते हैं वे शीतल स्वभाव वाले होते हैं।

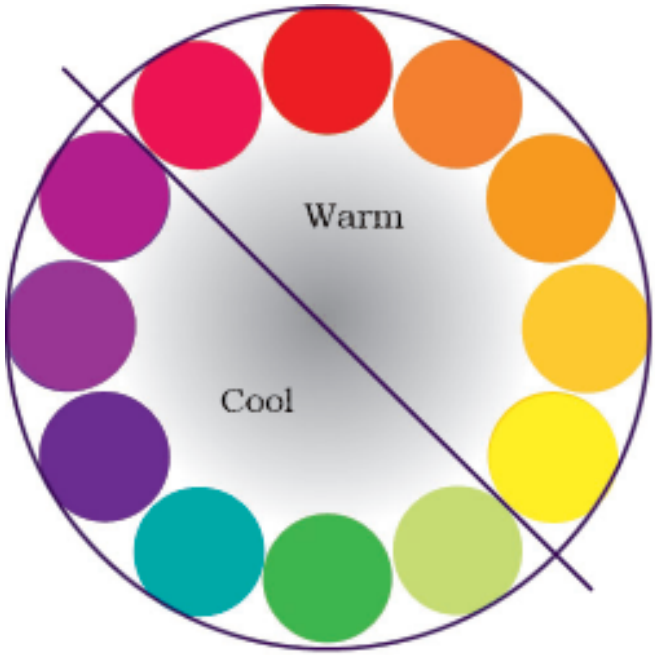

चित्र 5 उष्ण–शीत रंग चक्र

- **उष्ण रंग**

लाल, पीला, नारंगी या इनके संयोग से बने रंग उष्ण स्वभाव वाले हैं।

- **शीतल रंग**

नीला, हरा या इनके संयोग से बने रंग शीत (ठण्ड) स्वभाव वाले होते हैं।

- **उदासीन रंग**

श्वेत, काला या इनके मिश्रण से बने रंग उदासीन रंग कहलाते हैं।

रंग योजना

किसी भी चित्र की रचना के लिए सबसे महत्वपूर्ण होता है रंग विन्यास। चित्र में आकर्षण उत्पन्न करने के लिए रंग–योजना का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। रंग–योजना द्वारा ही चित्र संयोजन को अच्छा बनाया जा सकता है।

- **एकवर्णीय रंग योजना**

एक वर्णीय रंग योजना के चित्र में रंग व रंगों की गहराई, गहरी, उभार हल्के में दिखलाई जाती है। इस विधि में प्रयुक्त टोन में गहरे व हल्केपन का संतुलन होता है। इसमें किसी एक रंग की विभिन्न रंगतों का प्रयोग कर जो चित्र रचना की जाती है उसे एकवर्णीय रंग योजना कहते हैं।

चित्र 6 एकवर्णीय रंग योजना

- **बहुवर्णीय रंग योजना**

किसी भी चित्र में अनेक रंगों के प्रयोग की योजना को बहुवर्णीय रंग योजना कहा जाता है। इन चित्रों को बनाते समय रंगों के सामंजस्य व संतुलन का विशेष ध्यान और रंगों के ज्ञान का होना परम आवश्यक है।

- **विपरीत – पूरक रंगयोजना**

चित्रांकन में जब कोई दो प्रथम श्रेणी के रंग तथा उनमें से एक का विरोधी द्वितीय श्रेणी की रंगत ले अथवा दो प्रथम श्रेणी के रंग तथा दोनों के मध्यवर्ती का विरोधी तृतीय श्रेणी का कोई रंग ले तो वर्ण योजना 'विपरीत–पूरक रंग–योजना' कहलाती है।

- **पूरक – रंग – योजना**

वर्ण चक्र के प्राथमिक रंगों के परस्पर आमने–सामने के रंग पूरक रंग कहलाते हैं। इनमें एक रंग प्रथम श्रेणी का होता है तथा दूसरा द्वितीय श्रेणी का रंग होता है। पूरक रंग–योजना एक से अधिक पूरक रंगों की होती है। जैसे – लाल + हरा, पीला + बैंगनी, नीला + नारंगी।

- **विरोधी रंग–योजना**

जिन चित्रों में विपरीत स्वभाव वाले तीन–तीन रंगों के समूहों का प्रयोग होता है। उन्हें विरोधी वर्ण–योजना वाला चित्र कहा जाता है।

जैसे – लाल, पीला व नीला एक–दूसरे के विरोधी रंग होंगे। नारंगी, बैंगनी व हरा एक दूसरे के विरोधी रंग होंगे।

- **वर्णहीन रंग–योजना**

चित्रांकन में श्वेत, काले व भूरे रंगों का प्रयोग करने से चित्र वर्णहीन कहलाता है। उपरोक्त रंगों को रंग की श्रेणी में नहीं गिना जाता। ये 'उदासीन/तटस्थ' रंग कहलाते हैं।

एक चित्र में अच्छी आकर्षित करने वाली रंग–योजना के लिए उपरोक्त तथ्यों का तथा रंगों की विशेषताओं, प्रभावों व गुणों का ध्यान रखना महत्वपूर्ण होता है।

रंगों की विशेषताएँ एवं प्रभाव

रंग दृश्यात्मक अनुभूति का महत्वपूर्ण पक्ष होता है। यह मानव के मस्तिष्क पर प्रभाव डालते हैं। रंगों का अपना प्रतीकात्मक व मनोवैज्ञानिक अर्थ भी होता हैं। जैसे –

- **लाल**

यह सर्वाधिक उत्तेजित करने वाला रंग है। इस रंग से सक्रियता एवं आक्रमणता प्रकट होती है। यह रंग क्रोध, प्रेम, श्रृंगार व वीरता को भी प्रकट करता है।

- **पीला**

पीला रंग ऊर्जा प्रदान करने वाला आकर्षक रंग है। यह मानसिक सक्रियता को बढ़ाने वाला है। इससे प्रकाश, दिव्यता, प्रोत्साहन, आशा एवं सन्तुष्टि आदि प्रकट होती है।

- **नीला**

नीला रंग शान्ति को प्रकट करने वाला होता है। यह शीतलता व एकाग्रता प्रदान करता है। इससे आशा, लगन, आनन्द, विशालता, ईमानदारी, मधुरता, निष्क्रियता, विस्तार, अनन्तता, विश्वास, आत्मीयता एवं सद्भाव आदि प्रकट होता है।

- **हरा**

यह रंग ताजगी का एहसास कराने वाला है और मन को सुख की अनुभूति प्रदान करता है। इससे हरियाली प्रकट होती है। यह रंग सौन्दर्य, माधुर्य, सुरक्षा, विश्राम आदि को प्रकट करता है।

- **बैंगनी**

यह रंग राजसी वैभव का प्रतीक है। इससे सम्मान, रहस्य, समृद्धि, प्रभावशीलता, ऐश्वर्य, श्रेष्ठता, नाटकीय एवं वीरता आदि प्रकट होती है। इस रंग में लाल एवं नीले रंग के मिश्रित प्रभाव विद्यमान रहते हैं।

- **नारंगी**

नारंगी रंग अध्यात्मिकता का सूचक है। यह प्रेरणादायक है और ज्ञान प्रदान करता है। यह अत्यधिक क्रियाशील है तथा चित्त को शान्ति प्रदान करता है। इस रंग से वीरता, सन्यास, वैराग्य, दर्शन, ज्ञान एवं गर्व आदि प्रकट होते हैं।

- **सफेद**

सफेद रंग शान्ति, शुद्धता, पवित्रता एवं सत्य का प्रतीक है। यह प्रकाश युक्त हल्का तथा कोमल है तथा शुद्ध रंगों की श्रेणी में आता है।

- **काला**

काला रंग गम्भीरता एवं एकान्तवास का प्रतीक है। यह शुद्ध रंगों की श्रेणी में आता है। इससे भय, शोक, आतंक, अवसाद, अन्धकार एवं विश्वासघात आदि प्रभाव उत्पन्न होते हैं।

4. तान

तान रंगत के हल्के व गहरेपन को कहते हैं। यह रंगत में सफेद तथा काले के परिणाम का द्योतक है। किसी भी वर्ण में सफेद या काले की मात्रा के अन्तर से उसके अनेक तान प्राप्त कर सकते है। तान किसी भी चित्र में प्रयुक्त वर्ण आयोजन की जान है। किसी भी एक वर्ण की सतह पर प्रकाश के एक समान भाव के अभाव में भी उस वर्ण के विभिन्न तान प्रस्तुत हो जाते हैं। इसके विपरीत प्रकाश के एक समान प्रभाव के होते हुए भी वस्तु के एक तलीय न होने पर भी उसके वर्ण के विभिन्न तान प्रस्तुत हो जाते है।

तान का वर्गीकरण –

1. छाया
2. मध्यम
3. प्रकाश

वस्तुतः तान का यह क्रमिक विभाजन काले व सफेद की मात्राओं के रंग में मिश्रण से प्राप्त किया जाता है, जो रंग को हल्का व गहरा बनाती हैं।

कोई भी चित्र तान के अभाव में अधूरा रहेगा यथार्थ अंकन के लिए तान आवश्यक तत्व है। पास की आकृति को गहरी तान एवं दूर की आकृति को हल्कीतान में चित्रित कर परिप्रेक्ष्य के प्रभाव को उत्पन्न किया जाता है। द्विआयामी धरातल पर त्रिआयामी प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है एवं चित्र में सन्तुलन, विरोधाभास एवं लय आदि प्रभाव भी उत्पन्न किये जा सकते हैं।

5. पोत

''किसी भी वस्तु के धरातल के गुण को ही पोत कहते हैं।''

कला तत्वों में पोत का विशेष महत्व है। अतः चित्रकार को इसके प्रयोग में विशेष कुशलता प्राप्त करना अनिवार्य है। ''चित्रतल पर यथार्थ अंकन की दृष्टि से पोत महत्वपूर्ण तत्व होता है। पोत की विविधता से अन्तराल को गति प्रदान कर उसकी एकरसता को समाप्त किया जा सकता है।

चित्रकार द्विआयामी धरातल जैसे कपड़ा, मिट्टी, छाल, ताड़पत्र, भित्ति आदि को अपनी अभिव्यक्ति का साधन बनाता है और इनके स्वाभाविक पोत का प्रयोग वह अपनी अभिव्यक्ति में करता है। धरातल की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति को पोत के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। चिकने, खुरदरे, रूई, तेल, पत्थर, पानी आदि का अंकन पोत द्वारा ही रूपभेद को प्राप्त करता है।

अभिव्यक्ति चित्रकार प्राचीन समय से ही प्रयोग करता रहा है, क्योंकि कला मात्र दृष्टिगत ही न होकर कलाकार की अनुभूतियों के साथ बन्धकर भी चली है। पोत तीन प्रकार के होते हैं।

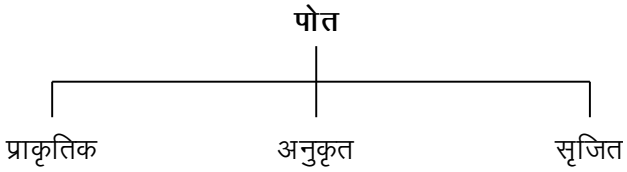

पोत का वर्गीकरण

पोत को तीन भागों में विभाजित किया जाता है –

(क) प्राकृतिक

इसके अन्तर्गत वे सभी धरातल आ जाते हैं जो प्रकृति तथा मानव निर्मित वस्तुओं में होते हैं। पदार्थ चित्रण में कलाकार को इसका अध्ययन स्पर्श करके भी करना चाहिये। पोत का वस्तुओं (पुष्प, पत्र तथा फल आदि) को काटकर तथा सुखाकर भी अध्ययन करना चाहिये।

(ख) अनुकृत –

प्रकृति प्रदत्त पोत का अनुकरण करके निर्मित किये जाने वाले पोत अनुकृत पोत कहे जाते हैं। पदार्थ–चित्रण में प्रतिकृति अंकन हेतु चित्रकार इसका प्रयोग करता है। प्रकृति में अनुभूत पदार्थों को चित्रित करते समय इनके धरातलीय गुणों का आभास या भ्रम कराना इस प्रकार के पोत की श्रेणी में आते हैं।

पोत के विभिन्न उदाहरण (प्राकृतिक, अनुकृत एवं सृजित)

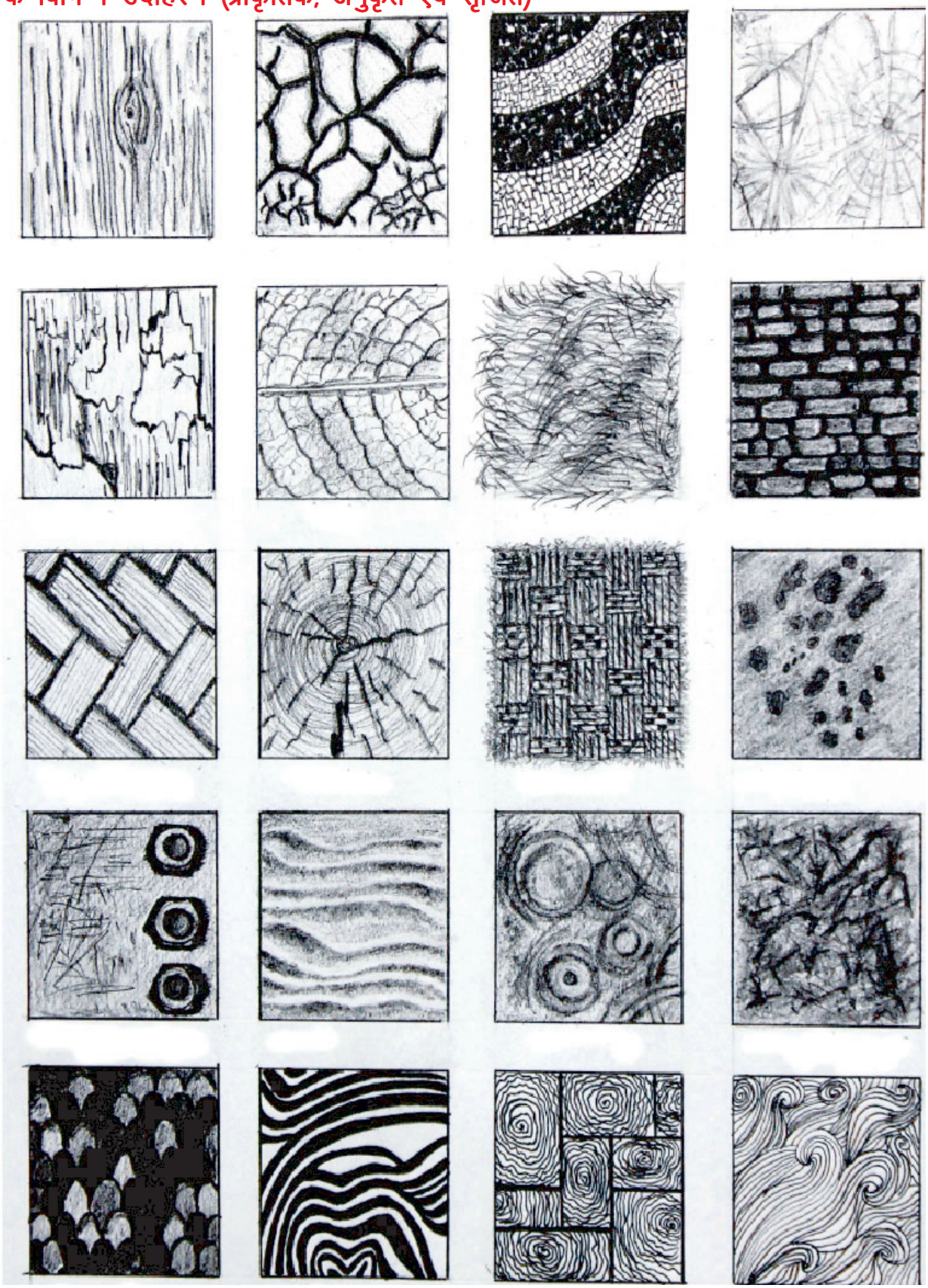

चित्र 7

यदि भारतीय लघु चित्रों का अध्ययन करें तो स्पष्ट होगा कि पोत का प्रयोग अनुकृति के आधार पर होते हुए भी अलंकृत बन पड़ा है। अनुकृत पोत के प्रभाव से द्वि–आयामी तल पर त्रिआयामी प्रभाव भी उत्पन्न किये जा सकते हैं।

(ग) सृजित

यह उपरोक्त दोनों पोत से भिन्न है। इसके अन्तर्गत कलाकार अनेक यंत्रों व विभिन्न साधनों के द्वारा भाँति–भाँति के पोत का सृजन करता है। पानी और तेल रंग परस्पर मिलाने पर, मोटे रंग लगाने पर एवं अन्य पोत संसाधनों के प्रयोग द्वारा वह कल्पनाजन्य नई सतह तथा धरातल का निर्माण करता है। चित्र कर्म क्योंकि एक सृजन कार्य है। अतः कलाकार नये–नये पोत सृजन करता है। के.के. हैब्बर जगदीश स्वामीनाथन तथा राजस्थानी कलाकार परमानंद चोयल की कृतियों का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि आधुनिक चित्रकार पोतविधि के प्रति कितने सचेत थे।

पोत का अन्वेषण

अन्वेषण

संभावित यन्त्र	संभावित चित्रभूमि	संभावित विधि
पेंसिल	प्लास्टिक	टपकाना
स्याही	लकड़ी	रगड़ना
तेल क्रेयान	कागज	स्पर्श
पोस्टर रंग	कपड़ा	घुमाना
जल रंग	मैसोनाइट बोर्ड	दबाना
तेल रंग	रेगमार कागज	फाड़ना
अन्य	अन्य	जलाना
		आदि।

6. अन्तराल

अन्तराल चित्र का वह तत्व है जिसके अभाव में संयोजन असम्भव है। द्वि–आयामी चित्र–भूमि ही चित्र का अन्तराल होती है।

व्यापक अर्थ में 'अन्तराल' चित्र का वह तत्व है जो प्रत्येक रूपाकार एवं तत्वों को अपने में समाहित करता है।

अन्तराल की परिभाषा

चित्रकार जिस चित्र–भूमि पर अंकन कार्य करता है, वह स्पष्टतया द्वि–आयामी होती है। जिस पर वह रूप का निर्माण करता है। यही अन्तराल कहलाता है।

धरातल का विभाजन

धरातल पर रेखा अंकित करते ही वह दो भागों में विभाजित हो जाता है। यह विभाजन दो प्रकार का होता है –

(क) सम–विभक्ति

रेखाओं की सहायता से चित्र–भूमि को इस प्रकार विभक्त किया जाता है कि दाँये–बाँये और ऊपर–नीचे के तल का भार बराबर हो। प्राचीन भारतीय चित्रकारों ने प्रायः सम–विभक्ति का ही प्रयोग किया है। सम–विभक्ति का प्रयोग सन्तुलन, एकता शक्ति व समता आदि भाव को प्रदर्शित करने के लिए होता है।

(ख) विषम विभक्ति

इस विभाजन में, ''जैसा इधर, वैसा उधर'' वाली परिपाटी का पालन नहीं किया जाता बल्कि यहाँ कलाकार स्वतन्त्र होता है कि वह किसी भी प्रकार का असम विभाजन करें। इसमें द्वारा मौलिकता व सृजन का पक्ष प्रबल होता है। यह विभाजन उत्तेजना, प्रगति, सृजन एवं क्रियाशीलता का भाव उत्पन्न करने में सहायक होता है।

सक्रिय तथा सहायक अन्तराल

चित्र–भूमि पर जो विभक्ति का मुख्य स्थान होता है। वह सक्रिय विभक्ति तल अथवा अन्तराल कहलाता है तथा अन्य गौण विभक्तियाँ सहायक तल अथवा अन्तराल कहलाता है।

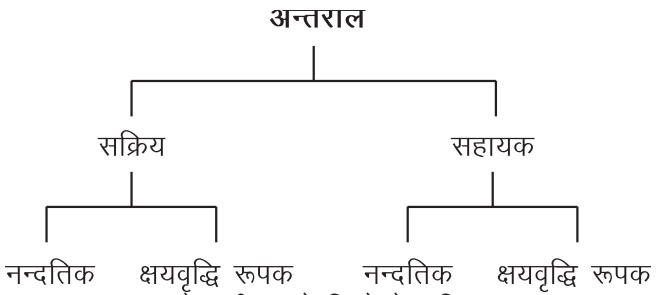

प्रायः संसार के सभी अच्छे चित्रों में सक्रिय व सहायक तल का सुन्दर समन्वय एवं संयोजन किया गया है। पूर्वीय कला में तो सृजन अधिक ही निखरकर आया है।

अन्तराल तथा रूप व्यवस्था

वस्तु आकृति जितना स्थान घेरती है वह उनका धनफल परिणाम के आधार पर परस्पर सम्बन्ध होता है। चित्रभूमि द्वि–आयामी होती है। अतः चित्रभूमि पर केवल दृष्टि–भ्रम उत्पन्न करके ही त्रि–आयामी प्रभाव लाते हैं और आकारों के मध्य दूरी के प्रभाव को स्पष्ट करते हैं। चित्रभूमि पर यह प्रभाव वास्तव में उसको विभाजित करके ही प्राप्त किया जा सकता है जिसकी विधि निम्न है –

- **अतिच्छादित बल**

इस विधि द्वारा आकारों के मध्य दूरी का आभास होता है, जो तल सर्वाधिक निकट होगा वह अतिच्छिादित नहीं होगा। अन्य शेष तल आच्छादित हो सकते है, चाहे तल का परिणाम एक समान ही हो।

- **आकार में विभिन्नता**

चित्रभूमि पर आकार की महत्ता के अनुसार उन्हें छोटा–बड़ा दिखाकर भी नियोजन किया जा सकता है। अजन्ता का माता तथा पुत्र वाले चित्र में तथागत (बुद्ध) को आकार के विशाल दिखाकर उनकी वरीयता व ज्ञान का प्रदर्शन किया है। इस सिद्धान्त का प्रयोग मिश्र की चित्रकला में भी किया गया है।

- **आकार की स्थिति**

चित्र–भूमि पर आकृति को विभिन्न स्थान में रखकर भी दूरी का आभास उत्पन्न किया जा सकता है। चित्रभूमि का सबसे नीचा किनारा सर्वाधिक निकट और इसी क्रम से ऊपर जाने पर दर्शक से दूर होने का आभास देता है।

- **रेखीय क्षयवृद्धि**

जो आकार क्षितिज रेखा के जितने निकट होता जायेगा वह उतना ही छोटा और ओझल बिन्दु पर जाकर उसका अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। इस प्रकार क्षयवृद्धि के नियम से आकारों के मध्य दूरी का भाव उत्पन्न किया जा सकता है।

- **वातावरणीय क्षयवृद्धि**

निकट का आकार स्पष्ट तथा प्रखरवर्ण में तथा दूर का आकार अस्पष्ट तथा मध्यम रंगतों में होगा – ऐसा वातावरण के झीने परदे के कारण होता है। इस सिद्धान्त का प्रयोग करके भी दूरी का प्रभाव लाया जा सकता है। चित्रभूमि पर गर्म वर्ण तथा शुद्ध रंगतों का प्रयोग निकटता और ठण्डे तथा मिश्रित वर्ण का प्रयोग दूरी का बोध करते हैं।

अन्तराल में आकरों को इन विधियों द्वारा संजोकर उसमें सक्रियता तथा प्रभाव उत्पन्न कर सकते है। अतः चित्रभूमि पर अन्तराल व आकारों का सम्बन्ध मधुर होना चाहिये।

स्वर्णिम विभाजन

अन्तराल विभाजन में सबसे श्रेष्ठ विभाजन वह कहा जाता है जहाँ एकता व रोचकता का भाव प्रस्तुत होता है। स्वर्णिम विभाजन गणितीय सिद्धान्तों पर आधारित होता है। इसमें चित्रभूमि का विभाजन इस प्रकार किया जाता है कि सबसे छोटे व सबसे बड़े आकार के बीच वही अनुपात होता है जो बड़े लाग के सम्पूर्ण विभाजन से ही अर्थात् बड़े आकार के क्षेत्र को छोटे आकार को बराबर किया जाए तो छोटे तो दो छोटे आकारों के बराबर एक बड़ा आकार होगा।

अ————————स————————ब

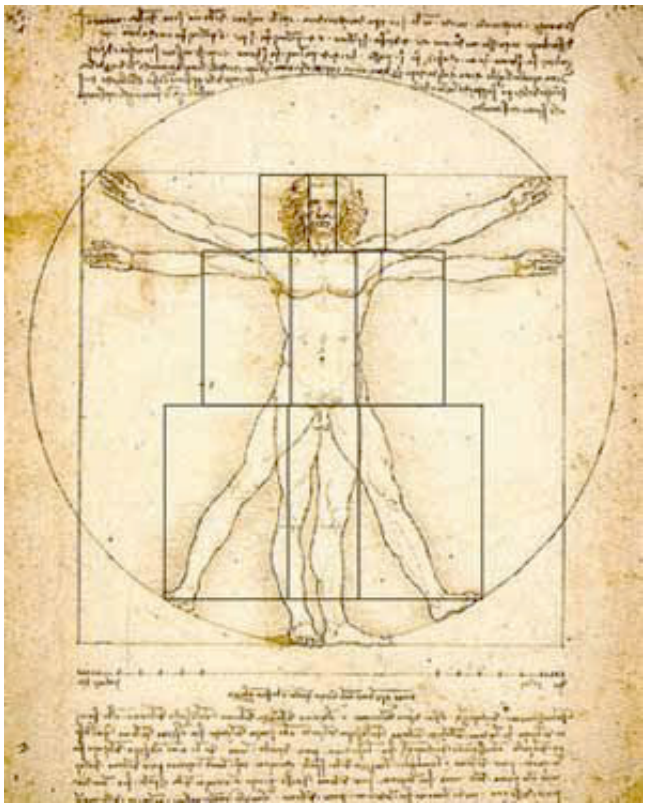

चित्र 8– लियोनार्डो दा वींची द्वारा सृजित 'विट्रूवियन आकृति'

स्वर्णिम सिद्धान्त का प्रयोग कला की सभी विधाओं में हुआ। स्थापत्य कला, मूर्तिकला एवं चित्रकला आदि सभी स्वर्णिम सिद्धान्तों से युक्त कृतियों प्रायः अमर हुई। मिश्रवासियों ने सर्वप्रथम गणितीय सिद्धान्तों का प्रयोग कला में किया जिन्हें गीज़ा के पिरोमिडों एवं चित्र में वींची की कृति 'विट्रूवियन आकृति' में देखा जा सकता है।

(ब) संयोजन के सिद्धान्त

संयोजन दो अथवा अधिक कला तत्वों की मधुर योजना को कहते हैं जिनमें से एक तत्व की प्रधानता रहती है। चित्र संयोजन में चित्र के तत्व, रेखा, रंग, तान, आकृति आदि को सुनियोजित करके कलाकार सशक्त अभिव्यक्तिपूर्ण सृजन कर सकता है।

वह संयोजन जिसमें तत्व इस प्रकार नियोजित हो कि सन्तुलन एवं आकर्षण के नियम की अवहेलना होती हो, कभी भी सन्तोषप्रद नहीं हो सकता। चित्र संयोजन करते समय कलाकार को रेखा, वर्ण तथा तान के अपने सारे ज्ञान एवं अनुभव का प्रयोग करना होता है। सन्तुलन तथा आकर्षण से सम्बन्धित संयोजन के इन सिद्धान्तों को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है–

1. एकता (सहयोग)
2. सन्तुलन

संयोजन के सिद्धान्त

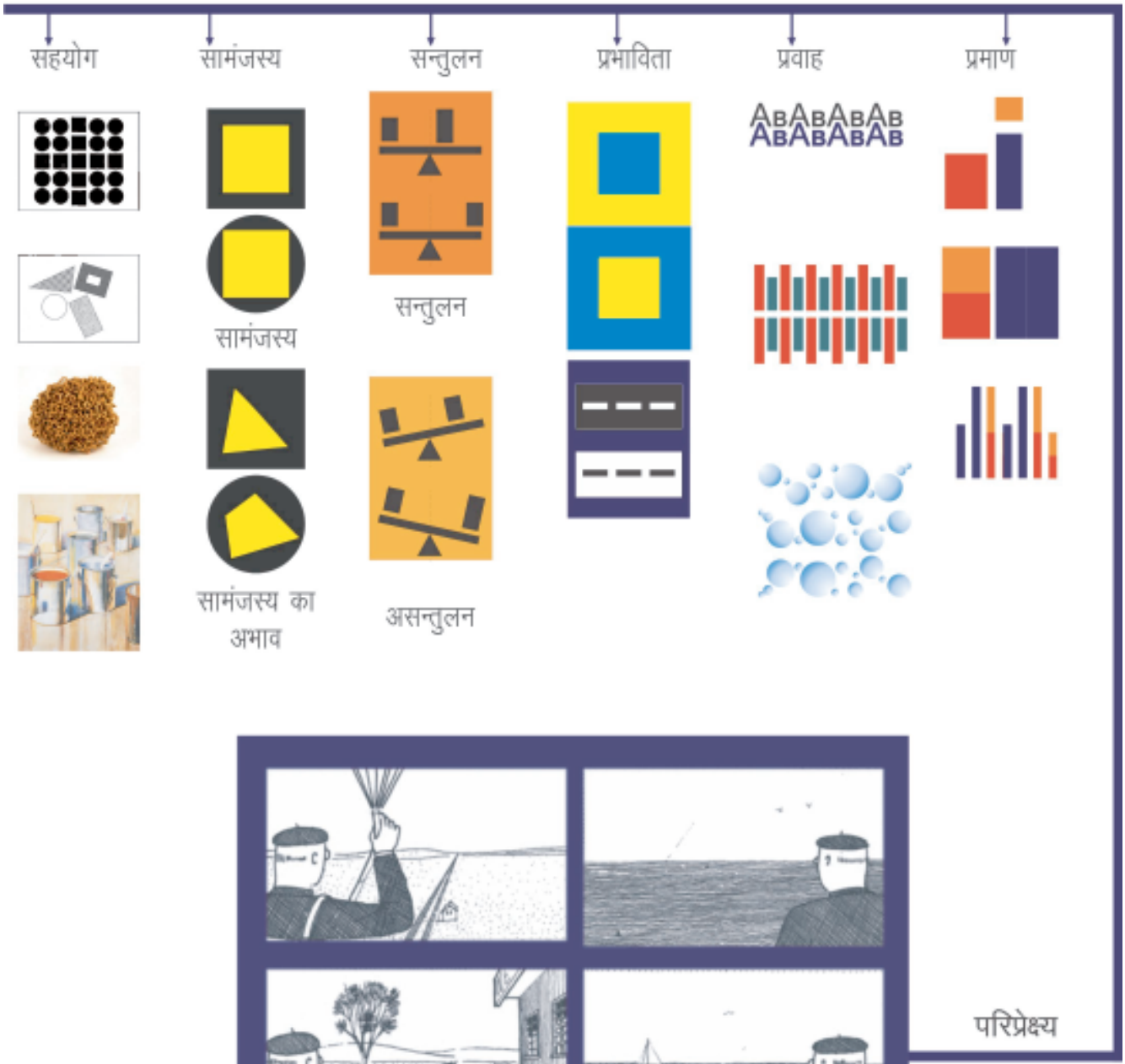

परिप्रेक्ष्य

3. लय (प्रवाह, ताल)
4. सामंजस्य
5. प्रभाविता (प्राबल्य)
6. प्रमाण (अनुपात)
7. परिप्रेक्ष्य

1. एकता (सहयोग)

सहयोग संयोजन का सबसे महत्व पूर्ण सिद्धान्त माना जाता है। सहयोग का अर्थ है चित्र–संयोजन के विभिन्न तत्वों में अनुभूत एकता, समानता तथा एक प्रकार का सहचर्य सम्बन्ध जो समस्त संयोजन को एकता के सूत्र में पिरोए रहता है। चित्र के विभिन्न तत्वों के इस तर्क–संगत सम्बन्ध को सहयोग कहते है।

चित्र 9 – अमृता शेरगिल की चित्रकृति

साधरणतया चित्रण में जब सहयोग की बात की जाती है तो चित्र के सभी तत्वों–रेखा, रूप, वर्ण, तान व पोत में चित्र में सहयोग या ऐक्य के लिए आकारों का दोहराव, तत्वों को एक–दूसरे के साथ जोड़ना, एक पैटर्न, रंगों व चित्र के चारों ओर सीमा रेखा आदि का भी प्रयोग किया जाता है। कलाकृति में रिक्त स्थान का सही प्रयोग भी एकता बनाने में सहायक होता है। चित्र रचना में सहयोग के दो स्वरूप सक्रिय सहयोग एवं निष्क्रिय सहयोग के रूप में निर्धारित किये जाते हैं।

2. सन्तुलन

सन्तुलन प्रकृति का मूलभूत सिद्धान्त है। सन्तुलन कला सृजन का वह सिद्धान्त है जिसके अनुसार चित्रण के सभी तत्व इस प्रकार व्यवस्थित हों कि उनका भार (आकर्षण) समस्त चित्र तल पर समुचित रूप से वितरित रहे। भार को अनुचित रूप से केन्द्रीकृत होने तथा चित्र को असन्तुलित होने से बचाना ही इसका ध्येय है।

चित्र 10 – मुगल शैली का चित्र

सन्तुलन एवं दृष्टिगत भार

- **रेखा का भार**

दृष्टि रेखा का अनुसरण करती है एवं रेखा दिशा का निर्देशन करती है। रेखा की गति एवं दिशा दर्शक की दृष्टि को प्रभावित करती है। कलाकार अपने चित्र के विषय अनुसार रेखाओं का प्रयोग करता है एवं रेखा की विविधता एवं उनके प्रभाव के अनुसार चित्र में सन्तुलन की व्यवस्था करता है।

- **आकृति का भार**

आकृति का भार उसके आकार पर निर्भर करता है। आकार का छोटा होना या बड़ा होना उसकी चित्र भूमि में स्थिति को निर्धारित करता है। छोटे व बड़े आकारों का सन्तुलित प्रयोग चित्र को आकर्षक बनाता है।

- **वर्ण का भार**

रेखा व आकार के समान रंगों का भी अपना भार होता है, जो रंगों की आकर्षण शक्ति को निर्धारित करता है। चित्र में उष्ण व शीतल रंगों का उचित प्रयोग वर्ण भार का उदाहरण कहा जाता है।

3. लय (प्रवाह)

कला की दृष्टि से प्रवाह, लय व गति का अभिप्राय प्रायः एक ही माना जाता है एवं प्रवाह का अर्थ चित्र–भूमि पर दृष्टि का स्वतन्त्र अबाध एवं मधुर विचरण अथवा गति होता है।

चित्र 11 – मुगल शैली का चित्र

प्रवाह युक्त चित्र में दृष्टिक्रम को कोई व्यवधान का सामना नहीं करना पड़ता। यह लय, प्रवाह रेखा, रूप, वर्ण अथवा तान सभी मिलाकर उत्पन्न करते है। रिक्त स्थान में कोई गति नहीं होती किन्तु चित्र तल में एक बिन्दु रखने मात्र से गति आरम्भ हो जाती है। बिन्दु से रेखा और रेखा से गति का बोध होता है। गति से लय की अनुभूति होने लगती है। अतः किसी चित्र में लय, गति का सुव्यवस्थित स्वरूप जिसमें दृष्टि विचरण निर्बाध हो सके प्रवाह, लय या गति को प्रस्तुत करता है।

रेखाओं द्वारा सरल, कोणीय एवं लहरदार आदि गतियों को संभव माना गया है। आकारों के क्रम एवं पुनरावृत्ति द्वारा भी गति उत्पन्न की जाती है।

4. सामंजस्य

सामंजस्य कला सृजन का वह सिद्धान्त है जिसके अनुसार चित्रण के सभी तत्व यथा वर्ण, तान एवं रूप आदि एक दूसरे के साथ मेल खाते हुए प्रतीत हों चित्र सामंजस्य पूर्ण कहलाता है एवं चित्र में निरर्थक विकर्षण–तत्व नहीं आ पाता।

अर्थात् जब किसी समूह के सभी अंग शक्तिशाली सादृश्य से बंधे हों तो वह सामंजस्य चयन का उदाहरण कहा जा सकता है ।

चित्र 12 – पिछवई, नाथद्वारा शैली

चित्र में सामंजस्य को रेखा सामंजस्य रूप सामंजस्य, पोत सामंजस्य, रंग सामंजस्य आदि के द्वारा प्राप्त किया जाता है।

रेखा सामंजस्य

(क) आवृत्ति रेखायें – जो एक दूसरे को अनुकरण करती है।
(ख) रेखायें जो एक दूसरे का गतिरोध करती हैं।
(ग) सन्धि रेखायें जो गतिरोध के प्रकार को मृदु बनाती है।

रूप सामंजस्य

मुख्य व सहायक रूपाकारों की ऐसी व्यवस्था जिसमें वे परस्पर व एक दूसरे के लिए पूरक का कार्य करें। छोटे एवं बड़े आकारों की सामंजस्यता आदि।

पोत सामंजस्य

एक चित्र मे एक दूसरे से मेल खाते पोत का प्रयोग हो। पोत की संरचना प्रकृति से प्राप्त होती है एवं पोत से किसी भी आकार को अधिक आकर्षक बनाया जा सकता है। अतः चित्र में पोत सामंजस्य का भी कुशलता से प्रयोग होना चाहिए।

5. प्रभाविता

चित्र में प्रभाविता का तात्पर्य उस सिद्धान्त से है जिसके द्वारा दर्शक की दृष्टि संयोजन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र या तत्व पर सर्वप्रथम पड़ती है तथा उसके पश्चात् महत्व के क्रमानुसार अन्य तत्वों पर तथा आकृतियों पर जाती है। चित्र की सृजन प्रक्रिया में यह निर्णय बहुत अहम होता है कि कलाकृति के कौन से तत्व या आकृति को आकर्षण का केन्द्र बनाना है एवं सहायक आकृतियों को कितना गौंण रखना है और प्रभाविता के सिद्धान्त का उद्देश्य एक रसता समाप्त करना और चित्रित आकृतियों के रूप के सहजता प्रदान करना है क्योंकि दृष्टिक्रम महत्वपूर्ण रूपाकृतियों की ओर केन्द्रित रहता है।

चित्र 13 – मारवाड़ शैली

(अ) वस्तु आकृतियों का उचित स्थापन होता है।

(ब) रंगों का विरोधाभास उत्पन्न होता है।

(स) आवश्यकतानुसार सज्जा का प्रयोग होता है।

(द) रिक्त पृष्ठभूमि का उचित संयोजन होता है।

6. प्रमाण (अनुपात)

यह भी एक मूलभूत प्राकृतिक सिद्धान्त है जो आकार एवं अनुपात से सम्बन्धित होता है। प्रमाण को 'समबद्धता का सिद्धान्त' भी कहा जाता है। यह आकृतियों का अपना प्रमाण (लम्बाई, चौड़ाई का सम्बन्ध) तथा सभी आकृतियों का एक–दूसरे से सम्बन्ध और तान तथा वर्ण इत्यादि का चित्रभूमि से सम्बन्ध निश्चित स्थापित करता है।

चित्र 14 – मुगल शैली का चित्र

प्रकृति में एक आनुपातिक व्यवस्था अन्तर्निहित होती है। जैसे पहाड़, पेड़, पशु, पक्षी, मानव आदि सभी का अपना एक निश्चित अनुपात, बनावट एवं आकार होता है एवं प्रत्येक की अपनी संरचना भी आनुपातिक रूप से होती है। जैसे कि सभी प्राणियों के अंग–प्रत्यंग एक निश्चित अनुपात के होते हैं। भारतीय कला में प्रमाण का महत्व षडंग के द्वारा जाना जा सकता है। शिल्प शास्त्रों में भी अनेक प्रकार के प्रमाणों का वर्णन प्राप्त होता है जिन्हें ताल व अंगुल प्रमाण के द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

7. परिप्रेक्ष्य

परिप्रेक्ष्य एक वैज्ञानिक सिद्धान्त है जिसके द्वारा चित्र में दूरी या गहराई के प्रभाव को उत्पन्न किया जाता है। चित्रकला में परिप्रेक्ष्य का सम्बन्ध द्विआयामी धरातल में वस्तु को त्रिआयामी रूप से चित्रित करने में रहता है अर्थात् किसी वस्तु को देखते समय तीन आयामों

लम्बाई, चौड़ाई एवं गहराई का भ्रम उत्पन्न करना ही परिप्रेक्ष्य है। इसे क्षयवृद्धि का सिद्धान्त भी कहा जाता है। चित्र धरातल में केवल लम्बाई और चौड़ाई दो आयाम होते हैं किन्तु इस द्वियामी धरातल पर जब लम्बाई एवं चौड़ाई के साथ–साथ गहराई या मोटाई को भी प्रस्तुत करना हो तो इस विशिष्ट विधि का प्रयोग किया जाता है। परिप्रेक्ष्य को अनेक रूपों में समझा गया है ।

चित्र 15 – मुगल शैली का चित्र

भारतीय पारम्परिक कला सिद्धान्त : षडांग

सृष्टि में जीवन के साथ ही कला का भी जन्म हुआ। काल की गति के साथ–साथ कला का स्वरूप परिवर्तित होता रहा एवं धीरे–धीरे कला के व्यावहारिक पक्ष के साथ–साथ सैद्धान्तिक पक्ष का भी विकास हुआ। जिसमें नियम निर्धारण कर कला को सुव्यवस्थित करने का प्रयास किया गया।

प्राचीन भारतीय साहित्य में विविध कलाओं की विस्तृत चर्चा प्राप्त होती है। जिसमें वात्स्यायन के कामसूत्र में वर्णित 64 (चौसठ) कलाओं में चित्रकला (आलेख्य) को चतुर्थ स्थान पर रखा गया है। कामसूत्र के प्रथम अधिकरण के तीसरे अध्याय की टीका करते हुए यशोधर पंडित नामक विद्वान ने अपनी पुस्तक ''जय मंगला'' में चित्रकला (आलेख्य) के छः अंगों का वर्णन एक श्लोक के रूप में किया है। वस्तुतः उन्होंने पहली बार कला के नियमों का उल्लेख किया है। उनके श्लोक की व्याख्या श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा उनकी पुस्तक ''भारतशिल्प षंडग'' में की गई जिसका हिन्दी अनुवाद डॉ. महादेव साहा ने किया।

रूपभेदाः प्रमाणानि भाव, लावण्य योजनम्।
सादृश्यं वर्णिका भंग इति चित्र षडंगकम्।।

(1) रूपभेद	–	सभी प्रकार की आकृतियों और उनकी विशेषताओं का ज्ञान।
(2) प्रमाण	–	अनुपात, नाप तथा शरीर रचना।
(3) भाव	–	आकृतियों में दर्शक को चित्रकार के हृदय की भावना दिखाई दे।
(4) लावण्य योजना	–	कलात्मकता तथा सौन्दर्य का समावेश
(5) सादृश्य	–	अनुरूपता देखे हुए रूपों की समान आकृति
(6) वर्णिका भंग	–	रंगों तथा तूलिका के प्रयोग में कलात्मकता

(1) रूपभेद

रूपभेद का शाब्दिक अर्थ है रूप–रूप में विविधता एवं भेद का अर्थ है मर्म या रहस्य अर्थात् रूप के रहस्य को समझना, रूप कहते है आकृति के लिए। प्रत्येक आकृति में ऐसी भिन्नता तथा विशेषता दर्शित होनी चाहिए, जो कि सर्वथा मौलिक हो और जिसकी किसी दूसरी आकृति से समानता न बैठती हो। वस्तुत जिस विशेष गुण के समावेश से किसी आकृति में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हो उसी गुण विशेष का नाम 'रूप' है।

रूप अनन्त है, उसको किसी परिधि में नहीं बाँधा जा सकता। रूप की पहचान दो प्रकार से की जा सकती है। एक तो आँखों के द्वारा और दूसरा आत्मा के द्वारा। दृष्टि के द्वारा हम किसी लम्बी, छोटी, चौरस, गोल, मोटी, पतली और काली वस्तु को ग्रहण कर सकते हैं और मन या आत्मा के द्वारा उसके भेद या स्वरूप को समझा जा सकता है।

भारतीय कला में रूपभेद का सबसे अच्छा उदाहरण हैं अजन्ता के चित्र। इनमें भीड़–भाड़ वाले चित्रों में भी प्रत्येक रूप में भेद है। सभी की अपनी चारित्रिक विशेषताएँ है। जिन्हें मन की आँखों से अनुभव किया जा सकता है।

चित्र 16

(2) प्रमाण

वस्तु के विषय में निर्मित ज्ञान प्राप्त करना उसकी निकटता, दूरी, लम्बाई, चौड़ाई अनुपात आदि का मान ही प्रमाण कहलाता है। प्रमाण, चित्रविद्या का वह अंग है, जिसके द्वारा हम प्रत्येक चित्र का मान (लम्बाई–चौड़ाई) निर्धारित कर सके, मूल वस्तु की यथार्थता का ज्ञान उसमें भर सकें।

प्रमाण के द्वारा हम मनुष्य, पशु, पक्षी आदि की भिन्नता और उनके विभिन्न भेदों को ग्रहण कर सकते हैं। पुरूष और स्त्री की लम्बाई में क्या भेद है, उनके समस्त अवयवों का समावेश किस क्रम से होना चाहिए, अथवा देवताओं और मनुष्यों के चित्रों के कद का क्या मान है। ये सभी बातें प्रमाण के द्वारा ही निर्धारित की जा सकती हैं। प्रमाण के द्वारा ही समुद्र की असीम दूरी व आकाश के विस्तार आदि को एक छोटे धरातल में प्रस्तुत किया जाता है।

चित्र 17

(3) भाव

भाव कहते हैं आकृति की भंगिमा को, उसके स्वभाव, मनोभाव एवं उसकी व्यंग्यात्मक प्रक्रिया को। चित्रकला में भावाभिव्यंजन को बड़ा महत्व दिया गया है। भिन्न–भिन्न भावों की अभिव्यंजना से शरीर में भिन्न–भिन्न भंगिमाओं का जन्म होता है। भाव एक मानसिक प्रक्रिया है, जिसके लक्षण कायिक धर्मों द्वारा अभिव्यक्त होते हैं।

चित्र 18

भाव का कार्य है रूप को भंगिमा देना और व्यंग्य का कार्य है रूप की ओट में भाव के इशारे को अभिव्यक्त रूप से प्रकट करना। भाव विशेष में अंगों की निश्चित क्रियाएँ होती हैं। इनके अनुसार आकृतियाँ समभंग, अभंग, त्रिभंग व अतिभंग मुद्रओं में बनाई जाती है।

(4) लावण्य योजना –

लावण्य कहते हैं रूप की संचति या परिमिति के लिए। रूप, प्रमाण और भाव के साथ चित्र में लावण्य का होना भी आवश्यक है। प्रमाण जैसे रूप को परिमिति देता है वैसे लावण्य भी परिमिति देता है।

भाव, आभ्यन्तर सौन्दर्य का बौधक है और लावण्य बाह्य सौन्दर्य का अभिव्यंजक। चित्र में बाह्य अलंकृति का समावेश लावण्य योजना द्वारा ही संभव है। लावण्ययोजना से चित्र में कान्ति और छाया का सुन्दर समावेश होता है। चित्र को वह नयनाभिराम बना देता है। विद्वानों ने लावण्य की तुलना एक प्रकार की चमक से भी

की है जो असली मोतियों में होती है। इस प्रकार लावण्य एक चमक के समान है जो आकृतियों को मधुर बनाता है।

चित्र 19

लावण्य का एक अर्थ नमक के लिए भी प्रयुक्त होता है। अर्थात् जिस प्रकार भोजन नमक के बिना स्वादहीन होना है उसी प्रकार चित्र लावण्य के बिना कांतिहीन होता है। लावण्य के साथ योजना शब्द चित्र की परिकल्पना की प्रक्रिया को भी प्रस्तुत करता है। अर्थात् योजनाबद्ध रूप में कार्य करना।

(5) सादृश्य

किसी मूल वस्तु के साथ उसकी प्रतिकृति की समानता का नाम ही सादृश्य है। किसी रूप के भाव को किसी दूसरे रूप की सहायता से प्रकट कर देना ही सादृश्य का कार्य है, सादृश्य के तीन अर्थ किये जा सकते हैं –

1. किसी वस्तु को उसी रूप में चित्रित करना
2. वस्तु के देश, प्रवृत्ति, स्थान आदि को समझकर चित्र बनाना।
3. किसी चित्र को उचित चिन्हों, प्रतीकों, उपमाओं व अलंकारों से युक्त चित्र बनाना। जैसे भारतीय कला में प्रायः निम्न उपमाओं का प्रयोग हुआ है।

1. अण्डाकृति या पानाकृति
2. भवे – धनुषाकार
3. कमर – डमरू
4. नासिका – शुक चंचु
5. नेत्र – कमल पत्र
6. नेत्र – मीनाकृत
7. गला – शखांकृति
8. अंगुलियाँ – सेम की फली

चित्र 20

(6) वर्णिका भंग

नाना वर्णों की सम्मिलित भंगिमा को वर्णिकाभंग कहते हैं। किस स्थान पर किस रंग का प्रयोग करना चाहिए तथा किस रंग के समीप किसका संयोजन होना चाहिए। ये सभी बातें वर्णिका भंग के द्वारा ही जानी जा सकती है। रंगों के भेद–भाव से ही हम वस्तुओं की विभिन्नता व्यक्त करने में समर्थ हो सकते हैं।

चित्र षडंगों में वर्णिका भंग का स्थान सबसे बाद में इसी लिए रखा गया है क्योंकि वह षडंगसाधना का चरम बिन्दु है। शेष पाँचों अंगों की सिद्धि हम कागज़ पर बिना एक भी रेखा खींचे, केवल मन और दृष्टि की गंभीर चिन्तना के द्वारा भी कर सकते हैं, किन्तु वर्णिका भंग के ज्ञान के लिए हमें हाथ में तूलिका लेकर दीर्घ अभ्यास करना ही पड़ेगा।

भारत में कला की जो अपार थाती सुरक्षित है। उसके महत्व का एक कारण यह भी रहा कि उसके निर्माता कलाकारों को उक्त षडांगों का पूर्ण ज्ञान था। भारतीय कला के ये अंग चित्रकारों के लिए साधना का विषय रहे क्योंकि उनका मानना था कि इन अंगों को प्रतिपादित करने पर ही हम चित्र को पूर्ण कह सकते हैं।

(स) सृजनात्मक प्रक्रिया

कला मानव की सहज अभिव्यक्ति है। वह आरम्भ से ही अपने चारों ओर के परिवेश से प्रभावित होकर उसे विविध माध्यमों द्वारा अभिव्यक्त करता रहा है। जैसे शब्द, आकार, गीत, नृत्य आदि आकारों द्वारा की गई अभिव्यक्ति चित्रकला कहलाती है ओर उसकी अपनी एक सृजनात्मक प्रक्रिया होती है। चित्रकार इस विशिष्ट सृजनात्मक प्रक्रिया के द्वारा कुछ तत्वों एवं संयोजन के सिद्धान्तों के आधार पर अपने भावों को मूर्त रूप दे पाता है। यह एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत मानव मस्तिष्क कुछ अवस्थाओं से या प्रक्रियाओं से गुजरता है जो निम्न प्रकार है –

1. अवलोकन (निरीक्षण)

मानव अपने सामान्य जीवन में चारों ओर से अनेक पदार्थों एवं आकारों से घिरा होता है इन आकारों और पदार्थों का ज्ञान वह अपने नेत्रों के द्वारा करता है। सृजन प्रक्रिया में निरीक्षण या देखना पहली प्रक्रिया है नेत्रों के द्वारा निरीक्षण के द्वारा ही आकार का ज्ञान होता है। अतः चित्र रचना प्रक्रिया में निरीक्षण का महत्वपूर्ण स्थान है। चित्र रचना में निरीक्षण सामान्य क्रिया ना होकर एक विशिष्ट क्रिया होती है क्योंकि इससे कलाकार को किसी वस्तु विशेष के आकार का ज्ञान होता है। किसी भी वस्तु का आकार, रंग, रूप एवं उसके आस–पास की वस्तुओं एवं वातावरण को समझना निरीक्षण के द्वारा सम्भव हो पाता है और यही देखना या निरीक्षण करना कलाकार को सृजन के लिए प्रेरित करता है और अपने भावों के अनुसार चित्र बनाने के लिए आकारों का चयन कर पाता है।

2. अवबोध (प्रत्यक्षण)

अवबोध को अवधान या प्रत्यक्षण भी कहा जाता है। प्रत्यक्षण भी एक संज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति या कलाकार अपनी निरीक्षण की गई या देखी हुई वस्तुओं या आकारों में से एक सक्रिय चयनात्मक प्रक्रिया द्वारा कुछ विशिष्ट आकारों का चयन करता है और उन आकारों पर अधिक ध्यान देता है। यह प्रक्रिया मनुष्य में आकृति के सौन्दर्य को अनुभूत करने से जुड़ी होती है अर्थात् कलाकार अपने सौन्दर्य चेतना और रूपबोध के द्वारा अपने चयनित आकारों को अन्य आकारों से अलग करता है जैसे उदाहरण के लिए एक कलाकार दृश्य चित्र बनाते समय अपने सामने स्थित विशाल दृश्य के कुछ विशिष्ट आकारों जैसे–वृक्ष, घर, भवन आदि का चयन कर उन पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है एवं अपने चित्र में अंकित करता है यही प्रत्यक्षण या अवबोध कहलाता है।

3. कल्पना

कला में कल्पना का अपना एक विशिष्ट महत्वपूर्ण स्थान होता है। कल्पना एक संवेदनशीलता से जुड़ी शक्ति है जो प्रत्येक मनुष्य में होती है प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में अनेक कल्पनाएँ करता है। वस्तुतः कल्पना एक वैचारिक स्वरूप है जिसमें मनुष्य अपने इन्द्रियजन्य अनुभवों से कुछ नये मानसिक आकार बनाता है। ये आकार मानव की संवेदना के आधार पर बदलते रहते हैं। कल्पना में बुद्धि एवं योजना निर्माण आदि का भी समावेश होता है। कल्पना एक प्रकार से मानसिक प्रत्यक्षीकरण है जिसमें व्यक्ति या कलाकार अपने मन में नवीन रूपों, आकारों आदि का निर्माण करता है। इस प्रकार कल्पना वह मानसिक क्रिया है। जिसके द्वारा कलाकार को किसी सम्पूर्ण परिस्थिति का प्रत्यक्ष बोध होता है और इसी के आधार पर वह अपने नव सृजन को आकार प्रदान करता है। कल्पना को कलाकार की सृजनात्मक शक्ति माना जा सकता है एवं चित्र रचना की सृजन प्रक्रिया में कल्पना का विशेष महत्व है क्योंकि उससे मिलकर ही कलाकार द्वारा देखे गये या अवबोध किये गये आकारों को कलाकृति के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

4. सृजनात्मक अभिव्यक्ति

कला सृजन या कला रचना एक विशिष्ट प्रक्रिया है अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा निरीक्षण किए गये और अवबोध किये गये या समझे गये आकार या कुछ विशिष्ट भाव जब कल्पना से जुड़ कर अभिव्यक्ति होते है तो इसे ही सृजनात्मक अभिव्यक्ति कहा जाता है यह अभिव्यक्ति कलाकार के अन्तःमन उसकी विचार धाराओं, कल्पनाओं और सृजनात्मकता की परिचायक होती है। ये अभिव्यक्ति स्वच्छंद व मुक्त होती है। यह अभिव्यक्ति सामान्य सूचनाओं से भिन्न होती है क्योंकि यह कलाकार के संवेगों एवं ज्ञानात्मक स्तर से भी जुड़ी होती है। जब कोई कवि या कलाकार अपने मन के भावों को शब्दों या आकारों के द्वारा प्रस्तुत करता है तो उसे ही कला एवं काव्य का नाम दिया जाता है जब कलाकार किसी विशेष माध्यम जैसे – चित्र, मूर्ति या संगीत आदि के द्वारा अपने को अभिव्यक्त करता है तो वह अभिव्यक्ति कलाकृति का रूप धारण कर लेती है। अतः कलाकृति मानव मस्तिष्क की वह सृजन प्रक्रिया है जहाँ वह अपने अनुभवों को सुनिश्चित कला तत्वों एवं संयोजन के सिद्धान्तों के आधार पर अभिव्यक्त करता है एवं यह अभिव्यक्ति पूर्व की तीन अवस्थाओं अर्थात् निरीक्षण, अवबोध व कल्पना से गुजरकर ही पूर्ण हो पाती है। सृजनात्मक प्रक्रिया कलाकार की सम्पूर्ण मानसिक विशिष्टता की ही अभिव्यक्ति है।

सृजनात्मक पक्ष

क्षय–वृद्धि या परिप्रेक्ष्य

क्षय–वृद्धि वह वैज्ञानिक ढंग है जिसकी सहायता से ठोस आकारों को समतल सतह पर इस प्रकार अंकित किया जाता है जिससे कि उनका रूप आकृति की तरह ही ठोस व प्रमाणयुक्त दिखाई दे। मानो उसे एक विशेष दृष्टि बिन्दु से देखा गया है। ऐसा करने पर आकृति के कुछ अंक अतिशय हो जाते हैं तथा कुछ में क्षय हो जाता है। सामान्यतः हमारी दृष्टि प्रत्येक वस्तु को अन्तराल में उस वस्तु की लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई अथवा गहराई इन तीनों आयामों में ग्रहण करती है, परन्तु चित्र–भूमि में मात्र दो ही आयाम होते है –लम्बाई व चौड़ाई।

इस चित्र तल पर किसी भी वस्तु के केवल दो ही आयाम प्रस्तुत किये जा सकते है। अतः तीसरे आयाम का भ्रम उत्पन्न करने के लिए जिस विशिष्ट विधि का प्रयोग किया जाता है, वह ''परिप्रेक्ष्य–प्रणाली'' कहलाती है। इस परिप्रेक्ष्य–प्रणाली का प्रयोग चित्र–भूमि पर अंकित वस्तुओं के आकार में हुए क्षय एवं वृद्धि तथा वातावरण में दूर जाती हुई समानान्तर रेखाओं के एक निश्चित बिन्दु पर मिलन के रूप में किया जाता है। यह ''दृष्टि–भ्रम'' भी कहलाता है। जैसे – आसमान एक निश्चित दूरी पर पृथ्वी से मिलता हुआ प्रतीत होता है। रेल की पटरी एवं सड़क दूर होती हुई आगे जाकर बन्द होती दिखाई देती है। जबकि वास्तविकता ऐसी नहीं होती है। कलाकार इसे दिखाने के लिए दूर की वस्तु को छोटा तथा पास की वस्तु को बड़ा बनाता है और वास्तविकता का भ्रम उत्पन्न करता है।

कला के इतिहास को देखने से ज्ञात होता है कि भिन्न–भिन्न समय के कलाकारों ने ''परिप्रेक्ष्य'' की समस्या को भिन्न–भिन्न प्रकार से सुलझाने का प्रयत्न किया है। जैसे कि रेखीय क्षयवृद्धि द्वारा, वातावरणीय क्षयवृद्धि द्वारा आदि।

- **रेखीय क्षयवृद्धि**

पास की आकृति बड़ी व दूर की आकृति छोटी अर्थात् आकृतियों की आकार भिन्नता से परिप्रेक्ष्य के प्रभाव को उत्पन्न किया जाता है। इस प्रकार दर्शायी गई क्षय–वृद्धि रेखीय क्षय–वृद्धि कहलाती है।

- **वातावरणीय क्षयवृद्धि**

दूर की आकृतियों की रंगत पास की आकृतियों के परिप्रेक्ष्य में धुंधली और कम प्रकाशमान होती है। दूर से दूरतर होने पर प्रत्येक रंगत का स्वभाव ठण्डा होता जाता है। इस प्रकार केवल धुंध और वर्ण को पृष्ठगामी बनाकर भी वातावरणीय क्षय–वृद्धि दिखाई जा सकती है। सपाट सतह पर शीतल एवं पीत रंगों द्वारा दूरी का प्रभाव दिखाया जाता है। सिद्धान्तः आकार दूरी के प्रभाव से शीतल एवं पीत अनुभव होते है क्योंकि उनकी रंगत प्रकाश, वायु तथा दूरी से प्रभावित होती है।

- **आकारों की नन्दतिक क्षयवृद्धि**

केवल आकार के क्षय अथवा वृद्धि के आधार पर नन्दतिक दूरी का प्रभाव उत्पन्न करने को नन्दतिक क्षय–वृद्धि कहते हैं। यह वातावरणीय एवं रेखीय क्षय–वृद्धि के वैज्ञानिक सिद्धान्त से भिन्न है। भारतीय लघु–चित्रों में इस सिद्धान्त का ही प्रयोग हुआ है।

माध्यम उपयोग

प्राचीनकाल से ही मानव अपने विचारों, भावों व संवेदनाओं की अभिव्यक्ति विभिन्न प्रकार की रचना सामग्री जैसे – प्राकृतिक रंग – खड़िया, गेरू, मिट्टी, कोयले आदि के माध्यम से प्रस्तुत की और समय के साथ–साथ चित्रण माध्यम की सामग्री व स्वरूप में विविधता एवं विकास दिखाई देता है। माध्यम उपयोग के संदर्भ में यह माना जा सकता है कि जिस प्रकार संगीतकार को स्वरों और कवि को शब्दों और उनके उपयोग का ज्ञान आवश्यक है उसी प्रकार एक चित्रकार को अपने माध्यम के उपयोग की विधि एवं सम्भावनाओं का ज्ञान भी आवश्यक है। माध्यम के उचित ज्ञान के अभाव में वह अपने भावों की अभिव्यक्ति कुशलता पूर्वक नहीं कर सकता। भारतीय शिल्प शास्त्रों में भी कलाकार के लिए माध्यम उपयोग का प्रविधिक ज्ञान आवश्यक बताया गया है एवं शास्त्रों में विविध प्रकार के माध्यमों एवं उनके उपयोग की प्रविधि विस्तार से समझायी गयी है। किसी चित्र की रचना में कला तत्वों आदि के साथ–साथ चित्रण माध्यम का भी विशेष महत्व होता है क्योंकि कलाकार अपने विशिष्ट माध्यम के द्वारा ही कला के तत्वों का सही प्रयोग करते हुए स्वयं को अभिव्यक्ति कर पाता है।

चित्र रचना के लिए माध्यम के साथ विभिन्न भौतिक सामग्रियाँ जैसे रंग, पदार्थ एवं रंगों के सम्वाहक (तरल द्रव) आदि का ज्ञान होना भी आवश्यक है। विषय के अनुसार उपर्युक्त माध्यम उपयोग के द्वारा विशिष्ट प्रभावों को उत्पन्न किया जा सकता है।

अंकन

रेखाओं द्वारा आकृति या चित्र बनाना अंकन कहलाता है। अंकन का तात्पर्य चित्रांकन आरेखन, आरेख, रेखाचित्र, रेखाकंन, खाका व खिंचाव आदि से लिया जाता है। प्रागैतिहासिक काल में ही मानव ने अपने अनुभवों की अभिव्यक्ति के लिए रेखांकन का प्रयोग किया था।

अंकन का अर्थ है भाव–भंगिमा सहित रेखांकन करना या दर्शाना। अंकन का आशय नकल करना नहीं है। किसी विचार को स्पष्ट करना, पूर्व योजना चित्रण करना है, इससे हम अपनी कल्पना को प्रकट करते हैं। यह विवरणात्मक रूप में बनाई जाती है। जब हम किसी वस्तु को व्यक्तिगत रूप से, किसी रूप में देखते हैं और उसका उसी रूप में चित्रण करते है तो वह अंकन कहलाती है।

किसी धरातल पर पेन्सिल, पैन, चॉक, चारकोल, निब, स्याही व तूलिका जैसे साधनों से आवश्यकता–अनुरूप, कल्पना–अनुरूप चित्र बनाना अथवा आकृतियाँ अंकित करना अंकन कहलाता है।

- **अनुर्अंकन**

किसी भी देखी हुई आकार, वस्तु अथवा समूह के अंकन को अपने मन से बनाना अर्थात् विचारों, भावों एवं कल्पनाओं को समाहित करते हुए, नवीन प्रयोगों के साथ प्रमाण–परिवर्तन कर चित्र–रचना करना अनुर्अंकन कहलाता है। जिसमें अनुकृति मूलक रचना को गुण–संशोधन द्वारा व्यक्तिगत अनुभूति की सूक्ष्म अभिव्यक्ति करने को अनुर्अंकित करते है।

अनुर्अंकन द्वारा रचनात्मक क्षमता को बढ़ाने एवं कलाकारों को अपने विचारों की अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करने का अवसर मिलता है। जब चित्रकार किसी वस्तु या आकार को देखता है तब उसके मस्तिष्क पर उसका सम्पूर्ण प्रभाव अंकित हो जाता है। अनुर्अंकन करते समय चित्रकार चित्रण के प्रमुख तत्त्व–बिम्बों को ही सृजन–प्रेरणा का आधार बनाता है, देखे हुए आकारों का स्वतन्त्र चित्रण करता है और अपने कलात्मक गुणों की अभिवृद्धि करता है। अनुर्अंकन बन्धन मुक्त होता है। इसका अभ्यास करने से चित्रकार अपनी सृजन क्षमता का विकास करता है।

टिप्पणी – अंकन और अनुर्अंकन की विस्तृत व्याख्या प्रायोगिक खण्ड में की गई है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. प्राथमिक रंगों के नाम बतायें?
2. तान किसे कहते हैं?
3. पोत किसे कहते है?
4. अन्तराल की परिभाषा दीजिये।
5. स्वर्णिम विभाजन सिद्धान्त क्या है?
6. सामंजस्य की परिभाषा दीजिये।
7. चित्र में अनुपात की क्या भूमिका हैं?
8. चित्र में कल्पना का क्या महत्व हैं?
9. सृजनात्मक अभिव्यक्ति किसे कहते हैं?
10. रेखीय क्षयवृद्वि क्या हैं?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय कला के षड़ंगों पर निबन्ध लिखिये।
2. चित्रकला के तत्वों की सविस्तार व्याख्या करें।
3. संयोजन के सिद्धान्त पर विस्तारपूर्वक लिखिये।
4. सृजनात्मक प्रक्रिया की विविध अवस्थाओं को स्पष्ट करें।

अध्याय

3

चित्रण माध्यम एवं तकनीक

'माध्यम' शब्द कलाकृति की आकृति निर्माण की सामग्री एवं पद्धति को व्यक्त करता है। कलाकार की चित्र रचना की विधि तकनीक कही जाती है। प्रत्येक कलाकार की तकनीक व्यक्तिगत होती है, जिसे वह सतत् अभ्यास से प्राप्त करता है। प्रत्येक कला काल के अनुसार विविध माध्यमों तथा प्रविधियों को जन्म देती है। इन सभी प्रविधियों को कलाकार विभिन्न माध्यमों के साथ प्रयोग करता है।

किसी भी रंग पदार्थ के चित्रण हेतु साधन की आवश्यकता होती है, जो माध्यम के रूप में जाना जाता है। प्रत्येक माध्यम की अपनी विशिष्टताएँ होती है। प्रत्येक कलाकार को आत्माभिव्यक्ति हेतु अपने माध्यम के प्रयोग की विधि तथा सम्भावनाओं का ज्ञान होना आवश्यक है।

कला इतिहास की विवेचना से ज्ञात होता है कि कलाकार प्राचीनकाल से विभिन्न माध्यमों द्वारा अपने भावों को अभिव्यक्त करता आ रहा है। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक चित्रकार अपने समयानुसार जो माध्यम सहज सुलभ थे उनका प्रयोग करता रहा है। प्रागैतिहासिक काल में गुफाओं में काले, सफेद एवं उपलब्ध प्राकृतिक व खनिज रंगों से, मध्यकाल की पच्चीकारी और रंगीन कांच के टुकडे; 15वीं व 16वीं सदी के फ्रेस्कोचित्र, आधुनिक काल के कैनवास, तैलरंग, एक्रेलिक आदि कई नये–नये आविष्कार से कलाकार अपने भावों को इनके द्वारा व्यक्त करता चला आ रहा है।

विविध माध्यमों का भी अपना स्वाभाविक व्यवहार एवं प्रकृति होती है, उसे भी कलाकार को समझना आवश्यक है। कोई भी कल्पना तब तक कलाकृति का रूप नहीं ले सकती है जब तक कलाकार को कला माध्यमों एवं उनके प्रयोग करने का ज्ञान न हो। माध्यम की प्रकृति को ध्यान में रखना ही रचना कौशल का रहस्य है। सफल कला सृजन माध्यमों एवं विधियों की विधिवत शिक्षा द्वारा ही संभव है अन्यथा कलाकार अपने भावों को अभिव्यक्त करने में असमर्थ होगा। विविध माध्यमों व तकनीक का अध्ययन इस अध्याय में किया जा रहा है।

जल रंग

जल रंग का प्रयोग मुख्यतः कागज पर ही किया जाता है। हाथ से बना कागज जलरंग चित्रण के लिए उपयुक्त रहता है। जलरंग चित्रण के लिये ऐसे कागज की आवश्यकता होती है जो रंग को आसानी से फैलने दे, पानी को सहन कर सके। कागज पर चित्रण करने से पहले कागज को गीला करके किनारों पर गोंद या टेप द्वारा बोर्ड की सतह पर चिपका दिया जाता है फिर उस पर रंग लगाना उचित रहता है ताकि रंग आसानी से फैल सके व कागज पर रंगो के धब्बे न पड़े। इस तरह कागज लगाने से कागज खिंच जाता है और रंग लगाने पर ऊंचा–नीचा भी नहीं होता। जलरंगों को पानी में घोलकर पतला लगाया जाता है जिससे रंगों में पारदर्शी प्रभाव व ताजगी रहती है। श्वेत व काले रंग का प्रयोग इसमें नहीं करना चाहिये। जलरंग चित्रण के लिये सेबल (नेवले की जाति का जानवर) के बालों की तूलिका उपयुक्त रहती है। आजकल कृत्रिम बालों वाले ब्रश का प्रयोग होने लगा है। तूलिका गोल, चपटी तथा विभिन्न मोटाई की मिलती है। बारीक काम के लिये गोल व बड़े स्थानों हेतु चपटी तूलिका का प्रयोग करना चाहिये। जलरंग की शुद्धता का भी ध्यान रखना चाहिये। समय–समय पर पानी गंदा हो जाने पर बदलते रहना चाहिये।

चित्र 1 – सरस्वती, राम जैसवाल, जलरंग

टेम्परा

जलरंग की तरह इसका संवाहक भी जल है। इसमें अपारदर्शीय रंगतों का प्रयोग किया जाता है। इसकी मुख्य विशेषता इसकी पायस (लेई) है। ये पायस गोंद, सरेस, अण्डे की जर्दी, शहद, मोम, दूध आदि पदार्थ है जिसे रंगों में मिलाया जाता है, जिससे रंगों में अपारदर्शीता रहती है। इस विधि में चित्रांकन करने में सुविधा रहती है। इसमें रंगतों द्वारा विभिन्न प्रभाव उत्पन्न कर सकते है। इसे तैयार करने में खड़िया पाउडर का प्रयोग किया जाता है जो आजकल पोस्टर रंगों के रूप में बाजार में उपलब्ध रहता है। 15वीं शती के यूरोप के चित्रकारों का प्रिय माध्यम टेम्परा था जिसमें अण्डे की जर्दी को मिलाया जाता था। अण्डे में से जर्दी वाला भाग सफेद भाग में से सावधानी पूर्वक अलग किया जाता है, फिर उसे जलरंग के लिये प्रयुक्त होने वाले पाउडर में मिलाकर पेस्ट के रूप में बना लेते हैं और पानी को संवाहक के रूप में प्रयोग करके चित्र पर लगाया जाता है। इसे सूखी दीवार पर या कागज पर रेखांकन करने के बाद तूलिका की सहायता से लगाया जाता है। सूखने पर एक हल्की चमकदार झिल्ली बन जाती है। इससे चित्र में अपारदर्शिता आती है और चित्र को सुरक्षा भी देती है। अन्य विधि से गोंद का पायस मिलाकर तैयार किया जाता है। रंग के पाउडर में गोंद या सरेस मिलाते हैं। चित्र धरातल खुरदरी दीवार, लकड़ी का बोर्ड, कागज आदि होता है जिस पर यह तैयार लेप लगा देते हैं। सूखने के बाद दूसरे रंग को उसी के ऊपर लगाकर नवीन प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं।

चित्र 2 – सीता, गणेश पाइन, टेम्परा

वाश

वाश चित्र की तकनीक बंगाल स्कूल की देन है। अवनिन्द्रनाथ टैगोर ने जापनी कला से प्रेरणा लेकर वाश टैकनीक अपनाई। इसका सवांहक जल ही है। इस माध्यम में धरातल हेतु अंग्रेजी व्हाटमैन कागज का प्रयोग किया जाता था। श्वेत कॉट्रेज पेपर पर भी इसका प्रयोग किया जाता है। चित्रकार चित्र बनाने के लिये सर्वप्रथम चित्र की आकृतियों को लाल रंग की रेखाओं से अंकित करता है। फिर चित्र को पानी में भिगोकर समतल बोर्ड पर सुखाकर चित्र की सीमा रेखाओं को स्थायी कर लेता है। इसके पश्चात् चित्र के विभिन्न भागों में रंग भर दिया जाता है। कागज को पुनः पानी में भिगोकर सपाट पट पर सुखाकर चित्र के रंगों को स्थायी किया जाता है जिससे कि ऊपर से रंग की सपाट वाश लगाने पर यह रंग कागज से न छूट जाये। इस क्रिया के पश्चात् वातावरण उत्पन्न करने के लिये एक या अनेक रंगों को सम्पूर्ण चित्र के ऊपर पारदर्शी ढंग से बहा दिया जाता है या वाश लगा दी जाती है। इससे सम्पूर्ण चित्र में धूमिल वातावरणीय प्रभाव आ जाता है। इसके पश्चात् चित्र की आकृतियों को उभारने के लिये रेखांकन को पुनः कत्थई या किसी अन्य रंग से उभार दिया जाता है। आकृतियों में डौल लाने के लिये छाया तथा प्रकाश का भी आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जाता है।

चित्र 3 – नन्दलाल बोस, वाश

तैल रंग

तैल माध्यम स्थायी है। इस पर पानी का प्रभाव नहीं पड़ता। इसमें छाया प्रकाश को स्वाभाविक व प्रभावशाली ढंग से बनाया जा सकता हैं। इसमें टैक्सचर देने में सरलता रहती है। चौड़े–चौड़े तूलिकाघातों का प्रयोग कर सकते हैं। साधारणतया चित्रण तीन विलेप (कोट्स) में होता है। पहले लेप में छाया, दूसरे में मान व तीसरे लेप में प्रकाश दिखाने के लिये होता है। कलाकार अपने अनुभवों से कुछ हेर–फेर भी कर लेता है। तैल रंग में निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये।

तैलचित्रण के लिये विभिन्न प्रकार के धरातलों का प्रयोग होता है जैसे कैनवास, कागज, हार्डबोर्ड, काष्ठफलक, कैनवास बोर्ड आदि। तैलचित्रण के लिये कैनवास सबसे सुविधाजनक व अच्छा आधार होता है। कैनवास से तात्पर्य अच्छे मजबूत धागे द्वारा बुनकर तैयार किये श्रेष्ठ कपड़े से कैनवास को लकड़ी के फ्रेम में खींचकर कीलों से तान दिया जाता है अथवा लकड़ी के बोर्ड पर चिपका दिया जाता हैं। कागज के अलावा हार्डबोर्ड और काष्ठफलक पर भी चित्रण कर सकते है जिनका चयन कलाकार अपनी आवश्यकता और पसंद के अनुसार कर सकता है।

तैयार कैनवास पर सरेस, या प्राइमर को पानी से पतला कर उस पर ब्रुश से लगा देते हैं ताकि कपड़े के छिद्र बंद हो जाये। इस प्रक्रिया को साइजिंग कहते हैं। इसके उपरांत प्राइमिंग की जाती है। कैनवास पर सफेदा (जिंक, टिटेनियम या लैड आक्साइड) तारपीन या अलसी के तेल का मिश्रण तैयार करके चौड़े ब्रुश से लगाया जाता है।

चित्र 4 – राजा रवि वर्मा, तेल चित्रण

तेल चित्रण के लिये सफेद बालों वाली चपटी तूलिका उपयुक्त रहती है। इन्हे फ्लैट ब्रुश भी कहा जाता है। कुछ फ्लैट ब्रुश किनारे से गोलाई लिये रहते हैं। गोल ब्रुश को भी बारीक काम के लिये प्रयोग करते हैं। चित्रण हेतु पेंटिग नाइफ व फ्लैट नाइफ को भी चौड़े आघातों हेतु उपयोग किया जाता है।

तैलचित्रण के लिये शुद्ध अलसी का तेल, शुद्ध तारपीन का तैल व वार्निश माध्यम हेतु प्रयोग करते हैं।

एक्रेलिक चित्रण

सन् 1950 के पश्चात् ही एक्रेलिक माध्यम विकसित व परिष्कृत हो स्थायी चित्रण माध्यम के रूप में आया है और

वर्तमान में अधिक प्रचलित हो गया। एक्रेलिक रंगों में कई विशेषताएं है। इसे जलरंग माध्यम की तरह पतले वाश के रूप में और तैल रंग की तरह मोटे–मोटे घातों में काम कर सकते हैं। रंग शीघ्र सूखता है जिसके कारण दूसरी सतह पर रंग शीघ्र लगा सकते हैं। इसे पारदर्शी व अपारदर्शी दोनों ढंग से व कई तरह के पोत बनाते हुये प्रयोग कर सकते हैं। विभिन्न प्रभाव डालने के लिये इसमें मीडियम का प्रयोग भी कर सकते हैं। चमक लाने के लिये ग्लोस मीडियम व मैट मीडियम चमक रहित व पारदर्शी प्रभाव के लिये प्रयोग करते हैं।

चित्र 5 – मदन सिंह राठौड़, अध्यात्म एक्रेलिक

पेस्टल चित्रण

पेस्टल रंगों का प्रयोग 15वीं शती के आरम्भ से और 16वीं शती में दिखाई देने लगा था। कई कलाकारों ने इसका प्रयोग किया परन्तु सबसे सफल रूप में 20वीं शती के यूरोपीय कलाकार **'एद्वार देगा'** रहे जिन्होंने इस माध्यम को अन्य माध्यमों के मिश्रण से नये प्रभाव उत्पन्न किये। पेस्टल रंगों की मुख्य विशेषता इसका धूमिल प्रभाव है। पेस्टल रंग भी चित्रण का एक माध्यम है जो चित्रण के साथ रेखांकन के लिये भी प्रयुक्त किया जाता है। जरा सा तिरछा कर, घुमाकर, नोक से या एक तरफ से कागज पर घिसकर विभिन्न प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं। चित्र में पूर्णता, जटिल अध्ययन व त्वरित प्रभाव हेतु समान रूप से उपयुक्त है। साधारण या सूखे पेस्टल के अतिरिक्त ऑयल पेस्टल का भी प्रयोग किया जाता है। तैल पेस्टल साधारण पेस्टल रंगों की अपेक्षा अधिक स्थायी है।

चित्र 6 – सुहास राय, पेस्टल

साधारण पेस्टल रंग के चित्रण को उचित तरीके से सुरक्षित व स्थायीकरण करना चाहिये नहीं तो रंग झड़ने लगते हैं। बाजार में स्थायीकरण हेतु कई फिक्सेटिव (स्थिरीकारक) मिलते हैं जिसका चित्र पर स्प्रे कर इसे स्थायित्व प्रदान किया जाता है।

कोलाज

प्रत्यक्ष वस्तुओं को चित्र धरातल पर चिपका कर बनायी गई कलाकृति कोलाज कहलाती है। ये वस्तुएं पारम्परिक माध्यमों से हटकर कुछ भी हो सकती है जैसे लकड़ी, कतरन, टिन के टुकडे, रस्सी, सूतली, पिन, रेत, ट्यूब आदि। इसका सर्वप्रथम प्रयोग घनवाद में दिखाई देता है। घनवाद के कलाकार मुख्य रूप से ब्राक और पिकासो ने इस पद्धति का प्रयोग किया और इस पद्धति को कलात्मक महत्व प्राप्त हुआ। चित्रण की इस तकनीक से कला सृजनता में नयी संभावनाएं व आयाम उपस्थित हुए।

भित्तिचित्रण (म्यूरल)

भित्तिचित्रण या फ्रेस्को पेंटिग दीवारों पर की गई चित्रकारी को कहते हैं। भारतीय चित्रकला का इतिहास भित्ति चित्रकला से आरम्भ होता है। अजंता–एलोरा की गुफ़ाओं, किलों, अनेक

सार्वजनिक व निजी भवनों में भित्ति चित्रकला दिखाई देती है। सभ्यता के विकास के साथ चित्रण विधि में भी परिपक्वता आती गई। भित्ति चित्रण की तकनीक में भी प्रगति होती गई। इस पद्धति में गेरू, खड़िया, रामरज, हिरमिच, काजल, लाजवर्द आदि खनिज रंगों का प्रयोग हुआ।

भित्ति चित्रण में दो पद्धतियां प्रचलित हैं –

(1) आलागीला पद्धति व (2) सूखी पद्धति।

ताजी प्लास्तर की हुई भित्ति पर चित्रण कार्य आलागीला पद्धति है। इस पद्धति में दीवार बनाते समय ही चूने बालू या संगमरमर के चूर्ण का मोटा लेप लगा दिया जाता है। लेप के जम जाने व सूखने से पूर्व ही नम प्लास्तर पर खनिज रंगों को इस प्रकार लगाया जाता है कि रंग और धरातल एक हो जाते हैं। इस तरह की दो पद्धतियां प्रचलित हैं एक इतालवी और दूसरी जयपुरी पद्धति। इतालवी पद्धति में गीले चूने में दो भाग बालू मिलाकर भित्ति पर पलास्तर चढ़ाते है। गीली सतह पर ही नुकीली लकड़ी या धातु से रेखांकन कर लेते हैं। खाका को भित्ति पर रखकर गेरू पाउडर को मलमल के कपड़े में डालकर उस पर दबाकर रेखांकन बना लेते हैं। ग्रिड की सहायता से मुक्तहस्त से रेखांकन कर सकते है। फिर केवल खनिज रंगों का ही चित्रण में प्रयोग करना चाहिये।

चित्र 7 – अजन्ता, भित्तिचित्रण

गीले प्लास्तर में लगाये जाने के कारण रंग प्लास्तर द्वारा शोषित होकर गहरे पैठ जाते हैं और प्लास्तर का एक अविभाज्य अंग बन जाते हैं। जयपुर की भित्तिचित्रण पद्धति भी इसी प्रकार की है। प्रचलित नाम अरायश तथा मोराकशी है। गीली सतह पर रंग लगाने के बाद उस पर अकीक पत्थर या ओपनी से धरातल की घिसाई कर उसमें चमक लाई जाती है। सूखी पद्धति में भित्ति को उपरोक्त विधि से ही तैयार करके उसके पूर्ण रूप से सूखने के बाद चित्रण किया हुआ कार्य सूखी पद्धति की श्रेणी में आता है। इसमें रंगों के माध्यम हेतु गोंद, सरेस व अंडे की जर्दी का प्रयोग किया जाता है।

भित्ति चित्रण तकनीक में भित्ति को तैयार करके उस पर चित्रण किया जाता है। मिश्र के कलाकार व पुनर्जागरण काल में यूरोपीय कलाकारों ने इस पर परम्परागत तकनीक के स्थान पर किसी भी माध्यम से चित्रण कर भित्ति को सजाया इसी को म्यूरल की संज्ञा की गई है।

मणिकुट्टिम

यह माध्यम पांचवीं तथा छठी शताब्दी की ईसाई कला से देखने में आता है। आरम्भ में केवल भवनों के फर्श तथा फव्वारों आदि पर विशेष रूप से मिलता है। भित्ति चित्रों में भी इस पद्धति का प्रयोग होने लगा था। चर्च, समाधिगृहों, दीवारों और मेहराबों पर भी इसके प्रयोग कालांतर में होने लगे थे। इस कार्य हेतु रंगीन कांच के टुकड़ों का प्रयोग होता है जिन्हें प्लस्तर की हुई दीवार पर चिपका देते थे। रंगीन कांच के टुकडे सुनहरे, लाल, नीले, हरे आदि होते थे जिनसे भवनों की आन्तरिक प्रकाश में भी परिवर्तन हो जाता था। काँच के टुकड़े प्लस्तर सूखने के साथ ही दीवार में जम जाते थे। आज भी जनसाधारण अपने भवनों को अलंकृत करने हेतु इनको स्थान देते हैं।

मिक्स मीडिया

दो या अधिक चित्रण माध्यमों को मिश्रित कर नवीन रूप में अभिव्यक्त करना ही मिक्स मीडिया या मिश्रित माध्यम कहलाता है, जैसे जल रंग के साथ पोस्टर रंग, एक्रिलिक रंग के साथ तैल रंग, पेस्टल रंगों के साथ पोस्टर या तैल रंग का प्रयोग करना। छापा चित्रण के विविध पद्धतियों को भी मिश्रित कर नये माध्यम में सृजन किया जा सकता है। इस तरह के प्रयोगों द्वारा कलाकार अपनी सृजनात्मकता से नयी संभावनाओं की वृद्धि करता है।

छापा चित्रण

जिस प्रकार कलाकार अपने भावों की अभिव्यक्ति हेतु चित्र या मूर्ति का सृजन करता है उसी प्रकार छापा चित्रण भी कलाकार के भावाभिव्यक्ति का माध्यम बन गई है। छापा पद्धति की विभिन्न तकनीक के साथ कलाकार ने अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति को छापाचित्रण से प्रकट किया है।

1450 ई. में गुटनबर्ग के छापा मशीन के आविष्कार से प्रिटिंग तकनीक का द्रुत गति से विकास हुआ था। 14वीं शती में यूरोप के कलाकार डयूरर ने छापाचित्रण को कलाकृति के रूप में प्रयोग किया था। बीसवीं शती तक आते–आते कलाकारों ने छापाचित्रण को स्वतंत्र माध्यम के रूप में अपना लिया। विभिन्न तकनीक के विकास से छापाचित्रण ने कई संभावनाओं को बढाया। पूर्व में मिश्र, भारत और अरब देशों में छापाचित्रण केवल टैक्सटाईल या मुहर चित्रण हेतु ही व्यावसायिक रूप में प्रयोग होता था। अब ये व्यावसायिक छापा न होकर कलासृजन का माध्यम हो गया। छापाचित्रण की कई विधियां हैं।

रिलीफ प्रिटिंग

रिलीफ प्रिटिंग सबसे पुरानी तकनीक है। इसमें जिस क्षेत्र को छापा के लिये नहीं चाहिये उसे टूल्स की सहायता से सतह को काट दिया जाता है। उभरे हुये भाग पर रोलर से स्याही लगा कर उस ब्लॉक या प्लेट का प्रिटिंग मशीन से दबाव देकर छाप ले लिया जाता है। इसके प्रचलित तकनीकों में लिनोकट, वुडकट आदि हैं। लीनोकट हेतु सादा लिनोनियम शीट का प्रयोग होता है जो लचीलापन लिये होती है। वुडकट के लिये अधिकतर प्लैंकवुड का धरातल के रूप में प्रयोग होता है। लिनोकट व वुडकट की धरातल पर काम करने के लिये विभिन्न आकार के टूल्स की सहायता से धरातल को उत्कीर्ण कर लिया जाता है।

चित्र 8 – हरिन दास, वुडकट

इन्टैग्लियो

इन्टैग्लियो शब्द इतालवी भाषा का है जिसका अर्थ है एन्ग्रेव करना या काटना। इसमें धातु की प्लेट (जिंक) पर रेखाएं या टोन्स को उत्कीर्ण किया जाता है। धातु की प्लेट में विभिन्न स्तर बनाने के लिए अम्ल (एसिड) का प्रयोग किया जाता है। प्लेट में स्याही लगाकर उसे साफ कर दिया जाता है। स्याही प्लेट के कटे हुये स्थान पर भर दी जाती है। धातु की प्लेट पर स्याही लगाने के बाद पेपर व कपड़े से अतिरिक्त स्याही को (वाईप) साफ करते है। नम कागज को प्लेट पर रखकर ऐचिंग प्रेस के रोलर्स से दाब देकर छापा निकाल लिया जाता है। रोलर के दाब से कागज कटे हुये भाग पर जोर लगता है जिसमें से स्याही कागज ले लेता है और प्लेट का कागज पर छापा आ जाता है।

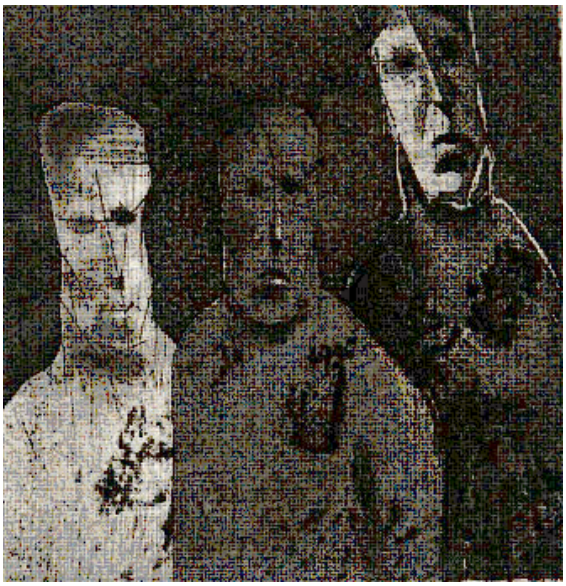

चित्र 9 – महेश सिंह, इन्टैग्लियो

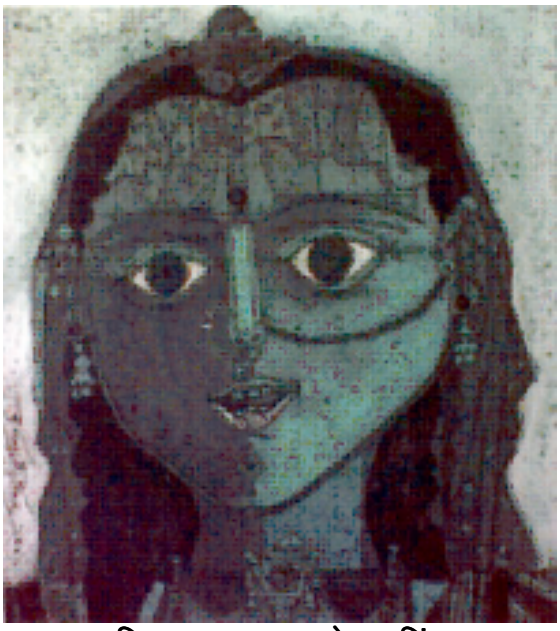

चित्र 10 – लक्ष्मा गोड, एचिंग

चित्र 11 – अवनिन्द्रनाथ टैगोर, लिथोग्राफ

इसमें कई तकनीकों से काम कर सकते हैं कुछ निम्न हैं :–

(1) मैजोटिंट **(2) ड्राय पाइंट**

(3) एचिंग **(4) एक्वाटिंट।**

इस विधियों के अतिरिक्त लिथोग्राफी सिल्क स्क्रीन, कोलाग्राफ आदि हैं। इन विधियों को मिश्रित करके भी कला सृजन कर सकते हैं।

स्क्रीन प्रिंटिग (छपाई)

स्क्रीन छपाई अधिकतर व्यावसायिक कार्यों हेतु प्रयोजन में ली जाती रही है किन्तु 21वीं शताब्दी में स्क्रीन छपाई भी कला कार्यों को अभिव्यक्त करने का माध्यम बनी। इस माध्यम को प्रयोग कर कई कलाकारों ने कला की नवीनता को छुआ और यह माध्यम भी अन्य माध्यमों की भांति कला की अभिव्यक्ति के लिये सशक्त बन गया।

स्क्रीन में पहले 'सिल्क' का कपड़ा प्रयोग किया जाता था इसलिये इसे सिल्क स्क्रीन के नाम से भी जाना जाता है। सर्वप्रथम एक डिजाईन तैयार की जाती है। पुराने समय में इस डिजाईन की नकारात्मक (नेगेटिव) व सकारात्मक (पॉजिटिव) फिल्म तैयार की जाती थी। जैसे कि ब्लैक एण्ड व्हाईट छाया चित्र (फोटोग्राफी) में होता है। इसके पश्चात पोजिटिव डिजाईन को प्रकाश संवेदनशील (सेन्सेटिव) लगी फिल्म वाली स्क्रीन को सूर्य की किरणों या हैलोजन लाईट से एक्सपोज करते है। इसके पश्चात सादे पानी से स्क्रीन को धोया जाता है। स्क्रीन

धोने के पश्चात् भलीभांति सुखायी जाती है और पेपर टेप से डिजाईन की आच्छंदन (मास्किंग) की जाती है।

अब तैयार है स्क्रीन छपाई के लिये। सर्वप्रथम G क्लेम्प की सहायता से कांच लगी टेबल पर स्क्रीन को कसते हैं। सपाट काँच व स्क्रीन के बीच जिस पेपर पर छपाई करनी होती है उसको रखा जाता है। अब स्क्रीन की सतह पर स्याही (रंग) स्क्यूजी की सहायता से हाथों का जोर देते हुऐ फैलाते हैं। स्याही (रंग) डिजाईन के अनुरूप कागज पर लग जाती है ओर इस प्रकार एक ही डिजाईन से कई प्रिंट तैयार कर लिये जाते हैं।

चित्र 12 – के.जी. सुब्रमनयन, स्क्रीन प्रिंट

आजकल स्क्रीन छपाई कई प्रकार के व्यावसायिक कार्यो के लिये प्रयोग में लाई जाती है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. कलाकार चित्र रचना कर अपने भावों को अभिव्यक्त करता है वह माध्यम है जैसे जलरंग, टैम्परा, तैल रंग आदि। माध्यमों के प्रयोग करने के तरीके को तकनीक या रचना कौशल कहा जाता है।
2. जलरंग हेतु हाथ से बना कागज उपयुक्त रहता है। जलरंग चित्रण में पारदर्शी प्रभाव रहता है। टैम्परा में रंगों में पायस मिलाया जाता है। जिसके कारण अपारदर्शी प्रभाव आता है।
3. वाश टैक्नीक में व्हाटमैन पेपर का प्रयोग करते है। एक्रेलिक रंग को जलरंग माध्यम की तरह पतले वाश के रूप में भी प्रयोग कर सकते हैं और तैल रंग माध्यम के समान मोटे–मोटे घात लगा कर भी।
4. पेस्टल रंगों की मुख्य विशेषता इसका धूमिल प्रभाव हैं इसे रेखांकन व चित्रांकन दोनों रूप में काम में लिया जा सकता है।
5. कोलाज में प्रत्यक्ष वस्तुओं को चित्र धरातल पर चिपका कर बनायी गई कलाकृति है।
6. दीवारों पर की गई चित्रकारी भित्ति चित्रण है। मुख्य रूप से दो पद्धतियां प्रचलित हैं – आला गीला पद्धपति और सूखी पद्धति।
7. मोजाइक माध्यम में रंगीन कांच के टुकड़ों को प्लास्तर की हुई दीवार पर चिपका देते हैं।
8. दो या इससे अधिक चित्रण माध्यमों का मिश्रण कर बनाई गई रचना को मिक्स मीडिया या मिश्रित माध्यम कहा जाता है।
9. छापा चित्रण में छापा मशीन की सहायता से छापा बनाकर कलाकृति के रूप में प्रस्तुत करते है। छापाचित्रण की कई विधियां हैं – लीनोकट, वुडकट, एचिंग, लीथोग्राफी, सिल्क सक्रीन, कोलोग्राफ आदि।
10. इन विधियों को मिश्रित कर भी कलासृजन करते हैं। तैल चित्रण माध्यम स्थायी है। इस पर पानी का प्रभाव नहीं पड़ता। इसमें चौड़े–चौड़े तूलिकाघातों व विभिन्न टैक्सचर को प्रभावशाली ढंग से बना सकते है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. म्यूरल से आप क्या समझते है?
2. मिक्स मीडिया के बारे में क्या जानते हैं? लिखें।
3. मोजाइक माध्यम द्वारा चित्रण क्या है?
4. टैम्परा टैक्नीक से आप क्या समझते हैं?
5. रिलीफ प्रिंटिंग तकनीक क्या है?
6. इन्टैग्लियो पद्धति के विषय में आप क्या जानते हैं?
7. वाश तकनीक को अपने शब्दों में समझाइये।
8. माध्यम से आप क्या समझते हैं?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. चित्र में माध्यम व तकनीक पर एक निबन्ध लिखें।
2. जलरंग व टैम्परा रंग माध्यम का तुलनात्मक अध्ययन करें।
3. भित्ति चित्रण क्या हैं? इसके बारे में विस्तार से लिखें।
4. छापा चित्रण क्या है? व्याख्या करें।
5. 'वाश' टैक्नीक के बारे में लिखें।
6. तैल चित्रण माध्यम पर विस्तार से लिखें।
7. स्क्रीन छपाई माध्यम पर विस्तार से लिखें।

अध्याय

4

कला, शिक्षा और समाज

कला शब्द मानव के हर कार्य का पर्यायवाची है। जो भी कार्य मनुष्य कौशल के साथ सफलतापूर्वक कर लेता है उसे कला कहते है। कला क्या है, इसे समझने के लिये हमें कला और प्रकृति के भेद को समझने की आवश्यकता है। कला और प्रकृति दोनो पर्यायवाची शब्द नहीं है। जो कला है वह प्रकृति नहीं और जो प्रकृति है वह कला नहीं है, केवल यही भली–भांति समझ लेना ही कला के अर्थ को समझने हेतु पर्याप्त है।

ईश्वर प्रकृति को रचता है और कला मानव द्वारा सृजित। अतः मनुष्य जो कुछ भी रचता है, वह कला की वस्तु कहलाती है, काव्य, संगीत, नृत्य, चित्र, मूर्ति, स्थापत्य एवं यांत्रिक या कुछ और भी।

मनुष्य की सभी रचनायें प्रायः तीन मनोवैज्ञानिक परिस्थितयों में हुआ करती है, चेतन, अवचेतन और अचेतन। मनुष्य की चेतन रचनायें उत्तम कोटि की रचनायें समझी जाती है। अवचेतन या अचेतन की रचनायें भी कला है, पर उनके लिये मनुष्य पूर्ण उत्तरदायी नहीं होता, इसलिये कला की दृष्टि में उनका अधिक ऊँचा स्थान नहीं है। इसलिये मनुष्य ने चेतन स्थितियों की रचना को ही कला में प्रधानता दी है।

चेतन रचनायें भी दो प्रकार की है – एक रचना वह है जो भौतिक सुख के लिये होती है ओर दूसरी वह जो आत्मिक सुख के लिये होती है। वात्सायन द्वारा रचित ग्रन्थ कामसूत्र में चौंसठ कलाओं का उल्लेख मिलता है। भारत में प्राचीन काल से शिल्पकला शब्द को बड़े व्यापक अर्थ में समझा गया है। करीब–करीब सभी मानवीय चेष्टाओं तथा क्रियाओं को कला की श्रेणी में रखा गया।

कला तथा कलाकार की परख उसकी कल्पना शक्ति में निहीत है जो कला रचना का एक माध्यम है। कला की शाला में किसी भी विद्यार्थी को कला सर्जन व तकनीक की शिक्षा दी जा सकती है, पर किसी को कल्पना करना नहीं सिखाया जा सकता। यह जन्मजात प्रकृति होती है जो किसी में अधिक तथा किसी में कम होती है। ईश्वर को एक महान् कल्पना का स्त्रोत माना गया है, इसीलिये उसकी रचना प्रकृति भी महान है। साहित्य, काव्य, संगीत, नृत्य, नाटक, चित्र, मूर्ति, वास्तु इत्यादि कलाओं में कल्पना की प्रधानता रही है।

सभी कलाओं में अभिव्यक्ति का माध्यम भिन्न–भिन्न होता है। सभी कलाओं में शिक्षा के माध्यम से निखार सम्भव है। शिक्षा किसी भी कला को शिखर तक पहुँचा सकती है। कला की साधना प्रारम्भ में प्राकृतिक वस्तुओं के अनुकरण से की जाती है। उससे भी उत्कृष्ट रचना प्रकृति को अपनी कल्पना के अनुसार पुर्नरचना करके की जा सकती है, पर सर्वोत्कृष्ट रचना तो वह है जिसमें प्रकृति के परे की कल्पना को रचित किया जाता है। ईश्वर ने प्रकृति की जो कल्पना की है वह उसकी अपनी कल्पना है, किसी का अनुकरण नहीं। मनुष्य भी स्वयं को ईश्वर का अंश मानता है इसीलिये अपनी कल्पना को ही प्रधानता देता है और इसी की रचना करना चाहता है। अतः वे कलाकार सर्वोत्तम होंगे जिनकी कल्पना अपनी होगी। चित्रकार जब अपने रंग और तूलिका से अपनी कल्पना को किसी भित्ति, कागज अथवा कैनवास पर उतारता है तो वह चित्र कहलाता है।

चित्र बनाने के अनेकों माध्यम है और हो सकते हैं, जैसे कोयला, खड़िया, मिट्टी, पेंसिल, जल रंग, तेल रंग इत्यादि। चित्रकला मनुष्य की उस रचना को कहते हैं जिसमें मनुष्य अपनी कल्पना को अथवा किसी प्राकृतिक वस्तु या किसी भी वस्तु को रंग के माध्यम से किसी धरातल पर उकेरता है या अंकित करता है। चित्रकला की जीवन में उपयोगिता क्या है? और उसके अभ्यास के लिये हमें किस ओर विशेष प्रयत्नशील होना चाहिये, इसका ज्ञान बहुत आवश्यक है अर्थात् चित्रकला

के लक्ष्य अथवा ध्येय से भी हमें पूर्ण परिचित होना चाहिये। जिससे हम उसी के अनुसार कार्य कर सके। आरम्भ में चित्रकला प्रतिलिपि के रूप में किसी वस्तु अथवा दृश्य के अनुकरण मात्र के आधार पर की जाती थी। जैसे प्रागैतिहासिक काल के एक जंगली भैसे का चित्र। उन वस्तुओं के भी चित्र बना लिये जाते थे जहाँ किसी आकृति या दृश्य का कोई मुख्य प्रयोजन होता था और लोगों को दिखाने के लिये उसे कालान्तर तक सुरक्षित रखने की आवश्यकता प्रतीत होती थी। परन्तु आज चित्रकला केवल इन्ही दोनों उद्देश्यों की पूर्ति के लिये नहीं, अपितु साहित्य या कविता की तरह अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिये की जाती है।

जब व्यक्ति समाज का ही बनाया हुआ है, समाज पर ही आश्रित रहता है, तब यह कहा जा सकता है कि उसे अपनी सारी शक्ति समाज के हित तथा प्रगति के लिए प्रयोग करनी चाहिए। यही उचित है और न्याय–संगत भी। जब हम किसी से लेते है, तो उतना ही उसे देना भी चाहिए। अगर यह ठीक है तो व्यक्ति समाज को वही दे सकता है जो उसने पाया है। वर्तमान समय में तो सभी कलाओं की शिक्षा सम्भव भी है और उसकी गहराई तक पहुंचा जा सकता है।

समाज को उच्च शिक्षा प्रदान करना ही कला और शिक्षा का मुख्य प्रयोजन होना चाहिए ताकि समाज में कला व शिक्षा के माध्यम से एकरूपता कायम हो सके। इस एकरूपता के लिए कला, शिक्षा और समाज में एक सामंजस्य की आवश्यकता है और वह सामंजस्य भली–भांति कलाकार ही स्थापित कर सकता है चाहे वह कला की कोई भी विधा क्यों न हो।

(1) शिक्षा में कला का महत्व

शिक्षा हमारे आत्मनिष्ठ व्यक्तिव की जटिलताओं को सुलझाने में सहायता प्रदान करती है। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक गठन है। कला की शिक्षा का तात्पर्य किसी कला विशेष से नहीं होता वरन् यह उन इन्द्रियों की शिक्षा है जिन पर हमारी चेतना वृद्धि तथा व्यक्ति की परख का गुण निर्भर करता है। मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का बाह्य दुनिया से सामांजस्य पूर्ण सम्बंध स्थापित हो सके। शिक्षा इस कल्पना शक्ति को जन्म देकर रचनात्मक अभिव्यक्ति को जन्म देती है।

शिक्षा की सहायता से मनुष्य अपने भावों को विभिन्न इन्द्रियों द्वारा अभिव्यक्त कर सकता है। सुचारू रूप में व्यक्त किये गये भावों में सौंदर्य का आ जाना स्वाभाविक है। वस्तुतः कला का उद्देश्य ऐसे मनुष्य को संस्कारित करना है जिसकी कल्पना शक्ति व सृजनात्मक प्रतिमा को प्रेरणा मिले। कलापूर्ण शिक्षा से व्यक्ति में जन्मजात सृजनात्मक शक्ति के विकास का द्वार खुल जाता है। वह प्रत्येक वस्तु में छिपे सौंदर्य को प्रत्यक्ष कर सकता है। इसमें बिखरे हुऐ विचारों को स्वरूप मिल जायेगा। पहले जनसामान्य में कला या सृजनात्मक शक्ति को प्रेरणा देने का कार्य त्यौहारों आदि पर आयोजित मेले, नाटक, नृत्य व अन्य धार्मिक कृत्य में किया करते थे। हमारी अधिकांश परम्परागत कलाएँ त्यौहारों व धार्मिक कृत्यों में संबंधित थी जिनमें सृजनात्मक कार्य का पर्याप्त अवसर मिलता था। प्रत्येक त्यौहार पर भांति–भांति के खिलौने व गुड़िया आदि तैयार किये जाते थे। जो नितांत मौलिक होते थे। घरों आदि को भी भांति–भांति की रंगोली, माण्डनों आदि से सजाया जाता था।

विद्यार्थी जीवन व्यक्ति के जीवन का सर्वाधिक संवेदनशील काल होता है। इस काल में ऐसी रूचियाँ तथा मनोवृतियाँ उत्पन्न की जानी चाहिये जो उनकी भावना तथा सृजन शक्ति को एक स्वस्थ तथा रचनात्मक ढंग से कार्य करने की प्रेरणा दे सके। ''कोई भी शिक्षा जो भावनाओं के विकास एवं उनकी परिष्कृति के लिये उचित ध्यान नहीं देती वह पूर्ण शिक्षा होने का दावा नहीं कर सकती। यह कार्य ललित कलाओं के व्यावहारिक माध्यम के द्वारा संवेदन शक्ति को प्रशिक्षित करने की सुविधायें प्रदान करके दिया जा सकता है।

शिक्षा में कला के द्वारा व्यक्तित्व के परिष्कृत पहलुओं के विकास करने के अतिरिक्त श्रम करने सम्बन्धी कौशल एवं प्रत्यक्ष संवेदनशक्ति के विकास के लिये भी उपादेय है। बच्चों में सृजनात्मक भावना का उदय होता है व उनकी शक्ति सामाजिक व व्यावहारिक प्रतिष्ठा बनाने में लगने लगती है। शैक्षिक पाठ्यक्रमों में कला विषय की उचित भागीदारी अनेक समस्याओं का समाधान कर सकती है। इससे अन्य विषयों की नीरसता समाप्त हो सकती है। अन्य विषयों द्वारा तर्कशक्ति व बौद्धिकता के विकास पर बल दिये जाने के साथ कला विषय मानसिक शक्ति, पुनः स्फूर्तिदायक व सृजनात्मक ऊर्जावर्धक भी सिद्ध हो सकतीा है।

बाल्यकाल की विकास अवस्था में कला के माध्यम से अपने को अभिव्यक्त करने में उन्हें संतुष्टि व आनंद मिलता है। अतः प्राथमिक शिक्षा से ही कला को एक सार्थक विषय के रूप में स्थापित किया जाना चाहिये। शिक्षा में कला का महत्व उसे योगदान देने में है यह संपूर्ण शिक्षा क्रम को व्यवस्थित करता है व इससे व्यक्ति का बौद्धिक, भावात्मक, शारीरिक व आध्यात्मिक विकास होता है व यह उसके व्यक्तित्व को उभारती हुई उसे अच्छा नागरिक बनने में सहयोग देती है। शिक्षा में अन्य विषयों के समान ही कला को भी महत्व देना चाहिये ताकि यह व्यक्ति को साधारण उपयोगी जीवन के लिये तैयार करे। शिक्षा में कला

को एक महत्वपूर्ण मानव क्रिया के रूप में मान्यता मिलनी चाहिये।

आजकल जबसे आधुनिक कला शिक्षा का प्रचलन हो गया है। कला शिक्षा की मान्यताएँ भी बदल गई है। वर्तमान समय में गुरू शिष्य कला परम्परा वर्तमान में लुप्त हो गई है और अगर थोड़ी बहुत कही बची हुई है तो केवल धनोपार्जन के उद्देश्य युक्त। आज समाज में ऐसे प्रतिष्ठित कला संस्थान खुल चुके हैं जहाँ पर कला शिक्षा कला के वर्गीकरणानुसार ही आधुनिक शिक्षा में डिग्री व डिप्लोमा दिया जाने लगा है। जैसे व्यावसायिक कला, चित्रकला, मूर्तिकला छापा कला इत्यादि।

समाज की भी यही मान्यता हो गई है कि अगर किसी को आधुनिक कलाकार बनना है तो उसको कला की आधुनिक शिक्षा की आवश्यकता है। आज विश्वविद्यालयों में बीएफए और एमएफए की डिग्री दक्षतापूर्वक विषय में दी जाने लगी है। आधुनिक समय में सैद्धान्तिक तथा प्रायोगिक आधार पर कला की शिक्षा दी जाती है और इससे कला के कार्य में प्रगति कर रही है। हमारा समाज परम्परागत रूप में समृद्ध रहा है और आधुनिक समय में भी कला के माध्यम से इसे सशक्त व सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता है। शिक्षा में कला के समावेश से इस स्थिति में बदलाव आया है। यह स्थिति ज्यों–ज्यों ओर अधिक सुधरती जायेगी त्यों–त्यों शिक्षा में कला का महत्व बढ़ता जायेगा।

(2) कला के शैक्षिक मूल्य, सिद्धान्त और प्रयोजन

हर व्यक्ति कला की शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त भी कलाकार नहीं बन पाता। कलाकार वही बन सकता है जिसमें आन्तरिक प्रेरणा सबसे अधिक होती है। इसके वर्तमान समय में कई उदाहरण है। पदम्श्री के.जी. सुब्रमनयन ने माध्यमिक परीक्षा तृतीय श्रेणी से उर्त्तीण की और आज वो कला जगत में प्रथम पायदान पर खड़े हुऐ है। अतः प्रत्येक कला शिक्षार्थी में रचनात्मक प्रवृति का होना आवश्यक है।

यह रचनात्मक प्रवृति किसी में कम किसी में अधिक हो सकती है। जिन बालकों में रचनात्मक प्रवृति बलवती होती है, वही कला के कार्य में अधिक रूचि ले पाते हैं। इस शक्ति को कला के शैक्षिक मूल्यों द्वारा निखारा जा सकता है। और एक बालक की रचनात्मकता को विकसित किया जा सकता है। कला के शैक्षिक मूल्यों में रूचि का भी महत्वपूर्ण स्थान है। रूचि मानव जाति का विशेष गुण है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी–अपनी रूचि और अरूचि होती है। यह मानव का एक स्वाभाविक गुण है। इसके पश्चात् परम्परा कला शिक्षा का सर्वप्रचलित, सरल तथा उपयोगी माध्यम है।

प्रत्येक देश, समाज, जाति की अपनी–अपनी परम्परायें होती है और इनका मूल आधार उनकी संस्कृति अथवा सभ्यता ही होती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि कला का परम्परागत ज्ञान आवश्यक है, यदि हम कला शिक्षा से परिचित होना चाहते है या उसे विकसित करना चाहते है तो कला विद्यार्थी की रूचि के अनुसार परम्परागत कला को जोड़ते हुऐ आधुनिकता की ओर बढ़े ताकि कला का विकास निरन्तर होता रहे।

परम्परागत कला ज्ञान और आधुनिक कला शिक्षा ग्रहण करने से व्यक्ति का सर्वांगिंण विकास होता है। कला विद्यार्थी को न केवल देश बल्कि विदेशी कलाओं की बारिकियां व विकास क्रम से अवगत कराया जाता है ताकि वह अपने भावों को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम चुन सके। अक्सर परम्परागत शिक्षा और आधुनिक शिक्षा को एक दूसरे का विरोधी माना जाता है। परम्परावादी व्यक्ति आधुनिक तौर–तरीकों को पसन्द नहीं करता और आधुनिक जीवन शैली वाला व्यक्ति परम्परावादी तौर–तरीकों को पसन्द नहीं करता। यह दोनों स्थितियाँ प्रतिक्रियावादी है और प्रगति का विरोध करती है परन्तु कला में शैक्षिक मूल्यों और सिद्धान्तों के समन्वय से परम्परा और आधुनिकता की बढ़ती खाई को पाटा जा सकता है।

परम्परा का ही विकास आधुनिक कला है। परम्परा से शक्ति प्राप्त कर आधुनिकता पोषित होती है। दोनो का कभी साथ छुटना नहीं चाहिये। परम्परा से हम कला की शिक्षा पाते हैं और आधुनिकता से हम उसे ओर भी विकसित करते हैं। भारतीय शास्त्रों तथा पुराणों के अनुसार कला का एक प्रयोजन 'अर्थ' की प्राप्ति भी माना गया है। लेकिन भारतीय परम्परा में कला का मूल प्रयोजन व्यक्ति के सर्वांगीण विकास व नैतिक मूल्यों और संस्कार युक्त मानवसमाज की अवधारणा की स्थापना करना और नैतिक आग्रह के तहत अपने शिल्पकौशल से अर्थ ग्रहण करना है।

(3) कला और समाज

जो हमें मनुष्य बनाता है वह है समाज। समाज और कला का एक गहरा और आन्तरिक रिश्ता है। हम सभी एक सकारात्मक सोच देने के लिए उत्तरदायी है। कला के माध्यम से यह उत्तरदायित्व समाज में आसानी से निभाया जा सकता है। इसके लिए प्रत्येक मनुष्य का कुछ ना कुछ कर्त्तव्य है। चाहे वह प्रत्यक्ष रूप से कला से जुड़ा हुआ है या नहीं। कला भी कार्य है और उसमें भी यही मार्ग है। इन सभी का लक्ष्य आत्मिक सुख या आनंद है।

इनमें से किसी को भी अच्छा या बुरा नहीं कहा जा सकता क्योंकि ये सभी मार्ग हैं। इसलिए यह निर्धारित करना कि कला

का क्या मार्ग होगा, कहना अत्यन्त कठिन है। आत्मिक सुख लक्ष्य है और यह इनसे प्राप्त हो सकता है।

कला का कार्य व्यक्ति और समाज में एकता लाना है। इसी कार्य के लिए संसार में भाषाओं की उत्पत्ति हुई, जिनमें से कला भी एक है। कला वह वटवृक्ष है जिसकी जड़े समाज से सींचित है। इन जड़ों को हम काट नहीं सकते, अन्यथा हम जीवित नहीं रह सकेंगे। कला विहिन संसार मृत्यु के समान है।

व्यक्ति संसार में स्वंय के किये हुए अनुभवों से लाभान्वित होता है। उन अनुभवों से वह दूसरों को भी लाभान्वित कराना चाहता है, इसलिए वह कला की भाषा के माध्यम से दूसरों तक अपने अनुभवों को पहुँचाता है। उसके अनुभव से तभी लोग लाभ उठा सकते हैं, जब उसकी अभिव्यक्ति या भाषा सभी के लिए सरल एवं बोधगम्य हों।

कला भी एक भाषा है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने को व्यक्त करता है। आज इस भाषा का कोई निश्चित रूप नहीं है। इस भाषा के नित्य नये रूप सामने आते है। यही कारण है कि सारा समाज इससे लाभ नहीं उठा पाता।

समाज की कार्यप्रणाली को ही परम्परा कहते हैं। आज से पहले जो कार्य–प्रणाली समाज में थी उसे ही आज हम परम्परा के नाम से समझते या संबोधित करते हैं। जिसे समझने पर हमें तब और अब के समाज की वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान हो जाता है। समाज की वास्तविक परिस्थिति को समझकर ही हम उन्नति कर आगे बढ़ सकते हैं। कलाकार का यह कर्तव्य है कि वह इस परम्परा से अपने को भली–भाँति परिचित कराये ताकि उसे समझकर वह अपने अनुभवों को सरलतापूर्वक समाज के सम्मुख व्यक्त कर सके। तात्पर्य यह कि कला में परम्परा का दर्शन होना आवश्यक है। ऐसा होने से ही समाज से हमारा अति निकट सम्पर्क स्थापित हो सकता है अर्थात् हम अपने अनुभवों को अधिक सरलतापूर्वक समाज के सम्मुख रख सकते हैं।

कला की सबसे बड़ी विशेषता यह होनी चाहिए कि वह समाज के अधिक से अधिक प्राणियों का सामूहिक भाव हो या वे उसे समझ सकें। तभी तो हम समाज और व्यक्ति में सामंजस्य स्थापित कर सकेंगे।

रंग, रूप, रेखा ही ऐसे माध्यम हैं जिनके द्वारा हम किसी चित्र का भाव समझते है। किन्तु रंग, रूप, रेखा स्वयं कुछ नहीं है, वे चिन्ह या प्रतीक मात्र हैं, जिनके द्वारा भाव–प्रकाशन होता है। कविता में शब्द कुछ नहीं हैं, केवल भावों के प्रतीक हैं। उसी प्रकार संगीत में भावों को व्यक्त करने के प्रतीक स्वर है। यदि प,ति,त अक्षर कहीं लिखा हो तो केवल इन अक्षरों का कोई अर्थ नहीं होगा, परन्तु 'प ति त' मिलकर पतित होता है, इससे भाव की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार केवल स्वर का कुछ अर्थ नहीं होता। कई स्वर मिलकर भाव उपस्थित करते हैं। ठीक ऐसे ही चित्र में लाल रंग का कोई अर्थ नहीं, उसके साथ यदि एक सूर्य का गोला हो जाय तो वही सूर्य की लाली या धूप लक्षित करता है। अर्थात प्रत्येक कला प्रतीकों के द्वारा व्यक्त होती है। इसलिए कला को समाज तक पहुँचाने के लिए ऐसे प्रतीकों की खोज करनी पड़ेगी जिनका भाव समाज भली–भाँति समझ सके।

चित्र की भाषा का भली–भाँति अध्ययन करके हम अपने अनुभवों को चित्र द्वारा समाज के सम्मुख रख सकते हैं। व्यक्ति समाज की देन है, वह समाज का एक अंग है और वह जो कुछ भी करता है वह सामाजिक सरोकारों से जुड़ा है उनसे अलग नहीं है।

कलाकार और उसकी कला का ध्येय समाज में तथा व्यक्ति में सांमजस्य लाना है। यदि इसमें वह सफल होता है तो समाज को आगे बढ़ना है। कलाकार अपने में इतनी शक्ति संग्रह करता है कि वह समाज को अकेले खींच ले जाता है। ऐसा ही पुरूष महापुरूष कहलाता है। इस प्रकार कला और कलाकार का यह भी धर्म है कि वह समाज को अपनी शक्ति से प्रगति की ओर खींचे, समाज को घृणित तथा कुरूप होने से बचाये। समाज में एक संतुलन स्थापित किया जाये। यह एकरूपता कला के माध्यम से आसानी से लायी जा सकती है। इसके लिए हम सभी को प्रयास करना चाहिए।

समाज कलाकार की रूचि की अवहेलना नहीं कर सकता, उसी प्रकार कलाकार समाज की रूचि की अवहेलना नहीं कर सकता। कला विचार का अभिव्यक्त रूप है और वह मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रभावित करती है क्योंकि उसका अभिव्यंजनात्मक पक्ष सहृदय और समाज को संक्रमित करता है। इसलिए यहाँ यह महत्वपूर्ण है कि जिनके लिए इसका उपयोग है, उनकी मनोवृति और रूचि को समझना भी कलाकार के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

वर्तमान में सामाजिक चेतना के प्रति अरुचि और व्यक्ति के मन के सामुदायिक आग्रह में कमी ने कलाकार को एकाकी कर दिया है। मन में संवेदनाओं की कमी से सामाजिक संदर्भ पीछे छुटने लगे है, व्यक्ति संवेदन शुन्य होता जा रहा है जिस प्रकार कुएँ से पानी खींचना जब काफी दिनों तक बन्द रहता है तो उस कुएँ के स्त्रोत सूख जाते हैं, या बन्द हो जाते है, उसी प्रकार हमारे हृदय के स्त्रोत सूख चुके है, उनमें अपना कार्य करने की क्षमता ही नहीं रह गयी। इन स्रोतों को कला के माध यम से वापस लाने की आवश्यकता है। यह कार्य कला और समाज में कलाकार के द्वारा स्थापित सामंजस्य से ही साकार हो सकता है। यह सामंजस्य कला और समाज में स्थापित हो जाये तो प्रत्येक सामाजिक व्यक्ति कला का रसासवादन कर सकता

है। कला के इसी रसासवादन के पश्चात् समाज का स्वरूप निखर कर सामने आयेगा। आधुनिक समाज यूरोपीय यांत्रिक युग से प्रभावित है और यह स्थिति उसके फलस्वरूप है। यह स्थिति तब तक रहेगी जब तक भारतीय समाज अपने जीवन को सरल और स्वच्छ नहीं बनाता। जब समाज की रूचि विकृत हो जाती है तो कलाकार के सामने यह प्रश्न उठता है कि वह इस स्थिति में क्या करें? ऐसी स्थिति में न तो उसकी कला को सम्मान मिलता है और न ही समाज उसकी कला से लाभ उठा पाता है। वर्तमान में भारतीय कला को एक सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा। प्राचीन भारतीय कला तो यह सम्मान पहले ही प्राप्त कर चुकी है जिसमें अजन्ता, एलोरा, बाघ, बादामी कला के साथ–साथ सांची, सारनाथ, भरहुत, खजुराहों की कला भी प्रमुख है। वर्तमान समय में आधुनिक कला भी इस सम्मान को पाने की ओर अग्रसर हो चुकी है।

कला का समाज में जब कोई स्थान नहीं होता तो कला जीवित नहीं रह सकती। जब कलाकार तथा समाज की रूचि में सामंजस्य होता है तभी कला का जीवन में एवं समाज के लिए कोई महत्त्व होता है।

कला अपने सामाजिक उत्तरदायित्व को समझकर अपने विशुद्ध रूप से हटकर समाज को उठाती है समाज अपने को सहृदय बनाकर कला और कलाकार की भावनाओं का सम्मान कर योग्यता का संवर्धन कर कला को उठाता है। कला समाज की क्षमता तथा योग्यता के अनुसार अपना रूप धारण करती है और तब समाज को उठाती है। इसी प्रकार समाज अपनी कला के लिए बलिदान करता है, उसे ऊपर उठाने के लिए। इस प्रकार कला की रूचि के साथ समाज का सांमजस्य होता है। कला समाज के लिए है और समाज कला के लिए है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के नाते सदैव इस प्रयत्न में रहा है कि वह अपनी अनुभूतियों, भावनाओं तथा इच्छाओं को दूसरों तक व्यक्त कर सके और दूसरों की अनुभूतियों से लाभ उठा सके। इसके लिये उसे यह आवश्यकता पड़ी की वह व्यक्त करने के लिये साधनों तथा माध्यमों की खोज तथा निर्माण करे। इसी के फलस्वरूप भाषा की उत्पत्ति हुई और काव्य, संगीत, नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला इत्यादि कलाओं का प्रादुर्भाव हुआ। ये सभी हमारी भावनाओं को व्यक्त करने के माध्यम है। कोई अपनी भावनाओं को भाषा द्वारा व्यक्त करता है, कोई चित्रकला द्वारा, कोई नृत्य द्वारा। लक्ष्य तथा आदर्श सब का एक ही है, केवल माध्यम में भिन्नता है।

इन्हीं माध्यमों को हम उन कलाओं की भाषा कह सकते हैं। काव्य और गद्य की भाषा शब्दों, अक्षरों तथा स्वरों की है। संगीत की भाषा लय व स्वर है, नृत्यकला की भाषा मुद्रा व भाव है और मूर्तिकला की भाषा रूप तथा आकार है। इसी प्रकार चित्रकला की भाषा रेखा, रंग और रूप है। जिस प्रकार काव्य का आनन्द लेने के लिये शब्दों का अर्थ जानना आवश्यक है, उसी प्रकार चित्रकला का आनन्द लेने के लिये उसमें आये हुऐ आकारों, रूपों, रेखाओं तथा रंगो का अर्थ जानना नितान्त आवश्यक है। शब्द का रूप सूक्ष्म है, वह केवल किसी वस्तु या भावना का प्रतीक मात्र है। उसी प्रकार विभिन्न प्रकार की रेखायें, आकार, रंग तथा रूप विभिन्न प्रकार की वस्तुओं तथा भावनाओं के द्योतक है। इस प्रकार यह बहुत आवश्यक है कि हम कला के चिन्हों, प्रतीकों तथा भाषा को अच्छी तरह समझ ले ताकि दूसरों के व्यक्त किये भावों को समझ सके और उनका आनन्द ले सके।

(4) कला और कलाकार का सामाजिक उत्तरदायित्व

भारतीय कलाकारों को राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान प्राप्त होना प्रारम्भ हुआ है। अभी तक हमने यह भली–भाँति अनुभव ही नहीं किया है कि कलाओं का हमारे जीवन में क्या महत्त्व है। इस महत्व को समझाने के लिए कलाकार और उसकी भूमिका को समझता होगा। एक कलाकार ही समाज को कला से जोड़ता है। समाज में कला की जड़े, जितनी गहरी होगी वह समाज उतना ही परिष्कृत और उत्कृष्ट होगा क्योंकि कला में जीवन के सभी पक्ष अर्न्तनिहीत होते है।

जीवन को बनाये रखना, सुन्दरतापूर्वक जीवन निर्वाह करना, स्वयं कला का कार्य है और आदि–काल से है। इसी के अन्तर्गत अन्य सभी कलाओं का प्रादुर्भाव हुआ। इसके पश्चात् जब भाषा की उत्पत्ति हुई, तो इसके माध्यम से अन्य कलाओं या मनुष्य के कार्यो का ब्यौरा साहित्य के रूप में इकट्ठा होने लगा और आज भी होता जा रहा है।

कला और साहित्य किसी जाति या देश को ऊपर उठाता है, क्योंकि वह वहाँ के प्राणियों में प्रेरणा भरकर आगे कार्य करने की क्षमता प्रदान करता है। परम्परागत कला एवं साहित्य को सरलीकृत करके आधुनिक समाज के सामने रखना भी कलाकार का ही उत्तरदायित्व है ताकि आधुनिक समाज इसको आत्मसात् कर सके और कला के प्रति अपने दायित्व को आसानी से निभा सके।

मनुष्य अच्छा कलाकार व साहित्यकार तभी बन पाता है जब वह जीवन में रस ले, जीवन से जुड़े सभी आग्रह या घटनाओं को आत्मसात करे , उस पर विचार तथा मनन करे। साहित्य व कला का निर्माण केवल शब्दों या रूपों के निर्माण से नहीं होता, बल्कि आत्मानुभूति पर निर्भर करता है। किसी कलाकार के बारे में यह कह देना कि वह महान् है, अद्भुत है– इतने से ही

उसकी कला का परिचय नहीं मिल सकता। जब तक वह अपनी अनुभूति प्रकट नहीं करता, उसका वर्णन बेकार हो जाता है और मालूम पड़ता है कि ये शब्द या आकार उसने कहीं से चुराये हैं।

आज की आधुनिक कला एक अनोखा रूप धारण कर रही है और दिनोदिन उसका प्रचार भी अधिक बढ़ता जा रहा है, परन्तु फिर भी समाज का जनसामान्य उसका आनन्द नहीं ले पाता।

लोगों का ख्याल है कि कला में आनन्द पाना सार्वजनिक नहीं है और इसमें आनन्द उसी को मिल सकता है जो स्वयं कलाकार है या जिसने थोड़ा–बहुत कला का अध्ययन किया है। कला में प्रवीणता या उसमें रस पाना एक ईश्वरीय वरदान है, यह कथन और भी सत्य प्रतीत होता है, जब हम देखते है कि आधुनिक समाज में कला को क्या स्थान प्राप्त है। कलाकार जीवन भर रचना का कार्य करता है, पर अक्सर वह समाज में अपना स्थान नहीं बना पाता, न समाज उसके परिश्रम का मूल्य ही देता है। यह तब होता है जब कलाकार अपनी कला से जन सामान्य को नहीं जोड़ पाता। अतः कलाकार का यह उत्तरदायित्व और अधिक गहरा हो जाता है कि वह समाज के प्रत्येक तबके को अपनी कला के स्वरूप से अवगत कराये ताकि जनसामान्य भी कला को आत्मसात् कर व्यक्ति स्वयं में सकारात्मक ऊर्जा का संचार कर सके और जीवन को एक नई दिशा प्रदान करे।

कला की साधना करना कलाकार के लिए जीवन को आत्मसात करना है। कला एक साधना है जिसके लिए पूर्ण समर्पण कलाकार का कर्त्तव्य है। बिना समर्पण के कला प्राप्त नहीं हो पाती। कलाकार अतिसंवेदनशील होता है और वह अपने अनुभव से दुखों को ग्रहण कर उनसे प्रेरणा ले कर कला के माध्यम से एक नये पथ का निर्माण करता है और भावों को सरल ढंग से अभिव्यक्त कर समाज को स्वस्थ रखना है।

सच्ची कला की रचना उसी समय हो सकती है, जब कलाकार मन और मस्तिष्क से स्वस्थ हो, समाज से घृणा न करता हो, किसी के प्रति द्वेष न रखता हो, जीवन का मूल्य समझता हो।

इस प्रकार उत्कृष्ट रचना के लिए यह आवश्यक है कि कलाकार हर प्रकार से स्वस्थ हो, विशाल व्यक्तित्व वाला हो। उसे किसी प्रकार की लालसा न हो। कलाकार चिन्ता से रहित हो, ऐसे त्यागी के समान हो जिसे कुछ पाने की लालसा न हो, अपितु समाज को कुछ देने की क्षमता हो। वह अपने लिए चिन्तित न हो बल्कि समाज के शुभत्व की कामना करता हो। समाज का व्यक्ति होते हुए भी समाज के दायरे से ऊपर उठकर समाज का निरीक्षण कर सकने की क्षमता रखता हो। अपने को अकेला न समझे बल्कि घट–घट में व्याप्त होने की क्षमता रखता हो। अपनी भावनाओं में बहनेवाला न हो बल्कि दूसरों के भावों में प्रवेश करने की क्षमता उसमें हो।

ससांर में मनुष्य जो कुछ करता है, सुख पाने की लालसा से करता है। सुख की वृद्धि के लिए ही समाज भी बनता है। जब व्यक्ति अकेले सुख प्राप्त करने में असमर्थ होता है, तब उसे समाज की शरण लेनी पड़ती है। समाज से उसे बल मिलता है, समाज की शक्ति उसे अधिक सुख की प्राप्ति कराने में सहायक होती है। मनुष्य बाल्यकाल से लेकर वृद्धावस्था तक समाज पर आश्रित रहता है। वह जो कुछ सीखता है, अनुभव करता है या प्राप्त करता है, उसका आधार समाज ही होता हैं। व्यक्ति समाज का एक अंग है जो समाज के द्वारा पोषित होता है। व्यक्ति का जो स्वरूप बनता है, वह उसका अपना रूप नहीं है और अगर है तो बहुत थोड़ा–सा, अधिकतर समाज का ही दिया हुआ रूप होता है। समाज यदि जननी है, तो व्यक्ति उसका बालक। जिस प्रकार बालक माता–पिता के गुणों को संचित कर विकसित होता है, उसी प्रकार व्यक्ति समाज के गुणों को संचित कर भविष्य के अनुरूप बनता है। वह अपने जीवन में सब कुछ समाज से ही सीखता है और उसी–जैसा व्यवहार करता है।

मनुष्य भी कलाओं को अपने समाज से ही सीखता है, कला का कार्य करने की प्रेरणा भी उसे अपने सामाजिक जीवन की अनुभतियों से ही प्राप्त होती है। उसकी कला का रुप उसकी अनुभूतियां होती है।

जब समाज कलाकार की कृतियों का मूल्य समझने में असफल होता है और कला का आदर करना त्याग देता है, तब कलाकार निराश होकर कला का कार्य तो करता जाता है लेकिन उसका आनन्द अब स्वयं लेता है। उसे समाज से प्रशंसा की आशा नहीं रहती। ऐसे समय जब उससे कोई कुछ पूछता है तब यह कहता है कि वह अपनी रचना कला के लिए करता है, दूसरों को दिखाने के लिए नहीं।

कलाकार, दार्शनिक या वैज्ञानिक समाज के उपयोगी अंग है। यह तो आज कोई नहीं कह सकता कि कला, दर्शन या विज्ञान के अविष्कार ने समाज को लाभ नहीं पहुँचाया परन्तु आज भी कलाकार, वैज्ञानिक तथा दार्शनिक का स्थान समाज में निराला होता है। इनका जीवन प्रायः अधिक सामाजिक नहीं हो पाता। साधारण लोग इनके गुणों तथा कार्यो से अपने समय में परिचित नहीं हो पाते और यही कारण है कि इन विभुतियों का सामाजिक जीवन कुछ अलग हो जाता है। फिर भी समाज इनको भविष्य में ऊँचा स्थान देता है और इनसे समाज का कल्याण होता है। इसी से सभ्य समाज का निर्माण होता है। इस सभ्य समाज के निर्माण के लिए कलाकार का उत्तरदायित्व

अधिक है। इस उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के लिए कलाकार को हमेशा तत्पर रहना चाहिए।

(5) कला और धर्म

धर्म आदर्श जीवन तथा महानतम मूल्यों का नाम है। धार्मिक जीवन का तात्पर्य है कला द्वारा आदर्श जीवन तथा महानतम मानव मूल्यों की प्राप्ति का प्रयत्न किया जाय। श्रृद्धा इसके लिये मूलाधार थी। धर्म और कला का सम्बन्ध अति प्राचीन है। धार्मिक ज्ञान प्राप्त करने का कला एक साधन थी। जिस प्रकार कला का बड़ा व्यापक अर्थ होता है वैसे ही धर्म की परिधी भी बड़ी विस्तृत है। दोनों के अलग–अलग क्षेत्र है और यह आवश्यक नहीं कि कला पर विचार करते समय उसका सम्बन्ध धर्म से भी निकाला जाय।

प्राचीन काल में सदियों तक संसार में धार्मिक आधिपत्य रहा है और मनुष्य के सभी कार्य उससे जुड़े हुऐ थे। धर्म के बाहर कोई चीज थी ही नहीं केवल अधर्म को छोड़कर। कला का कार्य अधर्म नहीं माना जाता बल्कि, कला हमेशा धर्म की संगिनी तथा पोषक रही है। भारतीय धर्मशास्त्रों तथा दर्शन में साकार और निराकार ब्रह्म की कल्पना की गई। साकार ब्रह्म की कल्पना में ईश्वर या देवी देवताओं के भौतिक स्वरूप का भी वर्णन किया गया और उसे ही चित्रकारों व मूर्तिकारों ने रूपायित किया। जब से साकार ब्रह्म की अवधारणा स्थापित हुई है, तभी से कला को धर्म में एक प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है। प्रत्येक देवी–देवता के शरीर को प्रतीकात्मक रूप दिया गया और सभी का रूप एक–दूसरे से बिल्कुल भिन्न है। शास्त्रों में देवी–देवताओं की प्रकृति, उनकी शक्ति, स्वरूप, मुद्रा इत्यादि का नखशिख वर्णन मिलता है और इसी आधार पर उनका एक आदर्श रूप निर्मित किया जाता है।

'विष्णु धर्मोत्तर पुराण', 'चित्र सूत्रम' इत्यादि में तथा तमाम अन्य पुराणों में देवी–देवताओं के चित्र तथा मूर्ति निर्माण हेतु आकार–प्रकार का वर्णन दिया गया है। इस प्रकार की वृहत् तथा विस्तृत ईश्वरीय स्वरूप की कल्पना अन्य कहीं प्रचलित नहीं हुई इसलिये भारतीय कला का संसार की कलाओं में एक अप्रतिम स्थान है।

प्राचीन समय में धर्म के ऊपर मनुष्य का जीवन आधारित था, आज जीवन का आधार विज्ञान है। धर्म भी मनुष्य को सुखमय जीवन व्यतीत करने का मार्ग दिखाता था और विज्ञान भी यही प्रयत्न कर रहा है। लक्ष्य एक ही है, केवल मार्ग भिन्न है। धर्मो का जब प्रादुर्भाव हुआ था, तब भी संसार में केवल एक धर्म नहीं था। विभिन्न प्रकार के धर्म रहे हैं, जैसे–वैदिक धर्म, बौद्ध, जैन धर्म, सिक्ख धर्म, इस्लाम धर्म, पारसी धर्म तथा ईसाई धर्म इत्यादि। अर्थात सुखमय जीवन व्यतीत करने के लिए धर्मो के रूप में मनुष्य के सम्मुख अनेक मार्ग रखे गये।

प्राचीन समय में धर्म मार्ग होते हुए भी लक्ष्य के रूप में था। मनुष्य का लक्ष्य धर्म को प्राप्त करना था। धर्म के लिए ही मनुष्य को प्रत्येक कार्य करना पड़ता था, धर्म का स्थान प्रमुख था, मनुष्य के सारे कार्य तथा शक्तियाँ धर्म की प्राप्ति में सेवक की भाँति थी। इसी प्रकार कलाएँ भी, कलाओं का भी लक्ष्य धर्मप्राप्ति था। कलाएँ धर्म के लिए थीं। धर्म पहले था, कला बाद में। धर्म के प्रचार में कलाएँ रत हुई। सम्पूर्ण प्राचीन भारतीय कला का कार्य धर्म का प्रचार करना रहा, चाहे ब्राह्मण कला हो, बौद्ध कला हो या जैन कला। समय के साथ सामाजिक अवधारणा और धार्मिक सन्दर्भ भी बदले तो कला का भाव भी परिवर्तित हुआ। परन्तु आधुनिक यूरोपियन कला धर्म से प्रभावित न होकर विज्ञान से अधिकाधिक प्रभावित हुई और उसका असर कुछ अंश में भारतीय कला पर भी पड़ा। धर्म की सेवा छोड़कर कला ने विज्ञान के तकनीकी पक्ष को अधिक अंगीकार किया, परन्तु बहुत थोड़े ही समय में कला ने विज्ञान को भी झटका दे दिया।

आधुनिक कला ने वैज्ञानिक सत्यों को भी ताक पर रखना प्रारम्भ कर दिया है और कला स्वयं के रचना धर्म से आत्मसाक्षात हुई है। जिस प्रकार धर्म तथा विज्ञान मनुष्य के जीवन को सुखी और आनन्दमय बनाना चाहते हैं, उसी प्रकार अब कला स्वयं यही कार्य करने को उद्यत है। कला अब दूसरे पर आश्रित नहीं अपितु स्वावलम्बी बन गई है, कला स्वयं एक धर्म है। धर्म का युग बीता, विज्ञान का युग बीत रहा है और कला का युग सामने है।

धर्म के अभाव में और विज्ञान के अति प्रभाव में हमने संसार को अवनति की ओर जाते समझा, अब कला के युग की आशा है। इसलिए अब हमें धर्म और विज्ञान के झंझटों या झगड़ों में नहीं पड़ना हैं। बल्कि इस नये युग में कला युग की कामना करनी है, जो हमारे सम्मुख जीवन का एक नया और उज्जवल मार्ग रखता है और मंगल भविष्य की कामना करता है जो हमे अवनति की और नही, प्रगति की ओर ले जा सके।

(6) कला और व्यवसाय

वर्तमान समय में कला और व्यवसाय एक दूसरे के पूरक है। व्यावसायिक कला या विज्ञापनकला इक्कीसवीं सदी की चीज है। प्राचीन काल में ऐसी कोई कला नहीं थी। व्यावसायिक कला, चित्रकला, मूर्तिकला, छापाकला, अंलकरण कला इत्यादि के द्वारा आज का कलाकार अधिक धन कमा सकता है या कला के माध्यम से व्यवसाय कर सकता है। 'अर्थ' आज का सर्वप्रमुख प्रयोजन हो या न हो, पर जीवन का एक प्रयोजन तो अब भी है। भारतीय शास्त्रों और पुराणों के अनुसार जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म, काम, अर्थ, मोक्ष का उल्लेख मिलता है। इसमें से धन को

तीसरा प्रधान प्रयोजन मानते हैं और इसी के अनुरूप जीवन के उद्देश्यों की प्राप्ति होती जानी चाहिये।

परन्तु वर्तमान समय में 'अर्थ' का प्रयोजन अधिक हो गया है और कला भी कला के लिये ना रह कर धनोपार्जन का मुख्य साधन हो गयी है चाहे वो काव्य, संगीत, नृत्य, नाटक, चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला, विज्ञापनकला इत्यादि ही क्यों ना हो। प्राचीन काल में भी कला एक पेशा थी। मन्दिरों, राजभवनों तथा धनवानों की अट्टालिकाओं में, दीवारों को चित्रित कर जीवकोपार्जन करना प्रचलित था और शायद इसीलिये उस समय चित्रकारी इत्यादि को उच्च कोटि की कला भी माना जाता था। इसी कारण कलाकार का समाज में सम्मान भी अधिक था। कलाकार को जिविकोपार्जन की चिन्ता नहीं थी। कला को समाज का आश्रय प्राप्त था इसलिए कलाकार अपनी कला में आत्मविभोर होकर उच्च कोटि की रचना करने में परिपक्व था। समाज भी उसकी कला को आसानी से ग्रहण करने में सक्षम था। परन्तु आज के कलाकार कला को बेचकर ज्यादा से ज्यादा धन प्राप्त करना अपना लक्ष्य समझते हैं। ठीक भी है, जीवन के चार प्रयोजन धर्म, काम, अर्थ तथा मोक्ष सभी आज पैसा पैदा करने के साधन बन गये है। कला के द्वारा 'अर्थ' की प्राप्ति कोई गलत नहीं है। परन्तु 'अर्थ' के लिये कला को ज्यौं का त्यौं तोड़मरोड़ कर कुछ भी कर देना गलत है यह कलाकार को समझने की आवश्यकता है।

आज के समय में कला से अनेक व्यवसाय किये जा सकते हैं। विज्ञापन कला के क्षेत्र में, पुस्तक लेखन के साथ इलेस्ट्रेशन में, (पोट्रेट) व्यक्ति चित्र बनाने में, द्विआयामी (2D) व त्रिआयामी (3D) एनिमेशन में, प्रोडेक्ट की डिजाईन में, मूर्तिशिल्प में, विभिन्न माध्यमों में चित्र बना कर ऑनलाईन बिक्री कर भी व्यवसाय को गति दी जा सकती है। आजकल थीम बेस्ड कार्यक्रमों में भी कला व कलाकार को बहुत अधिक व्यवसाय मिलने की प्रबल सम्भावना है।

इस प्रकार कला के द्वारा प्राप्त सुख को अक्सर आन्नद कहा जाता है। कहने का तात्पर्य यह कि कला के द्वारा भी भौतिक सुख या 'अर्थ' प्राप्त होता है। यह अनुभव अथवा सुख कलाकार को जीवन से तथा कला का कार्य करने से प्राप्त होता है और उसे भी वह कलाकृति के रूप में दूसरों को प्रदान करने में भी समर्थ होता है। कला का मूल 'अर्थ' अनुभव, अनुभूति, सुख, प्रसन्नता आनन्द, रस, सौन्दर्य, संवेग या सत्य इत्यादि ही है। इस रूप में कला निश्चित ही जीवन के चार उद्देश्यों में से 'अर्थ' की उपलब्धि कराने में सफल हो सकती है।

(7) कला संग्रहालय, कलादीर्घा और कला संस्थान

ललित कला केन्द्रों, अकादमियों, कला दीर्घाओं और कला स्कूलों की स्थापना इस देश में हुई, जिससे गुरू–शिष्य परम्परा से अलग कला शिक्षा की एक पद्धति विकसित हुई है। 21वीं शताब्दी के इस द्वितीय दशक में तेजी से परिवर्तित हो रहे। कला के स्वरूप में स्वभावतः कुछ नया भी है, कुछ दुहराव भी है। ललित कला केन्द्रों द्वारा देश के विभिन्न भागों में कलाकार शिविरों का आयोजन, विभिन्न कला दीर्घाओं द्वारा कलाकार की एकल या समूह प्रदर्शनियों का आयोजन एक महत्वपूर्ण कला गतिविधि है। जिससे कई पीढ़ियों तथा अलग–अलग शैलियों के कलाकारों का एक स्थान पर कुछ दिन इक्ट्ठे रह कर काम करना अपनी ही तरह का अनुभव होता है। इस अनुभव का लाभ युवा कलाकार, कला विद्यार्थी भी ले, इस कारण ये आयोजन समय–समय पर होते रहते हैं।

ललित कला अकादमियाँ प्रत्येक वर्ष वार्षिक प्रदर्शनियों का आयोजन करती है और अच्छी कृतियों को पुरस्कृत भी करती हैं। कला मेलों और कला संगोष्ठी का आयोजन भी इससे शामिल है। देश के विभिन्न भागों में आज कला संस्थान सुचारू रूप से चल रहे हैं और ये कला विद्यार्थियों, कला प्रेमियों के लिये प्रेरणादायक एवं लाभप्रद साबित हो रहे हैं। आज कई आर्ट सोसायटी, कला ग्रुप, संग्रहालय आदि सामने आते हैं जिनके सतत् प्रयासों ने देश में कला के प्रति जनरूचि को विकसित करने, कला के नये आयाम ढूंढने, कलाकारों को प्रतिष्ठित करने तथा नवोदित कलाकारों को प्रेरणा तथा उत्साह प्रदान करने एवं आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

कुछ प्रमुख कला संग्रहालय

1. राष्ट्रीय संग्रहालय, जनपथ, नई दिल्ली : देश का सबसे महत्पूर्ण संग्रहालय है। जिसमें सिन्धुघाटी से लेकर अर्वाचीन तक की कलाकृतियाँ विभिन्न विथिकाओं में प्रदर्शित है।
2. राष्ट्रीय आधुनिक कलादीर्घा, जयपुर हाऊस, नई दिल्लीः 1954 ई. देश में समासामयिक कला एवं आधुनिक कलाकृतियों का महत्पूर्ण संग्रहालय है। जिसमें कम्पनी शैली, बंगाल स्कूल से लेकर आज तक के कलाकारों की कृतियाँ संग्रहित है।
3. पुरातत्व संग्रहालय, लाल किला, नई दिल्ली
4. प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई : 1905 में इस महत्वपूर्ण संग्रहालय की नीवं रखी गई एवं आज एक विशाल संग्रहालय है।
5. दी इंडियन म्यूजियम : 27, जवाहर लाल नेहरू मार्ग, कलकत्ता, स्थापना सन् 1875, भरहूत के महत्वपूर्ण शिल्पों के अतिरिक्त कई महत्पूर्ण कृतियाँ संग्रहित।

6. दी विक्टोरिया मेमोरियल म्यूजियम, क्वीन्स वे, कोलकाता : इस संग्रहालय में भारतीय एवं यूरोपीयन कलाकारों की कृतियाँ संगृहित है।
7. राजकीय संग्रहालय एवं आर्ट गैलरी, पेंटनरोड़, एग्मोर मद्रास : स्थापना सन् 1909 में, इसमें अमरावती स्तूप के शिल्पखंड प्रर्दशित है। दक्षिण भारतीय कांस्य प्रतिमाओं का महत्पूर्ण संग्रह एवं आधुनिक कलाकारों की कृतियों की अलग आर्ट गैलरी है।
8. दी फोर्ट सेंट जार्ज म्यूजियम, बीच रोड़, चेन्नई।
9. दी केलिको म्यूजियम, शांतिबाग, अहमदाबाद : भारतीय हाथकरघा व बुनाई की कलात्मक सामग्री का महत्वपूर्ण संग्रहालय।
10. बड़ौदा म्यूजियम एण्ड पिक्चर गैलरी, सयाजी पार्क, बड़ौदरा।
11. भारत भवन रूपकंर म्यूजियम, भोपाल : लोककथाओं एवं समसामयिक कलाकृतियों का महत्वपूर्ण संग्रह।
12. उड़ीसा स्टेट म्यूजियम, जयदेव मार्ग, भुवनेश्वर।
13. दी आर्केलोजियम म्यूजियम, ओल्डगोआ, गोआ।
14. आसाम राज्य म्यूजियम, गुहाटी, आसाम।
15. सलारजंग म्यूजियम, हैदाराबाद : पूर्वी एवं पश्चिमी कला का महत्वपूर्ण संग्रहालय।
16. पुरातत्व संग्रहालय, खुजराहों (मध्यप्रदेश)
17. राजकीय संग्रहालय, संग्रहालय मार्ग, मथुरा, उत्तप्रदेश : कुषाणकालीन मूर्तियों का महत्वपूर्ण संग्रह।
18. राजकीय संग्रहालय, बुद्ध रोड़, पटना।
19. राजा दिनकर केलकर म्यूजियम, पूना
20. तंजोर आर्ट गैलरी, पैलेस बिल्डिंग, तंजोर, तमिलनाडू।
21. राजकीय संग्रहालय, तिरूअनन्तपुरम, केरल।
22. भारत कला भवन, बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी : कलामनिषी रायकृष्णदास के निजी प्रयासों से भारतीय कला की श्रेष्ठ कृतियों का संग्रह।

    राजस्थान के महत्वपूर्ण कला केन्द्रो एवं शहरों में राजकीय एवं निजी संग्रह जनता के अवलोकनार्थ स्थापित किये गये है।
23. राजकीय संग्रहालय जयपुर, अलवर, कोटा, बीकानेर, उदयपुर, जोधपुर, भरतपुर, महाराणा प्रताप, सवाई माधोसिंह म्यूजियम, जयपुर आदि भी महत्पूर्ण कलाकृतियों की संग्रहालय है।
24. आधुनिक कला संग्रहालय रविन्द्र मंच, जयपुर, जवाहर कला केन्द्र, जयपुर, पश्चिम, सांस्कृतिक केन्द्र, उदयपुर, लोक मंडल उदयपुर भी राजस्थान की कला के प्रमुख दर्शनीय है।

कुछ प्रमुख कला संस्थायें :

1. सर जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट, मुम्बई।
2. कॉलेज ऑफ आर्टस् एण्ड क्राट्स, चैन्नई।
3. कॉलेज ऑफ आर्टस एण्ड क्राट्स, कुम्भकोणम, तंजोर, तमिलनाडू।
4. कॉलेज ऑफ आर्टस एण्ड क्राट्स, कोलकाता।
5. रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय, कोलकाता।
6. कला भवन, विश्वभारती, शांतिनिकेतन, पं. बंगाल।
7. ललितकला संकाय, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
8. कॉलेज ऑफ आर्ट एण्ड क्राफ्ट्स, लखनऊ।
9. ललितकला संकाय, एम.एस. विश्वविद्यालय, बडौदरा।
10. सी.एन. कॉलेज ऑफ आर्ट, एलिसब्रिज, अहमदाबाद।
11. नेशनल स्कूल ऑफ डिजाईन, पालड़ी, अहमदाबाद।
12. गोआ कॉलेज ऑफ आर्ट, मीरमार, पणजी, गोआ।
13. दिल्ली कॉलेज ऑफ आर्ट, नई दिल्ली।
14. ललित कला संकाय, जामिया मिलिया ईस्लामिया, नई दिल्ली।
15. गवर्मेंट कॉलेज ऑफ फाईन आर्ट, हैदराबाद।
16. कॉलेज ऑफ आर्ट एण्ड क्राफ्ट्स, शांतिपुर, गुवाहाटी, आसाम।
17. राजकीय ललितकला महाविद्यालय, पटना।
18. ललित कला महाविद्यालय, चंडीगढ़।
19. इंसीट्यूट ऑफ म्यूजिक एण्ड फाईन आर्ट, श्रीनगर।
20. इंसीट्यूट ऑफ म्यूजिक एण्ड फाईन आर्ट, जम्मू।
21. कॉलेज ऑफ फाईन आर्ट, पलयम, तिरूअनन्तपुरम।
22. राजकीय ललित कला संस्थान, ग्वालियर।
23. राजकीय ललितकला महाविद्यालय, इन्दौर।
24. ललितकला संकाय, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
25. राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट, शिक्षा संकुल, जयपुर।
26. दृश्य कला संकाय, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर।

उपरोक्त संस्थाओं के अतिरिक्त देश के कई छोटे–छोटे आर्ट स्कूल है साथ ही देश के विश्वविद्यालयों में चित्रकला विषय सहित स्नातमक एवं चित्रकला में अधिस्नातक पाठ्यक्रम भी प्रचलित है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. कला शिक्षा क्या है?
2. आधुनिक कला से आप क्या समझते है?
3. कला शिक्षा का एक सर्वप्रचालित, सरल तथा उपयोगी माध्यम क्या है?
4. चित्रकला की भाषा क्या है?
5. किस ग्रंथ में चित्र तथा मूर्ति बनाने के लिये आकार प्रकार का वर्णन दिया गया है?
6. अब कला के युग की आशा कैसे है? लिखें।
7. कला का मूल 'अर्थ' क्या हैं? लिखें।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. शिक्षा में कला का महत्व पर एक निबन्ध लिखें।
2. कला के शैक्षिक मूल्यों पर एक निबन्ध लिखें।
3. कला के प्रयोजन के बारे में विस्तार से लिखें।
4. कला और समाज पर विस्तार से लिखें।
5. कला और धर्म की व्याख्या कीजिए।
6. धर्म और विज्ञान का लक्ष्य एक ही है, केवल मार्ग भिन्न है। विवेचना कीजिये।
7. कला और व्यवसाय एक दूसरे के पूरक है। विस्तार से लिखें।

खण्ड–ब

इकाई–2

भारतीय चित्रकला

अध्याय

5

प्रागैतिहासिक कला

प्रागैतिहासिक कला

प्रागैतिहासिक कला मनुष्य के आरम्भिक अवस्था की कला है। इतिहास से पूर्व के काल को प्रागैतिहासिक काल कहा जाता है अर्थात् भाषा के विकास से पूर्व अवस्था में मनुष्य (आदिमानव) जंगलों में रहता था और संघर्षपूर्ण जीवन जीता था। उस आदि मानव को अपनी भूख को शान्त करने के लिये, शरीर को शीत, ताप एवं वर्षा से सुरक्षित रखने के लिये और भयंकर पशुओं से स्वयं को बचाने के लिये अनेक प्रयत्न करने पड़े।

उसने अपनी भूख को शांत करने के लिये जंगली जानवरों का शिकार (आखेट) किया और स्वयं को सुरक्षित रखने हेतु पाषाण (पत्थर) के औजार तथा हथियार बनाये। उसने सुरक्षा के लिये गुफाओं की शरण ली। ऐसे वातावरण में उसने अपने जीवन के हर पहलू को अपनी भावनाओं और भाषा के रूप में पत्थरों के औजारों से रेखाओं द्वारा अपने अनुभवों को व्यक्त किया। ये रेखाऐं ही आदिम मानव की कला के रूप में संसार के समक्ष आई।

प्रागैतिहासिक कालीन मानव ने शिकार के क्षणों को, पशुओं की छवियों को पत्थर के औजारों से गुफाओं की दीवारों, चट्टानों की कठोर और समतल शिलाओं पर उकेरा। ऐसा कर आदिमानव ने अपने जीवन के क्षणों और अनुभवों को यादगार बना दिया। आदिमानव के चित्रों के समस्त उदहारण– लाल, काले, पीले और सफेद रंगो से बने है। यह चित्र चट्टानों की दीवारों, गुफाओं की छतों, फर्श और दीवारों पर बनाये गये है। अनेक चित्र खुली अवस्था में पड़ी पत्थर की शिलाओं पर भी बनाये गये है।

ये चित्र चट्टानों, गुफाओं की खुरदरी दीवारों पर लाल (गेरू या हिरौंजी), काले (काजल या कालिख) या सफेद (खड़िया) रंगो से बनाये गये है। इन रंगों को पशु की चर्बी में मिलाकर उकेरे गयें चित्रों की रेखाओं में भरते थे। इन चित्रों में बाहरी सीमा रेखा की प्रधानता है। इस सीमा रेखा को वो नुकीले पत्थर के औजारों से खोद कर बनाया करते थे, जिससे वह मौसमी प्रभावों से बचे रहे और स्थाई बने रहें।

मानव सभ्यता के प्रारम्भिक काल में आदिम जातियाँ संसार के विभिन्न क्षेत्रों में अपना विकास कर रही थी। उस काल में मनुष्य के पैर जहां भी पड़े वही उसने कला–रूपों का निर्माण कर दिया। भारत ही नहीं वरन् अन्य देशों में इस आदिमानव की कला के अवशेष आज भी उपलब्ध है । इनमें गुफा चित्रों की प्रधानता है। इन चित्रों में उसने अपने जीवन की घटनाओं, आमोद–प्रमोद, शिकार (आखेट), उत्सव एवं प्रकृति शक्तियों आदि विषयों का अंकन किया। अतः स्पष्ट है कि जिस वातावरण में आदिमानव रहा वहीं उसकी कला का भी विषय रहा। जानवरों का शिकार, परस्पर युद्ध, शिकार योजना, युद्ध व शिकार से लौटने के बाद का उल्लास, धार्मिक कृत्य उस समय की कला के प्रमुख विषय रहे। उसने अपने पालतु पशुओं हाथी, घोड़ा, बारहसिंगा, भैंसा आदि का सहज एवं सुन्दर ढ़ंग से अंकन किया है।

प्रागैतिहासिक कालीन मानव इन सब के साथ–साथ प्राकृतिक आपदाओं का भी सामना करता था। अतः उससे बचने के लिये वो इन्हें शक्तियों के रूप में पूजता था। उसकी इस सोच ने ही

प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को देवता के रूप में पूजा एवं टोना–टोटका आदि द्वारा इन शक्तियों को प्रसन्न करना चाहा होगा। अपनी सफलता व शुभत्त्व के लिये और अपनी उपासना को प्रभावपूर्ण बनाने के लिये उसने इन शक्तियों को प्रतीक रूप में अपनी कला के रूप में शामिल किया। आदिम कला में प्रतीकात्मकता बहुत व्यापक है। प्रतीकों के माध्यम से आदि मानव ने भौतिक, अलौकिक एवं अदृश्य वस्तुओं एवं भावों को व्यक्त किया है। भारत में ज्यामितीय व प्राकृतिक अलंकरणों में आज भी प्राचीन समय के अनेक प्रतीक प्रचलित हैं, जैसे त्रिभुज, वृत, सर्प, सिंह, हस्ती (हाथी), मत्स्य (मछली), स्वास्तिक, चक्र अण्ड आदि। इस समय आदिमानव ने विशेष रूप से पाषण का ही प्रयोग किया। इस कारण इस काल को विद्धानों ने **''पाषाण युग''** माना है।

अध्ययन की दृष्टि से आदिमानव के विकास क्रम को विद्धानों ने हिमयुग, प्रस्तर युग, धातु एवं सभ्यता काल के नाम से 50,000 वर्ष से 5000 वर्ष ईसा पूर्व तक के काल में विभाजित किया है।

इस प्रकार मानव प्रगति के आधार पर पाषण युग को भी तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. पूर्व पाषाण युग –
   30,000 ई.पू. से 25,000 ई.पू.
2. मध्य पाषाण युग –
   25,000 ई.पू. से 10,000 ई.पू.
3. उत्तर पाषाण युग –
   10,000 ई.पू. से 5,000 ई.पू.

1. पूर्व पाषाण युग

इस युग के अवशेष विशेष रूप से औजार तथा हथियारों के रूप में मिलते हैं। जिनकी गढ़ाई और आकर भद्दे हैं और जो भी उदहारण प्राप्त हुये हैं वह दक्षिण–भारत (मद्रास शहर के पास, चंगलेपुत, अंगोला तथा कुडापा) के क्षेत्रों से प्राप्त हुये हैं।

2. मध्य पाषाण युग

इस समय की बहुत कम सामग्री प्राप्त हो सकी है। इस समय के आदिमानव ने पूर्व पाषाण युग के मानव ने पाषाण (पत्थर) का ही प्रयोग किया।

3. उत्तर पाषाण युग

इस युग के अवशेष भी बहुत कम प्राप्त हुये हैं और जो उदाहरण प्राप्त हुये हैं उनमें से अधिकांश बेलारी के पास प्राप्त हुये हैं। इस समय के कुछ उदाहरण बुंदेलखण्ड, आसाम तथा नागपुर की पहाड़ियों, मिर्जापुर, गाजीपुर तथा विन्ध्याचल की कैमूर पर्वत श्रेणियों से प्राप्त हुये हैं।

पूर्व पाषाण युग का मानव दक्षिण भारत (कुडापा, मद्रास) के क्षेत्रों तक सीमित रहा। उत्तर पाषाण युग का आदि मानव सारे भारत वर्ष में फैल गया और बेलारी उसका मुख्य केन्द्र बना रहा। इस काल में मानव पत्थर के यंत्रों पर पालिश करता था और चाक पर बने मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करता था। उत्तर पाषाण युग के मानव ने सर्वप्रथम चित्रकला का प्रयोग किया और आज भी उनकी चित्रकला के उदाहरण विभिन्न स्थानों पर सुरक्षित हैं। इस समय के प्रमुख उदाहरण बेलारी, वाइनाड–एडकल होशंगाबाद, सिंघनपुर, बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड (विन्ध्याचल), मिर्जापुर, रायगढ़, हरनी–हरन, विल्लासरंगम, बुढ़ार, परगना आदि स्थानों पर प्राप्त होते हैं।

प्रमुख शैलचित्र एवं विशेषतायें

प्रमुख शैलचित्र

शैल चित्र से तात्पर्य पर्वतीय क्षेत्रों में नैसर्गिक रूप से निर्मित शिलाश्रयों छतों तथा दीवारों पर किये गये चित्रांकन से है। विश्व स्तर पर शैल चित्रों का सर्वप्रथम ज्ञान 1879 ई. में दक्षिण–पश्चिम यूरोप में स्पेन की अल्तामीरा गुफा के शैल चित्रों की खोज से प्रारम्भ हुआ माना जाता है, लेकिन भारतीय क्षेत्र में इन से सम्बन्धित खोज 1867–68 ई. में आर्चीबाल्ड कार्लाइल द्वारा की गई। इसकी शुरूआत आर्चीबाल्ड ने मध्यप्रदेश के रींवा जिले में सोहरोघाट के शैलचित्रों से की थी। इसके पश्चात् 1880 ई. में कार्लाइल एवं कॉकबर्न ने मिर्जापुर शैल चित्रों पर, 1910 ई. में एण्डरसन ने सिंघनपुर, 1932 ई. में हण्टर ने पंचमढी के शैलचित्रों का अध्ययन प्रस्तुत किया। इसके बाद डी. एच. गार्डन, आर.के. वर्मा, एस.के. पाण्डे, वी.एस.वाकणकर, वी. एन. मिश्रा, यशोधर मठपाल एवं इरविन न्यूमेयर आदि विद्धानों ने भारतीय शैलचित्र कला का व्यवस्थित अध्ययन किया। इसमें भीमबैटका के शैलचित्रों की खोज डॉ. वी.एस. वाकणकर की विशेष उपलब्धि है।

चित्रांकित शिलाश्रय पश्चिमोत्तर स्थित चारगुल से लेकर पूर्व में उड़ीसा तक तथा उत्तर में कुमाऊँ की पहाड़ियों से लेकर केरल तक के क्षेत्रों में पाए गये है, लेकिन सबसे अधिक ये मध्यप्रदेश तथा दक्षिणी उत्तर प्रदेश की पठारी भाग में प्राप्त हुये हैं। मध्यप्रदेश में सतना, रीवा, सीधी, सागर, शहडोल, दमोह सिहोर, होशंगाबाद, जबलपुर, भोपाल, रायसेन, मंदसौर आदि जिलों में सबसे अधिक चित्रित शिलाश्रय प्राप्त हुये हैं। रायसेन जिले में भीमबैठका के चित्रित शिलाश्रयों को यूनेस्को द्वारा विश्व सांस्कृतिक धरोहर के रूप में मान्यता प्रदान की गई है, जो

इसके चित्रों के महत्व को अभिव्यक्त करता है।

उत्तर प्रदेश में बघईखोर, कण्डाकोट, लखनिया, कोहबर, घोड़मंगर, मलरूरिया, महदरिया आदि शैलचित्रों के मुख्य केन्द्र हैं। राजस्थान में चम्बल नदी घाटी क्षेत्र में इस दृष्टि से शताधिक ऐसे पुरास्थल प्रकाश में आए हैं। राजस्थान में मुख्यतः ये शिलाचित्र कोटा, झालावाड़ दर्रा, छोटी सादड़ी, चित्तौड़, अजमेर, आबू क्षेत्र एवं बून्दी क्षेत्रों में प्राप्त हुये हैं। बून्दी क्षेत्र में शताधिक शिलाश्रयों की खोज की जा चुकी है। इनमें गरड़दा, रामेश्वर महादेव एवं भीमलत मुख्य है। भारत वर्ष में उत्तर–पाषाण युग की चित्रकला के अनेक स्थानों पर रोचक उदहारण प्राप्त हुये है। इन उदहारणों से आदिकाल के मानव की चित्रकला का ही विकास क्रम का ज्ञान ही प्राप्त नहीं होता बल्कि आदिमानव के जीवन शैली को भी जानने समझने का अवसर मिलता है।

चित्र 1

आदि मानव ने ये चित्र गुफाओं की दीवारों पर ही नहीं वरन् खुले वातावरण में पड़ी शिलाखण्डों पर भी बनाये हैं। चित्रित शिलाश्रय अधिकाशंतः पहाड़ियों के किनारे जलस्त्रोतों के निकट होते थे। ये आदिमानव शिलाश्रयों का चुनाव करता था क्योंकि जलस्त्रोतों के पास के शिलाश्रयों में आदिमानव जल तथा वन्यजीव आसानी से सुलभ हो जाते थे। प्रायः एक स्थान पर अनेक छोटे–बड़े अनेक प्रकार के शिलाश्रय पाये जाते हैं। इन सभी पर चित्रांकन नहीं मिलते। सम्भवतः आदिमानव चित्रांकन हेतु शिलाश्रयों का चुनाव करते थे। कहीं–कहीं एक शिलाश्रय पर एक के ऊपर अनेक चित्र मिलते हैं। मध्यप्रदेश की रायगढ़ रियासत में मांढ़ नदी के किनारे पूर्व की ओर स्थित सिंघनपुर नामक ग्राम में 50 चित्रित शिलाखण्ड तथा गुफायें मिली हैं। इसी क्षेत्र में कवरा पर्वत, करमागढ़, नवागढ़, खैरपुर तथा वोतालदा में अनेक शैल चित्र प्राप्त हुये हैं। यहाँ क्षेपाकंन पद्धति में चित्र बनाये गये हैं।

मिर्जापुर, भल्डरिया में भी अनेकानेक पशु–आखेट (शिकार) चित्र अंकित पाये गये हैं। मिर्जापुर में एक प्रसिद्ध प्राकृतिक–भ्रमण स्थल विढम में भी प्रागैतिहासिक चित्रकारी से युक्त शिलाश्रय प्राप्त हुये हैं। बुदनी तथा रहेली (होशंगाबाद) का नाम भी प्रागैतिहासिक चित्रकला के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ एक शिलाश्रय पर एक ''मोर'' का विशाल चित्र अंकित है और एक स्थान पर ''वनदेवी'' का चित्र अंकित है।

होशंगाबाद में नर्मदा नदी के किनारे इटारसी जाने वाले सड़क मार्ग से कुछ किलोमीटर की दूरी पर आदमगढ़ पहाड़ी पर एक दर्जन से अधिक शिलाश्रय हैं। जिनमें हाथी, महिष, घोड़े, सांभर, जिराफ–समूह, अस्त्रधारी अश्वारोही (घोड़े पर सवार) चार धनुरधारी आदि क्षेपांकन पद्धति से चित्र चित्रित किये गये हैं।

भोपाल क्षेत्र के धर्मपुरी नामक स्थान पर एक शिलाश्रय में गेरूए रंग से अंकित हिरन के आखेट (शिकार) का रहस्यमय चित्रण है। इस चित्र में शिकारी के पैर पूरे पत्तियों से ढ़के हुये बनाये गये हैं, जिससे भ्रमवश हिरन उसके समीप आ गया है। ऐसा इस दृश्य को चित्रित किया गया है।

होशंगाबाद में आदमगढ़ की पहाड़ी के शैलचित्र में हल्के पीले रंग से एक विशालकाय हाथी का चित्र सबसे महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त महामहिष का एक चित्र जो दोहरी रेखाओं में शिलाश्रय के ऊपरी भाग पर पूरे विस्तार से बनाया गया है। इस विशाल महिष चित्र का आकार 10 फीट लम्बा और 6 फीट चौड़ा है, यही एक शिलाश्रय पर मयूर का विशाल चित्र दो सीधी रेखाओं द्वारा अंकित है। एक अन्य शिलाश्रय पर आदिम वनदेवी का सा अलंकृत आकार बना है।

विशेषताऐं

चित्रों के विषय

प्रागैतिहासिक कालीन मानव के जीवन का मुख्य उद्देश्य भयानक पशुओं का शिकार तथा दैनिक जीवन के कार्य–कलाप तक ही सीमित रहा। अतः उसके चित्रों के विषय भी इसी से सम्बन्धित रहें। उसने सांभर (हिरन), बारहसिंगा, गैंड़ा, जंगली वृषभ, हाथी, घोड़ा, अरना भैंसा, सुअर जैसे जानवरों का स्वाभाविकता

से चित्रण किया। ये पशु उसने शिकार करते समय देखे थे और उनका पीछा करते हुये दैत्य जैसी शक्ति का अनुभव किया था। इन पशुओं की गति और शक्ति पर उसने विजय प्राप्त की थी। यही कारण था कि उसके चित्रों में मुख्य विषय के रूप में पशु जीवन का होना स्वाभाविक था। अतः पशु और पशुओं के शिकार (आखेट) दृश्य तथा जादू के विश्वास के प्रतीक चिन्हों का चित्रण इस समय की कला का प्रधान विषय हैं जैसे बिन्दु, त्रिकोण या स्वस्तिक आदि। इसके अतिरिक्त दैनिक जीवन का चित्रण इसके मुख्य विषय रहे हैं। आदिम कला में प्रतीकात्मकता बहुत व्यापक है। इस आदि मानव ने प्रतीक के माध्यम से स्थूल, भौतिक, ऐन्द्रिक और साथ–साथ सूक्ष्म अलौकिक एवं अदृश्य शक्तियों एवं भावों को व्यक्त किया है। आदिम कला में प्रयुक्त ये ज्यामितीय रूप अलंकरणों के रूप में आज भी प्रचलित हैं जैसे त्रिभुज, वृत, सर्प, सूर्य, सिंह, योनि, लिंगम्, स्वस्तिक, चक्र, अण्ड आदि। इसके अतिरिक्त आदिमानव ने शिकार में विजय के पश्चात् उल्लास, नाच गाकर झूमते, भरपेट भोजन प्राप्ति का आनन्द आदि विषयों के चित्रण द्वारा भी अपने दैनिक जीवन के क्षणों को सदैव के लिये अविस्मरणीय बना दिया है। आदिमानव द्वारा चित्रित चित्रों में दौड़ते, उछलते, गिरते, प्रहार करते आखेटक (शिकारी) गुस्से में आक्रमण करते हुये हिंसक–पशु या आक्रमण करते हुये पशुओं के चित्रण अत्यधिक रोचक है। कहा जा सकता है कि इन चित्रों में आदि मानव ने अपने भावों को सरलतम रूपों तथा ज्यामितीय आकारों में संजोया है। इन चित्रों की सीमा रेखा गतिशील है।

चित्रों का विधान

प्रागैतिहासिक काल के चित्र चट्टानों की दीवारों गुफाओं की छतों, फर्शो और भित्तियों (दीवारों) पर बनाये गये हैं। अनेक चित्र खुले में रखी हुई पत्थर की शिलाओं पर भी प्राप्त हुये हैं। इन चित्रों में सीमा रेखा की प्रधानता है। अतः इन्हें रेखा–चित्र मानना अधिक उचित है। आकृति की सीमा रेखा को अधिकतर किसी नुकीले पत्थर के औजार से खोद कर बनाया गया है, जिससे वह वर्षा के जल से धुल न जाये और स्थायी बने रहे। सामान्यतः दो–तीन रेखाओं से मानव आकृतियों का निर्माण किया गया है और कभी–कभी चौखूटे धड़ से मनुष्य आकृति बनाई गई है, जिसमें तिरछी और पड़ी रेखाये भर दी गई है।

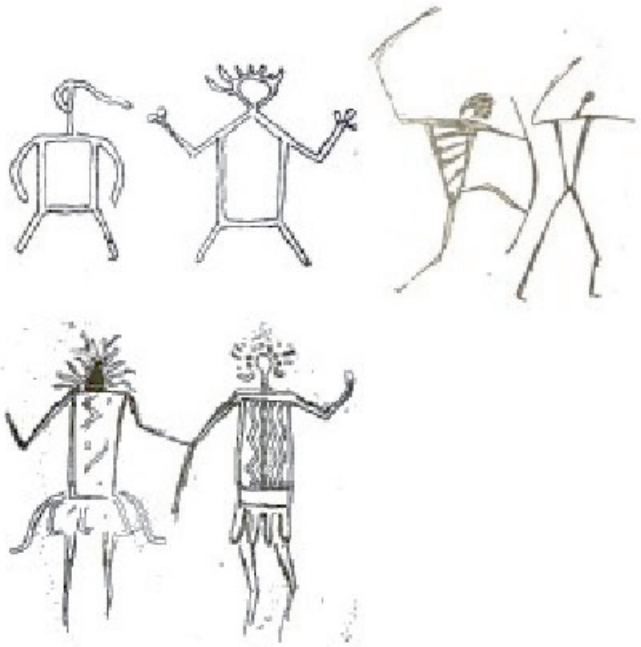

चित्र 2

रंग तथा आकार

इन चित्रों में रंगो का प्रयोग बाल सुलभ प्रकृति के आधार पर किया गया है। आकृति को भरने के लिए धरातल पर रंगो को सपाट लगाया गया है। इन चित्रों में उसने खनिज रंगो का प्रयोग किया है। इन रंगो में प्रधानता गेरू, हिरौंजी, रामरज तथा खड़िया का प्रयोग है। इन रंगो की अतिरिक्त रासायनिक रंगो में कोयला या काजल का प्रयोग किया गया है। सामान्य रूप से लाल गेरू का सबसे अधिक प्रयोग मिलता है। इससे मिलते जुलते नारंगी, भूरा (चोकलेटी) एवं बैंगनी रंगो का प्रयोग भी इन चित्रों में मिलता है। सफेद (खडिया) का प्रयोग बहुतायत से किया गया है। कहीं–कहीं पीले, हरे एवं काले रंग का भी प्रयोग दिखाई देता है। भीमबैटका के शिलाश्रयों में हरे रंग का चित्रांकन पाया गया है। जिसे डॉ. वी.एस. वाकणकर ने उत्तर पाषाण कालीन माना है। ये सभी रंग निकटवर्ती क्षेत्रों में खनिज रूप में सुलभ थे। जिन्हें घिस कर रंग तैयार किया जाता था।

इन चित्रों के निर्माण में सीधी रेखा, वक्र और आयत आदि ज्यामितीय आकारों का प्रयोग है। अधिकांश रूप से चित्रों को रेखाओं के द्वारा बनाया गया है या फिर पूर्ण रूप से क्षेपांकन पद्धति का प्रयोग है।

ये चित्र भद्दे, असंयत और कठोर है परन्तु इनमें गति व सजीवता है और तूलिका की शक्ति इनकी प्रमुख विशेषता है। तूलिका किसी रेशेदार लकड़ी या बांस या नरकुल आदि के एक सिरे को कूट कर बनाई जाती थीं। ये रंगो में पशुओं की चर्बी में मिलाने के लिये पशुओं के पुट्ठे की हड्डी को प्याली के रूप

में काम में लेते थे। ये अपने चित्रों को रेखा और सपाट रंगो की प्रयोग से बनाते थे। कहीं–कहीं फिर भी गोलाई का आभास होता है। इस आदिमानव के चित्रों की सरलता, सुगमता तथा रेखांकन पद्धति आज के कलाकारों के लिये प्रेरणा है।

प्रमुख चित्र

होशंगाबाद

होशंगाबाद पंचमढ़ी से लगभग 45 मील दूर नर्मदा के किनारे स्थित है। इस नगर से ढ़ाई–तीन मील पर इटारसी जाने वाली मोटर रोड़ के किनारे ही एक छोटी सी पहाड़ी है, जिसे आदमगढ़ कहा जाता है। इसी पहाड़ी पर करीब एक दर्जन से अधिक शिलाश्रय है। जिनमें हाथी, घोड़ा, महिष, जिराफ–समूह शस्त्रधारी–अश्वारोही (घोड़े पर सवार) चार धनुर्धारी क्षेपांकन पद्धति से बनाये गये हैं। यहां पर विभिन्न शैलियों में किये गये चित्रण–प्रयोगों के पांच या छः स्तर हैं, जो अनेक कालों के घोतक हैं।

घोड़े का आखेट (शिकार) चित्र

होशंगाबाद क्षेत्र में शिलाश्रय पर गेरूए लाल रंग से अंकित घोड़े के आखेट का दृश्य जिसमें एक धनुर्धारी बाण छोड़ कर घोड़े को घायल कर रहा है। बाण घोड़े के पिछले पैर में लगा है। आखेट (शिकार) और आखेटक (शिकारी) दोनों के पैरों से गति का आभास होता है, पर घोड़े के अगले पैरों की स्थिति अस्वाभाविक लगती है। उसके पेट पर धारियां चित्रित हैं। कुछ बाण धनुर्धारी की ओर सामने से आते हुये बनाये गये है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि घोड़े के लिये कदाचित् युद्ध भी हो रहा है।

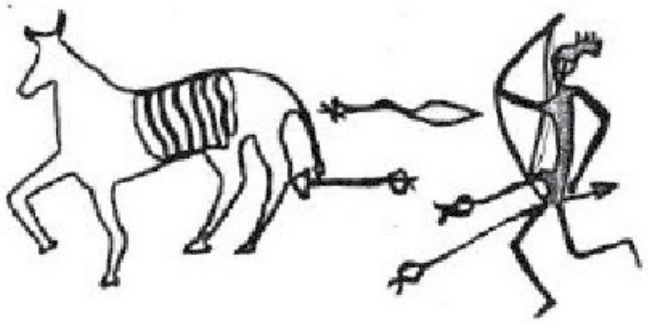

चित्र 3

सिंघनपुर

यह छत्तीसगढ़ की रायगढ़ रियासत में माढ़ नदी के किनारे पूर्व की और स्थित है। पूर्व में यह मध्यप्रदेश राज्य के अन्तर्गत स्थित था। सिंघनपुर चँवरढल पर्वत श्रृंखला के तल में बसा हुआ एक छोटा सा गांव है जो नहर पाली नाम से लगभग तीन मील दूर है। यहां 50 चित्रित शिलाश्रय एवं गुफायें मिली हैं। यहां घोड़ा , बारहसिंगा, हिरन, साही, भैसा, सांड सूंड उठाए हाथी आदि जानवरों का सजीव अंकन है।

विशालकाय महिष आखेट

यह एक विशालकाय महिष आखेट (शिकार) का समूह चित्रण भारतीय शिलाश्रयों पर चित्रित सभी आखेट–दृश्यों (शिकारी चित्रो) में प्राचीनतम एवं महत्वपूर्ण है। इसमें शिकारी सिर्फ भालों का प्रयोग करते हुये दिखाये गये हैं, जो धनुर्ज्ञान से पहले की नितान्त आदिम अवस्था का घोतक है। उसकी गतिमय मुद्रायें अत्यन्त स्वाभाविक प्रतीत होती हैं। महिष चित्रित है। इसी के पैरों के पास लघु आखेट दृश्य जिसमें जंगली शूकर (जंगली सुअर) का सजीव चित्रण किया गया है। उसके सामने मानवाकृतियां भी उतनी ही सजीव हैं। ये सभी शिकारी भालों से शूकर पर वार कर रहे हैं। शूकर की अवस्था एवं आखेटकों की मुद्राओं से आखेट–दृश्य (शिकार–चित्र) स्पष्ट रूप से लक्षित हो रहा है।

चित्र 4

मिर्जापुर

मिर्जापुर क्षेत्र में स्थित गुफाओं के चित्रों में अधिक स्वाभाविक एवं यथार्थता से चित्रित किये गये हैं। इनमें गैंडा, सांभर, हिरन, सुअर तथा बारहसिंगा है।

मिर्जापुर क्षेत्र में विजयगढ़ दुर्ग के समीप ही घोडमंगर में

गेरूए रंग से गैंडे का शिकार का एक महत्वपूर्ण दृश्य है। विजयगढ़ की ''हरनी–हरन'' नामक गुफा में प्रायः इसी प्रकार के छः आदमी कांटेदार भालों से गैंडे का शिकार करते हुये चित्रित हैं। चित्र में भाले बहुत विशेष आकृति के कांटेदार बनाये गये हैं। इस चित्र में गैंडे की आकृति, आखेटकों (शिकारियों) की आघात–मुद्रायें तथा सींग के प्रहार से ऊपर उछले निःशस्त्र आखेट की रचना विशेष ध्यान आकृष्ट करती है। आखेट–दृश्यों में यह चित्र अद्वितीय है।

चित्र 5 – गेंडे का शिकार दृश्य

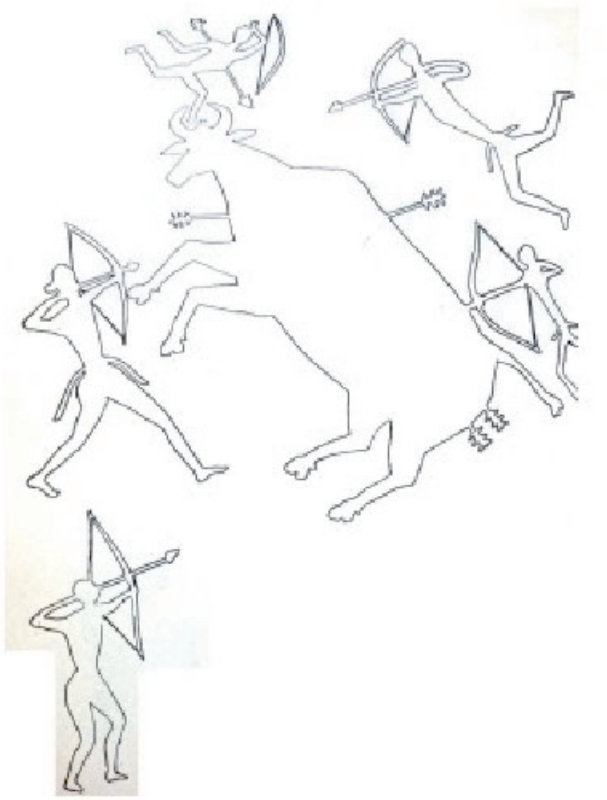

चित्र 6 – वृषभ के आखेट का दृश्य

पचमंढी वृषभ आखेट दृश्य

पचमंढी क्षेत्र के ''इमली खोह'' में सौ से भी अधिक चित्रों के बीच सफेदी लिये हुये हल्के जामुनी रंग में अंकित वृषभ के आखेट (शिकार) का एक महत्वपूर्ण चित्र है। इस दृश्य में पांच धनुर्धर मिलकर वृषभ का शिकार कर रहे हैं। सभी आखेटकों (शिकारियों) की मुद्रायें सजीव एवं आकृतियां गतिमय है। इनकी बाण छोड़ने की मुद्रायें स्वाभाविक हैं। इस दृश्य में एक धनुर्धर को वृषभ ने सींगों से ऊपर उछाल दिया है। जिससे उसका ध नुष बाण हाथ से छूट गया है। चार बाण (तीर) बैल के शरीर में छिदे हुये, दो पीछे, एक पीठ में और एक नीचे गर्दन में लगा चित्रित किया गया है। वृषभ क्रोधित और आघात मुद्रा में चित्रित किया गया है। जो उसकी झुकी गर्दन और उठी पूंछ से अनुमान लगाया जा सकता है। वृषभ का आखेट दृश्य सम्भवतः प्रस्तर युगीन आदिम अवस्था का परिचायक है।

भीमबैठका

भीमबैठका मध्यप्रदेश के विन्ध्याचल पर्वत श्रेणी में स्थित है। यह मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल से 40 किलोमीटर दक्षिण में एक पहाड़ी है। जो गोहरगंज तहसील और रायसेन जिले में स्थित है। उसका नाम भीमबैठका है। बरखेड़ा नामक रेल्वे स्टेशन से कुछ दूरी पर भीमपुरा नामक आदिवासी गांव के पास ही भीमबैठका की पहाड़ी है। चट्टानों की ऊँचाई अधिक होने से काफी दूरी से ही चट्टानें दिखाई देने लगती है, यह स्थान आदिमानव का मुख्य केन्द्र रहा होगा। यहां दो प्रकार के चित्र प्राप्त हुये है। जंगली जानवर एवं अविकसित मानवीय रूप है। भीमबैठका के दोनों ओर 600 से भी अधिक शिलाश्रय हैं, जोकि 10 किलोमीटर में फैले हुए हैं।

इन चित्रों के खोज का श्रेय श्री विष्णु श्रीधर वाकणकर को है। इन्होंने 1958 ई. में इस क्षेत्र को खोज निकाला। यहां के शैलचित्र सबसे पुराने और अधिक संख्या में प्राप्त हुये है। यहां प्राप्त होने वाले चित्रों में अधिकतर चित्र लाल अथवा सफेद रंगों में बने हैं। कहीं–कहीं हरे व पीले रंग का प्रयोग भी दिखाई पड़ता है।

यहां पर मुख्य रूप से हाथी, गैंडा, भालू, जंगली सुअर,

चीता, जंगली गाय, नीलगाय, सांभर, बैल, भैस, बंदर एवं हिरन आदि पशुओं का चित्रण मिलता है। ये पशु ज्यादातर झुंड़ में ही चित्रित किये गये हैं।

विद्धानों का मत है कि प्रागैतिहासिक काल में मानव एक हजार वर्ष तक निवास करता रहा होगा। भीमबैठका की सबसे बाद की संस्कृति को मध्य पाषण काल कहा जा सकता है, जिनके बहुत सारे उपकरण प्राप्त हुये हैं। जहां उनके द्वारा प्रयुक्त औजार एवं हथियार अपने मूल स्थान पर ही दबे रह गये। प्रागैतिहासिक संस्कृति का इतना लम्बा एवं अविच्छिन्न इतिहास अन्य स्थानों पर दुर्लभ है।

भीमबैठका की गुफाओं एवं शिलाश्रयों पर पाई जाने वाली चित्रकला से इस स्थान का महत्व बहुत अधिक है।

शिकार नृत्य दृश्य

यह चित्र शिकार नृत्य का दृश्य है। यह चित्र भीमबैठका की गुफा के आवक्ष पट पर बना है। यह दृश्य 3 से 4 फीट के आकार में बना हुआ है। यह भीमबैठका के दो प्रकार के चित्रों में से दूसरे प्रकार का चित्र है। पहले प्रकार के चित्रों में जंगली जानवरों के के चित्र है और दूसरे प्रकार के चित्रों में यह चित्र आता है। ये वे चित्र है जिनमें मानव का कुछ विकसित रूप दर्शाया गया है। अतः यह चित्र विकसित श्रृंखला का अंग माना गया है।

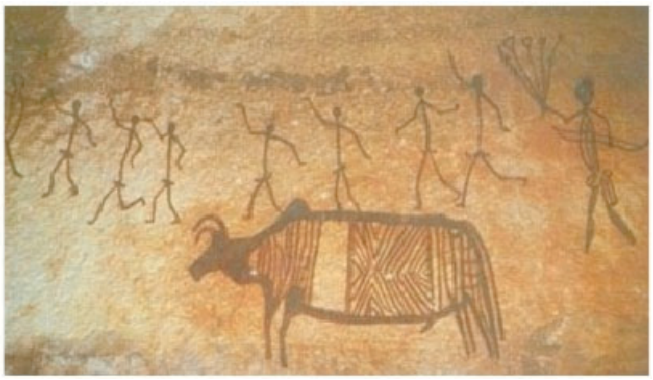

चित्र 7

इस चित्र में एक वृषभ स्वभाविक मुद्रा में गर्दन सीधी कर खड़ा हुआ दिखाया गया है। जिसके दोनों सींग आगे की ओर मुड़े हुये हैं। चेहरे व थूथन में गहरा गेरूआ (लाल) रंग सपाट भरा हुआ है। इसके बाद गर्दन से पेट के कुछ हिस्से में खड़ी रेखाऐं अंकित हैं। गर्दन का कुछ भाग खाली है। शरीर के पिछले हिस्से में तिरछी व षट्कोणीय रेखाऐं दर्शायी गई हैं। तथा पीछे पुट्ठे पर चौकड़ी बनी हुई प्रतीत होती है। चित्र में वृषभ की बिना बालों वाली पूंछ सीधी लटकी हुई है और उसके चारों पैर खुर अदृश्य (कटे हुये) हैं। वृषभ आकृति के पृष्ठ भाग में लगभग आठ मानवाकृतियां बनी हुई हैं। ये मानवकृतियां नृत्य मुद्रा को दर्शाती है। वृषभ के पीछे बनी मानवाकृति अपने बांये हाथ में धनुष व दांय हाथ में पांच तीर लिये हुये और उन्हे हाथ से ऊपर की ओर उठाये दिखाया गया है।

यह चित्र प्रकृति पर मानव विजय का चित्र है और व्यक्तित्व के आन्तरिक उल्लास का घोतक है। इस चित्र में ज्यामितीय रेखायें विभिन्न शक्तियों को व्यक्त करती हैं। इस चित्र में कलात्मकता, अनुभूति की सप्राणता, तीव्र गति बोधता के साथ–साथ आकृतियों की सहजता को दर्शाकर आदिमानव ने चित्रोपम तत्व को प्रदर्शित किया है। विकसित आखेट संस्कृति का यह रूप आदिमानव ने वृषभ के बाह्य शरीर के भाग पर विश्रृंखल रेखाओं के माध्यम से तन्त्र विद्या का अमूर्त, ज्यामितीय संयोजन निर्मित कर आने वाली पीढ़ी के लिये नया उदहारण प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार विविध स्थानों पर बने आदिमानव के इन चित्रों के माध्यम से हम उस आदिमानव की जीवन शैली, विकास क्रम एवं भावनाओं को जान सके हैं। जो चित्रकला के इतिहास का प्रथम एवं महत्वपूर्ण अध्याय है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. शैलचित्रों से क्या तात्पर्य हैं?
2. प्रागैतिहासिक कालीन मानव ने अपने चित्रों में किन–किन रंगो को प्रयोग किया?
3. भीमबैठका के चित्रों को अधिक प्रसिद्धी क्यों प्राप्त हुई?
4. राजस्थान में प्रागैतिहासिक काल के चित्र किन–किन क्षेत्रों से प्राप्त हुयें?
5. मध्यप्रदेश के प्रागैतिहासिक चित्रों के केन्द्र कौन–कौन से हैं?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रागैतिहासिक कालीन मानव की कला के विषय तथा विशेषताओं पर निबन्ध लिखिये।
2. शैलचित्रों से आप क्या समझते है? चित्रों के विधान तथा उनके विषयों पर प्रकाश डालिये।
3. पचमंढी से प्राप्त 'वृषभ आखेट' के चित्र का वर्णन किजिए।
4. मिर्जापुर कहां स्थित है? मिर्जापुर क्षेत्र के विजयगढ़ से प्राप्त 'गैंडे के आखेट दृश्य' चित्र का वर्णन किजिए।

अध्याय

6

बौद्धकालीन चित्रकला

जोगीमारा (2 सदी ई.पू.)

भौगोलिक स्थिति

पुरानी सरगुजा रियासत में स्थित जोगीमारा गुफा वर्तमान मे म.प्र. के अमरनाथ नामक स्थान पर नर्मदा नदी के उद्‌गम स्थल रामगढ़ की पहाड़ियों पर स्थित है। यहाँ पर ये दो गुफाएँ हैं। जोगीमारा को पहले एक देवदासी का निवास स्थान माना जाता था। किन्तु यहीं प्राप्त एक शिलालेख के अनुसार यह ''वरूण देवता'' का मन्दिर था। वरूण देवता की सेवा में सुतनुका नामक देवदासी यहाँ रहती थी। यहीं पास में एक अन्य गुफा प्रेक्षागार (नाट्यशाला) है। रूपदक्ष देवदीन इस प्रेक्षागृह का प्रमुख नायक पात्र था। सुतनुका इस रूपदक्ष देवदीन पर प्रेमासक्त थी। इस प्रेमासक्ता के कारण सुतनुका को प्रेक्षागार के अधिकारियों का कोपभाजन होना पड़ा तथा बाद में वियोग में अपना शेष जीवन बिताना पड़ा। रूपदक्ष देवदीन ने इस प्रेम प्रसंग को जोगीमारा के निकट सीता बोंगरा के प्रेक्षागृह की भित्ति पर अभिलेख के रूप में अंकित किया है।

वर्तमान में यह स्थान एक तीर्थस्थल के रुप में विकसित है, किन्तु यहाँ तक पहुँचने के लिए आवागमन के अच्छे साधन नहीं हैं। एक किंवदंती के अनुसार वनवास काल में राम ने इन पहाड़ियों पर कुछ समय व्यतीत किया था। इन गुफाओं में भित्ति चित्रों के प्राचीनतम (जोगीमारा गुफा का समय अजन्ता से भी पुराना है) अवषेश देखने को मिलते हैं।

जोगीमारा गुफा की दीवारें अजन्ता की तरह सपाट धरातल कहीं–कहीं खुरदरा है और कहीं–कहीं पर बहुत पतले चूने का प्लास्तर है। प्लास्तर में अजन्ता वाली गुणवत्ता नहीं है।

वैसे जोगीमारा की गुफा का काल 300 वर्ष ई. पूर्व माना गया है, किन्तु यहाँ मूल चित्रों पर (पुराने प्रथम चित्रों पर) अपरिपक्व व अकुशल कलाकारों द्वारा पुनर्चित्रण का प्रयास किया गया है। दूसरी बार लगाये गये रंग और रेखाएँ स्पष्ट अलग ही दिखाई देती हैं। यहाँ की छत भी बहुत नीची है। जोगीमारा की गुफा 6 फीट चौडी, 6 फीट ऊँची और 10 फीट गहरी है। यह दूसरी बार का चित्रण कब हुआ? कहा नहीं जा सकता है। किन्तु पुराने मूल चित्रों को हम मौर्यकाल के अद्वितीय उदाहरण मान सकते हैं।

जोगीमारा के चित्रों के विषय की धर्म सम्बद्धता स्पष्ट नहीं है कि ये चित्र किस धर्म के हैं। फिर भी डॉ.ब्लॉख इन्हें तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के मानते हैं, और इस चित्र शैली को समकालीन भरहूत और सॉची की मूर्तिकला से साम्यता बताते हैं। डॉ. रायकृष्ण दास इन चित्रों को जैन धर्म के मानते हैं, तो असित कुमार हलदार देव–दासियों के विषयों से इन चित्रों का संबंध जोडते हैं।

सन् 1914 में क्षेमेन्द्रनाथ गुप्त और असित कुमार हलदार ने जोगीमारा के चित्रों का अध्ययन किया और अनुकृतियाँ भी तैयार की। दोनों कला मर्मज्ञों ने इस गुफा में तत्कालीन प्राप्त सात चित्र खण्डों के अवशेषों का वर्णन निम्नानुसार किया है:

पहला चित्र

चित्र के केन्द्र में वृक्ष के नीचे एक पुरूष बैठा है। जिसके बाई और कुछ नर्तकियॉ और संगीतज्ञ हैं। दाहिनी ओर एक हाथी के साथ जुलूस का दृश्य है। नीचे की ओर आलंकारिक रेखाओं से लहरदार पानी को व्यंजित किया है। पानी में मछलीनुमा एक विशाल आकृति है, यह मगरमच्छ भी हो सकता है। सम्भवतः यह पौराणिक गजग्रह कथा का वर्णन हो।

दूसरा चित्र

इस चित्र में कुछ ही पत्तियों वाले वृक्ष के नीचे चार आकृतियाँ विश्राम कर रही हैं। शायद पतझड़ का मौसम हो, एक मोटा

तथा सपाट तने पर कुछ ही पत्तियाँ लाल रंग से बनाई है, जो सम्भवतः कोपलों का आभास देती है।

तीसरा चित्र

इस चित्र मे सफेद पृष्ठ भूमि पर एक उद्यान का दृश्य अंकित है। नीचे लाल रंग की कुमुदनी के फूलों पर लाल ही रंग से एक स्त्री–पुरूष (युगल) नृत्य करते चित्रित है, चित्र में लाल रंग की अधिकता है।

चौथा चित्र

इस चित्र में एक व्यक्ति के सिर पर चोंच बनाई गई है, तथा साथ ही कई छोटे–छोटे बोने व्यक्ति बनाये हुए हैं। भारतीय स्थापत्य और साहित्य में ऐसे बोनों का खूब अंकन हुआ है। राजपरिवार में हास्य–विनोद के लिए भी इन बोनों को काम मे लिया जाता था।

पाँचवाँ चित्र

इस चित्र का केन्द्र बिन्दु एक भावमग्न नर्तकी का है। उसके चारों ओर वाद्य–यंत्र लिए कुछ मानवाकृतियाँ है। पास में चार व्यक्ति खड़े हैं, जिनमें एक व्यक्ति नंगा है। इस नृत्य–गायन दल के पास ही तीन घोड़ों से बंधा एक रथ है, साथ में एक हाथी और महावत भी चित्रित है। फिर कुछ पुरूष, एक घर, जिसमें चैत्य बना है, घर की खिड़की और एक अन्य हाथी है।

छठा चित्र

इस चित्र में प्राचीन प्रकार के रथों की तरह के चैत्यों का चित्रण है।

सातवॉ चित्र

इस चित्र मे ग्रीक रथों से साम्यता रखते भवन बने हैं। चित्र के किनारों पर आलेखन हैं, जिनमें मछलियाँ, मगर व अन्य जीव–जन्तुओं का चित्रण है।

जोगीमारा के चित्रों की विशेषताएं

आकृतियाँ

जोगीमारा की चित्रकारी अजन्ता के लिए पूर्वपीठिका थी, फलतः अजन्ता जैसी चित्र परम्परा शुरू हुयी। जोगीमारा की आकृतियाँ सामान्य, किन्तु लावण्यमयी हैं। यहाँ के बोनों की आकृतियॉ भरहूत और सांची से साम्यता रखती है।

रंग

जोगीमारा के चित्रों में हिरौन्जी, लाल, सफेदखड़िया और वनस्पति हरा रंग को काम मे लिया गया है।

संयोजन

संयोजन में सम्मुख नियम का निर्वाह किया गया है। चित्रित संयोजन सुन्दर है, किन्तु अजन्ता वाला काल्पनिक परिप्रेक्ष्य यहाँ नहीं है।

रेखा

जोगीमारा के चित्रों की रेखाएँ लय एवं गतिपूर्ण हैं। कहीं–कहीं पूर्व के मूल चित्रों की झांकती रेखाएँ भी दिखाई देती हैं। दूसरी बार के अधिकांश चित्र सफेद पृष्ठभूमि पर लाल रंग से बनाये गये हैं। जिन्हें काले रंग की बाह्य रेखाओं से पूर्ण किया गया है।

अजन्ता

ईसा पूर्व छठीं–सातवीं शताब्दी में भारत में धर्म की गूढ़ता और कठोरता बहुत बढ़ गयी थी। ऐसे समय में मध्यम व निम्न वर्ग को सरलता से धर्म का अनुसरण करने की बहुत आवश्यकता महसूस हुई। इसी के फलस्वरूप भारत में जैन और बौद्ध घर्म का मात्र उद्‌भव व विस्तार ही नहीं हुआ, अपितु इन्हें राज्याश्रय भी मिले।

धर्म अनन्त चलने वाला विषय रहा है, अतः इसके आधार भी धीरे–धीरे स्थायित्व की ओर बढते गये। जैन धर्म के ताड़पत्र, भोजपत्र, कागज और कपड़े पर बने चित्रों के अस्थायित्व के कारण बौद्ध धर्मावलम्बियों ने पाषाण स्तूप और विहारों में धर्माभिव्यक्ति का चयन किया।

मध्यप्रदेश में ''सांची और भरहूत'', दक्षिण में ''अमरावती और नागार्जुनकोंडा'' तथा पश्चिम में ''कार्ले और भाजा'' के चैत्य, ये सभी बौद्ध धर्म को स्थायित्व देने के प्रयास थे। यद्यपि स्वयं बुद्ध ने उनकी (बुद्ध की) चित्रकृति बनाने की निषेधाज्ञा दी थी, फिर भी उनके अनुयायी धर्म की प्रगाढ़ता में बौद्ध धर्म के प्रचार में इसे अंगीकार नहीं कर पाये और बौद्ध धर्म के प्रचार में बुद्ध के और उनके जीवन प्रसंग से सबद्ध मूर्तियाँ व चित्र बनाकर अजन्ता का निर्माण किया।

सातवाहन काल, जो ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में दक्षिण में और उत्तर के बहुत बड़े क्षेत्र में स्थापित हो चुका था। अजन्ता के चित्रों का प्रारम्भ इसी काल में हुआ। वाकाटक काल भी अजन्ता का महत्त्वपूर्ण समय था। सोलहवीं गुफा के शिलालेख से ज्ञात होता है कि राजा हरिसेन का मन्त्री वराहदेव ने इसे खोदने और चित्रण करने की आज्ञा दी थी। इस प्रकार अजन्ता की गुफाएँ और चित्र 200 ई. पू. से 625 ईस्वी तक निर्मित होते रहे।

अजन्ता की गुफाएँ महाराष्ट्र में जलगाँव–औरंगाबाद के मार्ग पर जलगाँव से 59 किमी. और औरंगाबाद में 102 किमी. पर

चित्र 1 – अर्धचन्द्राकार पर्वत श्रृंखला और सप्त प्रपात।

अजन्ता की पहाडियों में स्थित है। अजन्ता के पास में तीन गाँव आते हैं, जहाँ से अजन्ता तक जाया जाता है। ये जलगाँव, औरंगाबाद और पहुर हैं।

अजन्ता का प्रभुत्व सतपुडा घाटी में प्रकृति के मनोरम सौन्दर्य को और भी द्विगुणित कर देती है। कई सर्पाकार घुमाव से यहाँ पहुँचने से पूर्व अजन्ता का अनुमान भी नहीं लगता है। यहीं से गिरता सप्त प्रपात बाघोरा नदी का उद्‌गम स्थल है। इस प्रपात के कारण गुफा संख्या सोलह का दृश्य और भी रमणीय हो जाता है। यहाँ पर एक अर्द्धचन्द्राकार पंक्ति में काटकर ये गुफाएँ बनाई गई है। कुछ अधुरी गुफाओं से पता चलता है कि इनकी कटाई छत व उपरी भाग से होती थी और धीरे–धीरे नीचे की ओर काटते हुए चले जाते थे।

सघन सह्याद्रि पर्वतमाला की एक शाखा इन्ध्यान्द्रि की पहाड़ियों की लगभग 250 फीट ऊँची अर्द्धवृत्ताकार चट्‌टानों को खोदकर इन गुफागृहों का निर्माण किया गया। ऐसे मनोरम और दिव्य स्थान को बौद्ध धर्मानुयायियों ने अपनी धर्म और कला साधना के लिए उचित समझा होगा। अजन्ता की गुफाएँ शेर, चीतों व जंगली जानवरों की रहने वाली प्राकृतिक गहरी–अन्धेरी गुफाएँ नहीं है, ये तो मानव निर्मित अनुपम, अद्वितीय और सौन्दर्य के जीवन्तरूप स्थापत्य हैं। पहाड़ियों की चट्‌टानों को खोदकर उन्हीं में छत, स्तम्भ, विशाल सभाभवन, विशालद्वार, विशाल दीवारें, अगणित मूर्तियाँ बनाई हैं, जो अजन्ता को विश्वभर में अपना स्थान देते हैं। तीन–चार स्थानों पर पहाड़ों में ही दो–दो, तीन–तीन मंजिल की गुफाएँ हैं। इन्हीं की विशाल भित्तियों पर विश्वप्रसिद्ध बौद्ध चित्र बनाये गये थे। इस प्रकार अजन्ता की ये गुफाएँ वास्तुकला, मूर्तिकला और चित्रकला की अनुपम संगमस्थली है।

चित्र 2 – गुफाओं का निर्माण और गुफा संख्या 19 का प्रवेशद्वार।

अजन्ता की खोज और जीर्णोद्धार

अजन्ता गुफाओं से 11 किमी. की दूरी पर एक छोटा सा गाँव अजिण्ठा है। उसी के कारण इन गुफाओं का नामकरण ''अजिण्ठा की गुफाएँ'' और अंग्रेजी में "AJANTA CAVES" फिर हिन्दी में अजन्ता की गुफाएँ चलन में हो गया।

अजन्ता पर भारतीय और विदेशी कई चित्रकारों और लेखकों ने खूब काम किया। लेखकों ने इन पर लेख लिखे तो चित्रकारों ने इनकी हूबहू प्रतिकृतियाँ, (चित्रकृतियाँ) निर्मित की, जिसकी संक्षिप्त जानकारी भी यहाँ आवश्यक है।

लोरेन्स बिनयन के अनुसार अजन्ता एशिया की कला में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है, और पाश्चात्य देशों में भारतीय चित्रकला को अपना न्यायोचित स्थान दिलाने में अजन्ता के चित्रों का प्रमुख स्थान रहा है।

अजन्ता की इतनी महत्त्वपूर्ण गुफाएँ लगभग 1200 वर्षों तक भारत में अनभिज्ञ रही। 1819 ईस्वी में मद्रास रेजिमेन्ट के एक फौजी अधिकारी को आखेट के समय सर्वप्रथम इन गुफाओं का पता चला, फिर तो इन गुफाओं पर लेख पर लेख प्रकाशित हुए। अनुकृतियों पर अनुकृतियाँ बनी और अजन्ता विश्वप्रसिद्ध कला तीर्थस्थल बन गया।

जनरल सर जे. एलैक्जेन्डर अजन्ता को देखने सन् 1854 में स्वयं इण्डिया आये और रॉयल एशियाटिक सोसायटी को अपनी टिप्पणी भेजी। 1828 ई. में ही कप्तान ग्रेसले और राल्फ ने भी अजन्ता का दौरा किया था। परन्तु रॉयल एशियाटिक सोसायटी के सदस्यों में 1943 ई. में छपी जेम्स फर्ग्युसन की एक अधिकृत रिपोर्ट ने कलाजगत में हलचल मचा दी।

सन् 1844 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने मेजर रॉबर्ट गिल को अजन्ता की अनुकृतियाँ बनाने हेतु लन्दन से इण्डिया भेजा गया। जिन्होंने बडे ही परिश्रम से 12 वर्षों में इन चित्रों की अनुकृतियाँ बनाई, जिसमें से तीस श्रेष्ठ अनुकृतियाँ लन्दन भेजी गई। जो लन्दन के क्रिस्टल पेलेस में प्रदर्शित हुई। किन्तु 1866 ई. के एक अग्निकाण्ड में अधिकांश चित्र नष्ट हो गये। सन् 1872 में ब्रिटिश सरकार के आदेश पर मेजर ग्रिफिथ्स ने पुनः तेल रंग में इनकी अनुकृतियों की। 1909–11 ई. के मध्य लेडी हैरिंघम, कुमारी लार्नर, कुमारी ल्यूक, नन्दलाल बसु, असित कुमार हलदर, वैंकटप्पा और एस.एन. गुप्ता ने पुनः इन चित्रों की अनुकृतियाँ की, जो 1915 ई. में लन्दन में प्रदर्शित व प्रकाशित हुई बाद में ''इण्डिया सोसाइटी'' की सहायता से लेडी हैरिंघम की एक पुस्तक ''अजन्ता फ्रेस्को'' प्रकाशित हुई। निजाम सरकार, अवध नरेश, भारत सरकार और यूनेस्कों ने भी अजन्ता पर अनेक चित्रावलियाँ और ग्रंथ प्रकाशित किये।

इनके अतिरिक्त कई भारतीय लेखकों–चित्रकारों ने इन पर उल्लेखनीय काम किया।

अजन्ता की चित्रण विधि

चित्रण हेतु पत्थर की खुरदरी दीवारों पर खड़िया, चूना, गोबर, स्थानीय मिट्टी व पत्थर के छोटे–छोटे कणों को अलसी के पानी में कई दिनों तक भिगोकर चट्टानों पर उनका लगभग एक इन्च का मोटा प्लास्तर कर, समतल दीवार तैयार की जाती थी। कभी–कभी छत के प्लास्तर में धान की भूसी भी मिलाई जाती थी। उन सभी प्लास्तरों पर एक पतली सी परत सफेदे की चढाई जाती थी, जो अक्सर चूना या स्थानीय खड़िया हुआ करती थी। फिर उसे ओपणी से घुटाई कर चित्रण योग्य धरातल तैयार किया जाता था।

ई. वी. हेवेल का मत है कि अजन्ता के चित्रों में अत्यधिक प्रकाश दर्शाने के लिए सामान्यतः टेम्परा रंग से चित्रण किया जाता था। लेडी हैरिंघम का मत है कि चित्र संयोजन का विवरण लाल रंग के रेखांकन के बाद तीन पतली रंगों की परतों से रंगों की ताने लगाई जाती थी। फिर उनके उपरान्त चित्रों की बाह्य रेखाएँ लाल–हिरौंजी मिले काले रंग से खींच दी जाती थी।

स्थानीय खनिज व वनस्पतीय रंग इन चित्रों के काम में लिये गये हैं। रंग लगाने के बाद काले व लाल मिला भूरे रंग से आकार की सीमा रेखाएँ बना दी जाती थी। आवश्यकतानुसार छाया–प्रकाश व कहीं–कहीं विरोधी रंगों के प्रयोग द्वारा आकृतियों को निश्चित रूप दिया जाता था।

अजन्ता की गुफाओं की गणना

अजन्ता में कुल 30 गुफाएँ हैं। पहले 29 गुफाएँ ही गिनती की श्रेणी में थीं, लेकिन कुछ वर्ष पूर्व एक और गुफा का पता चला और इसे 15 ए संख्याकरण दिया गया। कारण कि यह गुफा 14 और 15 के मध्य अवस्थित है। अध्ययन की सुविधा के लिए इन गुफाओं की गिनती पूर्व से पश्चिम की ओर की गई है।

यहाँ चैत्य और विहार दोनों ही गुफाएँ हैं। इनमें नवीं, दसवीं, उन्नीसवीं, छब्बीसवीं और तीसवीं गुफाएँ चैत्य गुफाएँ हैं, जहाँ पूजा उपासना होती थी। शेष सभी गुफाएँ विहार हैं, जो बौद्ध भिक्षुओं व साधुओं के रहने का स्थान थीं। चैत्य की अपेक्षा विहार में चित्रण की भरमार है।

पहाड़ी की एक ओर बनी करीब सौ सिढियों को चढकर गुफा संख्या एक तक पहुँचा जा सकता है। सन् 1879 ई. में अजन्ता की सोलह गुफाओं में चित्र शेष थे। पहली, दूसरी, चौथी, सातवीं, नवीं, दसवीं, ग्यारहवीं, पन्द्रहवीं, सोलहवीं, सत्रहवीं, अठारवीं, उन्नीसवीं, बीसवीं, इक्कीसवीं, बाइसवीं और छब्बीसवीं गुफाएँ चित्रों से पूर्ण अलंकृत थीं। किन्तु सन् 1910 ई. तक विशेष महत्त्वपूर्ण सुरक्षित चित्र पहली, दूसरी, नवीं, दसवीं, ग्यारहवीं,

सोलहवीं, सत्रहवीं, उन्नीसवीं और इक्कीसवीं में ही रह गये थे। इन सभी में नवीं और सत्रहवीं गुफा में सर्वाधिक चित्र शेष रहे हैं। गुफा संख्या तीसरी, चौदहवीं, तेवीसवीं, चौवीसवीं, सत्ताइसवीं, अठ्ठाइसवीं और उन्तीसवीं ये सात गुफाएँ तो खनन की दृष्टि से आज भी अधूरी हैं।

गुफाओं का कालक्रम

बौद्ध भिक्षुओं ने एक से तीस तक की गुफाओं का खनन व चित्रण का काम क्रमशः नहीं किया। जहाँ और जब सबसे अधिक उपयुक्त स्थान लगा वहीं से गुफा के निर्माण का काम शुरू कर दिया और फिर दायें–बायें अन्य गुफा के लिए बढते रहे। कभी–कभी तो स्थान छोड–छोडकर भी नई गुफाओं का निर्माण किया, फिर शेष बची चट्टानों में आवश्यकतानुसार वहाँ पुनः गुफा का निर्माण शुरू कर दिया।

चित्र भी उसी समय के हैं, जब गुफाएँ निर्मित की गयी थी इस प्रकार अजन्ता की गुफाओं के निर्माण में निम्न कालक्रम से सभी विद्वान एक मत हैं।

अजन्ता की गुफाएँ 200 ई. पूर्व से 625 ई. तक बनती रही थीं।

सर जेम्स फर्ग्युसन के अनुसार गुफा संख्या एक और दो सबसे बाद की है। जिससे सभी विद्वान सहमत हैं।

1. गुफा संख्या 9 व 10 – 200 ई. पूर्व से 300 ई. तक।
2. गुफा संख्या 8–9 व 10 के स्तम्भ – 350 ई. से 400 ई. तक।
3. गुफा संख्या 16 व 17 – 4थीं व 5वीं ई. तक (परन्तु अब यहाँ चित्र शेष नहीं है)।
4. गुफा संख्या 1 व 2 – 500 ई. से 6ठीं – ई. तक।

बुद्ध शाक्यमुनि का आविर्भाव छठी शती ई.पूर्व में हुआ था। महायान सम्प्रदाय के पश्चात् बौद्ध धर्म में मूर्ति की कल्पना हुई। बुद्ध, बोधिसत्व और उनकी जातक कथाओं ने अजन्ता के चित्रण मे बहुत प्रेरणा दी।

अजन्ता में बुद्ध, बोधिसत्व, जातक कथाओं और बुद्ध को लेकर अनेक प्रतीकों व विभिन्न अलंकरणों का चित्रण हुआ, फलतः वाचस्पति गैरोला ने अजन्ता के चित्रों को तीन श्रेणी में विभाजित किये हैं।

प्रथम श्रेणी – आलंकारिक चित्र

जिनमें विविध आलेखन है। जैसे विभिन्न फूल–पत्तियां, पुष्पों की बेलें, कमलदल, लताएं, वृक्ष, पशु–पक्षी, अलौकिक पशु, राक्षस, किन्नर, नाग, गरूड, यक्ष, गन्धर्व, अप्सराऐं आदि चित्रण हैं।

द्वितीय श्रेणी – रूप भेदिक

बुद्ध के विभिन्न स्वरूप – पद्मपाणी, व्रजपाणी, बोधिसत्व, अवलौकितेश्वर, बुद्ध के विभिन्न घटना चित्र, जिनमें माया देवी का स्वप्न, महाभिनिष्क्रमण, जीवन के चार सत्य सम्बोधिनिर्वाण और बुद्ध के जीवन की अलौकिक घटनाएँ, विवाह, गृहत्याग आदि।

तृतीय श्रेणी – जातक कथाएँ

विभिन्न जातक कथाएँ : जिनमें भगवान बुद्ध के जीवन से संबद्ध सर्वविदित घटनाओं का कथा रूप में निरूपण किया गया है। जैसे – ब्राम्हण जातक, शिवि जातक, छःदन्त जातक, वेस्सान्तर जातक, हस्ति जातक, महाकपि जातक, मुखपंख रूरूजातक, मृग जातक आदि कई जातक कथाओं का चित्रण हुआ है।

अध्ययन की दृष्टि से अजन्ता की गुफा संख्या 9–10, 16–17 और 1–2 के कुछ चित्रों के अध्ययन, वह भी प्रमुख चित्रों का विस्तृत अध्ययन यहाँ पर्याप्त रहेगा।

गुफा संख्या 9

यह एक चैत्य गुफा है, जो ईसा पूर्व प्रथम–द्वितीय शताब्दी में चित्रित की गयी है। बौद्ध भिक्षुओं के उपासना स्थल के रूप में तैयारी की गयी है। गुफा तीन भागों में विभक्त है, पिछला भाग अण्डाकार है, जहाँ एक स्तूप भी है। स्तूप का आकार भी अर्द्धवृत्ताकार है। इस गुफा का एक प्रसिद्ध चित्र स्तूप पूजा का है। चित्र में लगभग सोलह व्यक्तियों का एक समूह स्तूप की ओर जाते हुए दर्शाया है। अर्धवृत्ताकार स्तूप, तोरणद्वार, शहनाई, झांझ, मृदंग और वाद्ययंत्रवादक चित्रित हैं। पुरूषों के पहनावें समसामयिक कार्ला के चैत्य की मूर्तियों से मिलते–जुलते हैं। साफे में लट्टू जैसा मुरेठा निकला हुआ है। आकृतियाँ भारी तथा चौखुटे चेहरे वाली है।

एक अन्य चित्र नागपुरूष का है। पर्वत कन्दरा पर दो नागपुरूष वृक्ष की छांव में बैठे हैं। नागराज को पूजा में आये लोगों की बाते सुनते दर्शाया गया है। उड़ती हुई अप्सराऐं चित्र में गति का बोध कराती है।

इन चित्रों में तीन–चार सीमित रंगों का ही प्रयोग हुआ है। जिनमें काला, पीला, हरा और हिरौंजी है। सीमित वर्ण विधान और सभी आकृतियां एक जैसी भावविहीन है। आँखें भावशून्य है। चित्रों की बाह्य रेखाएं काले रंग की बनी है। वृक्षों, फलों–फूलों व पशु–पक्षियों का चित्रण रीतिबद्ध ढंग से हुआ है।

गुफा संख्या 10

समय की दृष्टि से यह अजन्ता की पहली गुफा के साथ की ही है। यह भी एक चैत्य गुफा है जहाँ चित्रों की न्यूनता है जो

पिच्चानवे फुट गहरी है और ऊंचाई में छत्तीस फुट है, तथा पीछे से घोड़े की नाल की तरह है। अन्दर एक स्तूप है। जिसकी छत भी चपटी न होकर गजपृष्ठ के जैसी है। इसी प्रकार गुफा संख्या 19 में भी एक चैत्य है।

इस गुफा के तीन प्रमुख चित्र हैं छःदन्तजातक बोधिवृक्ष की पूजा के लिए जाता राजा का जुलूस और सामजातक का है। बायीं भित्ति पर चित्रित जुलूस में एक सुन्दरी नागराज के ऊपर छत्र लिए चल रही है। राजा के साथ और भी कई नारियाँ चल रही है। आगे चल कर स्तूपपूजा दिखाई गई है। एक दूसरे स्थान पर जुलूस को तोरण द्वार के नीचे से जाता हुआ दिखाया गया है। चित्र में भीड़–भाड़ का अच्छा आभास होता है।

चित्र – 3 चैत्य – गुफा संख्या 19 के अन्दर का चैत्य।

चित्र 4 – स्तूप पूजा जाता जुलूस।

छःदन्तजातक

10वीं गुफा के चित्रण में हाथियों का चित्रण अजन्ता के चित्रकारों का प्रिय विषय रहा है। क्योंकि यहाँ दो बार और गुफा संख्या 17 में भी एक बार यह विषय चित्रित हुआ है। चित्रकारों ने घने जंगल में हाथियों की विभिन्न मुद्राओं में जलक्रीडा अंकित की है। पास ही वन में नाना प्रकार के वृक्ष हैं, जिनमें बरगद, गूलर, आम और अन्य विविध वृक्ष चित्रित है। छःदन्त हस्ति (जिसके छः दाँत है)। हस्ति परिवार कमलताल में जलक्रीडा करते हुए दिखाया गया है। हस्तिराज अपनी हथिनी रानियों को सूंड से कमल पुष्प दे रहा है। कहीं पर हस्ति स्वयं को अजगर से बचाते हुए चित्रित किया है। यहाँ हाथियों की विभिन्न मुद्राएँ बडी ही रूचिकर अंकित है। हाथियों की स्वाभाविक क्रियाएँ केवल यथार्थवादी ही नहीं वरन हाथियों की विभिन्न मुद्राओं में कल्पनाशक्ति भी सुन्दर है। कथानक यह है कि एक बार बोधिसत्व का जन्म हाथी के रूप में हुआ था। तब उनका शरीर श्वेत रंग का था और मुख व पैर लाल रंग के थे। उनके छः दाँत थे। इन विभूतियों के फलस्वरूप वे हाथियों के राजा हो गये। इस हस्तिराज के दो रानियाँ थी – चुल्ल सुभद्रा और महा सुभद्रा। एक बार बोधिसत्व हाथी ने जल में नहाते एक कमल महा सुभद्रा को दे दिया तो चुल्ल सुभद्रा यह देख नाराज हो गयी। इसी तरह एक समय अन्य घटना में बोधिसत्व दोनों रानियों के साथ वन में विचरण कर रहे थे, तब उन्होंने एक शाल वृक्ष को हिलाया तो महा सुभद्रा पर फूल व हरी पत्तियाँ गिरी, परन्तु चुल्ल सुभद्रा पर सुखी पत्तियाँ और पेड पर की चीटियाँ गिरी। चुल्ल सुभद्रा वहीं से बनारस के राजा की पत्नी होकर इस हस्तिराज के छःदन्तों को शिकारियों से मँगवाकर बदला लेने की ठान ली थी। अगले जन्म में वे बनारस के राजा की पत्नी हुई और बिमारी के बहाने इस छःदन्त हस्ति के दाँत मँगवाती है।

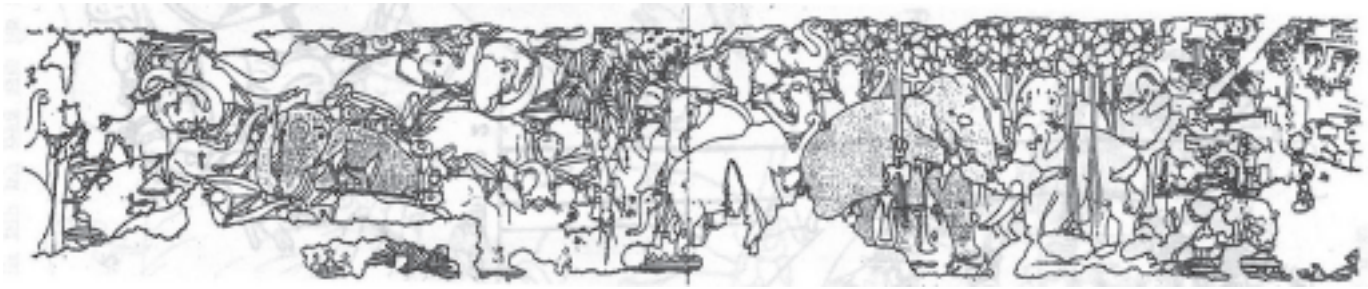

चित्र 5 – वन में छःदन्त हाथी और उसका परिवार।

चित्र 6 – राजमहल में रानी सुभद्रा और राजपरिवार।

दूसरी ओर सोमोत्तर नाम व्याध जंगल में प्रवेश करता है और छःदन्तहस्ति बोधिसत्व स्वयं उनके आगे समर्पित हो जाते हैं। अन्तिम दृश्य में व्याध को काशीराज के अन्तःपुर में पहुँचाते दर्शाया है। काशिराज की रानी सुभद्रा पूर्व जन्म में छःदन्त हाथी की हथिनी थी। अतः ईष्यावश वह छःदन्त गजराज के दाँतों को काटकर लाने की आज्ञा देती है। सोमोत्तर दाँत निकाल नहीं पाता है तो छःदन्त हस्ति स्वयं ही अपने दाँत निकाल कर दे देते हैं। कटे दाँतो को कहारों के कन्धों पर बहगियों पर लदा देखकर सुभद्रा मूर्छित हो जाती, और रानी का अभिमान नष्ट हो जाता है। राजा, रानी को सहारा देता है। चार दासियां जो पीछे खडी है, अस्त–व्यस्त घबराती हुई है व एक दासी सहारा देने के लिए उत्सुक प्रतीत होती है।

अन्य प्रसिद्ध चित्र सामजातक (श्यामजातक) का है। जिसकी कहानी श्रवण कुमार वाली कहानी से मिलती–जुलती है। इस चित्र में अन्धे माता–पिता की सेवा करने वाले एक नीलवर्ण के युवक श्याम को काशीराज द्वारा तीर से मार देने की कथा का चित्रण है। किन्तु यहाँ वृद्ध माता–पिता के विलाप को सुनकर एक देवी ने मृत श्याम को पुनर्जीवित कर दिया है। कन्धे पर घड़ा लिये श्याम की आकृति अति सुन्दर है और उसके माता–पिता की आकृति में अन्तःवेदना है। पृष्ठभूमि में भागते हुए हरिणों का अंकन बड़ा ही रोचक है। पहले दृश्य में बनारस के राजा को बाण चलाते हुए दर्शाया गया है। उसके दाहिनी ओर घोडा खड़ा है। राजा के साथ के लोग धनुष, भाले व ढाल लिए हुए हैं। दूसरे दृश्य में वृद्ध–वृद्धा दिखाये गये हैं। वृद्ध के मूंछे व दाढ़ी है और वह खड़ा है। वृद्ध के मुख पर शोक भाव है। राजा बैठा हुआ क्षमा याचना कर रहा है। राजा का चेहरा नष्ट हो चुका है।

संयोजन की दृष्टि से चित्र में परिपक्वता, भाव, सबल रेखांकन, रंग और लालित्व का यह चित्र चित्रोपम तत्वों के मेल का सुन्दर उदाहरण है।

गुफा संख्या 16

यह गुफा सभी गुफाओं के मध्य में स्थित है। यहाँ से सप्त प्रपात भी दिखाई देता है। जो बाघोरा नदी का उद्‌गम स्थल है। प्रवेशद्वार पर दोनों ओर हाथी उत्कीर्ण हैं। फिर बाँयी ओर सीढियाँ चढकर सामने दीवार पर नागराज की सिंहासनारूढ़ प्रतिमा है।

यह विहार गुफा अजन्ता की सुन्दरतम गुफाओं में से है, जहाँ पर सर्वाधिक चित्र है। यहाँ की बायीं दीवार पर प्राप्त अभिलेख के अनुसार इस गुफा का निर्माण 475 ई. से 500 ई. के मध्य ''वाकाटक'' राजा हरिसेन के मंत्री ''वराहदेव'' द्वारा निर्माण करवा तपोधन–तापसों के निवास हेतु दान स्वरूप दिया था। वाकाटकों ने नागों और गुप्तों से पारिवारिक संबंध स्थापित किये थे। जिसका भी यहाँ वर्णन है।

वाकाटक शासक तथा उनके कुछ मंत्री बौद्धधर्म के अच्छे संरक्षक थे। इस काल में भगवान बुद्ध की प्रतिमा के लक्षणों का भी पूर्ण विकास हो चुका था।

इस विहार में अभी भी बुद्ध के जीवन और जातक कथाओं से संबंधित चित्र कुछ अच्छी स्थिति में मिलते हैं। जिनमें बुद्ध के जीवन संबंधी घटनाओं में ''मायादेवी का स्वप्न'', ''धर्मोपदेश'', ''नन्द की दीक्षा'' आदि तथा अन्य जातकों में ''हस्ति जातक'' ''महा उमग्ग जातक'', ''नन्दकुमार का वैराग्य'' एवं विभिन्न आलेखन चित्रित है। हस्तिजातक, महाहंस जातक, महाकपिजातक, सिंहलावदान की कथा, मृगजातक, यहाँ की प्रमुख चित्रित जातक कथाऐं हैं।

''सौन्दरानन्द'' अश्वघोष के इस नाटक के कथानक का चित्रण यहाँ खूब हुआ। बुद्ध अनुज नन्द और उसकी पत्नी सुन्दरी के इस कथानक को लेकर गुफा संख्या सोलह में बड़ा ही सुन्दर चित्रण हुआ है। कहा जाता है कि संघ में नन्द बहुत दुःखी रहता था। बुद्ध को जब पता चला कि अपनी नवविवाहिता पत्नी के प्रति आसक्ति के कारण नन्द उदास रहता है तो बुद्ध उसे स्वर्ग ले गये। वहाँ अप्ससराओं को देखने के उपरान्त नन्द का भ्रम जाता रहा। सौन्दरानन्द चित्रण में सबसे पहले श्वेत परिधान में भिक्षा पात्र लिए हुए, बुद्ध दिखाए गये हैं। उनका सिर कुछ झुका हुआ है और आँखों से करूणा टपक रही है। पास ही एक घोड़ा सईस और नौकर खड़े हैं। अन्य दृश्य में राहुल और

यशोधरा खड़े हैं, जो बुद्ध के पुनः लौटने की प्रतीक्षा में है। मरणासन्न राजकुमारी का चित्रण भी सौन्दरानन्द कथा का एक भाग है। इस गुफा में बीस स्तम्भ हैं एवं मण्डप के तीनों ओर साधुओं के निवास हेतु चौदह कोटड़ियाँ हैं। छत की खुदाई साँची से साम्यता रखती हुई है तथा उच्चकोटि के कलात्मक दृश्य भी यहाँ देखने को मिलते हैं।

मरणासन्न राजकुमारी

इस गुफा में एक अन्य उत्कृष्ट चित्र ''मरणासन्न राजकुमारी'' के नाम से विख्यात है। इस चित्र के पहले दृश्य में दो व्यक्ति खड़े हैं। उनमें एक के हाथ में मुकुट है, जिसकी मुद्रा शोक में लिप्त है। दूसरा व्यक्ति राजकुमारी से कुछ कह रहा है। यह चित्र मरणासन्न राजकुमारी का ना होकर विरहासन्न राजकुमारी का है, जो नन्द की पत्नी सुन्दरी है और वह राजमुकुट नन्द का मुकुट है, जिसे देखकर सुन्दरी समझ लेती है कि अब जीवन पर्यन्त विरह के सिवा कुछ नहीं है। जिसमें करूणा भाव की श्रेष्ठता है। चित्र में एक उच्च कुलीन महिला ऊँचे आसन पर सिर लटकाये, अधखुले नेत्रों और शिथिल अंगों से अधलेटी हुए अंकित है, उसके पीछे एक दासी है और एक उच्च कुलीन महिला ऊँचे आसन पर सिरलटकायें, अधखुले नेत्रों और शिथिल अंगों से अधलेटी हुए अंकित है। उसके सहारा देकर उसे उठा रही है। अन्य दासी अपना हाथ उसकी छाती पर रख कर मानो श्वांस परीक्षण कर रही है। उसकी मुखमुद्रा अशान्त और गम्भीर एवं चेहरे पर अनहोनी का भाव प्रदर्शित है। एक अन्य दासी पंखा डुला रही है। नीचे की ओर कुछ पारिवारिक सदस्य बैठे हैं, जो राजकुमारी के जीवन के प्रति बड़ी आशाओं से देख रहे हैं। यहीं एक स्त्री अपना मुहँ छिपाकर रुदन कर रही है। पास ही एक सेवक और एक परिचारिका खड़ी है।

यह चित्र बुद्ध के भाई नन्द की पत्नि ''सुन्दरी'' का है, कि नन्द बुद्ध भिक्षु बन जाने पर अपना राज मुकुट एक सेवक के साथ सुन्दरी के पास इस अभिप्राय में भेजता है कि वह भिक्षु बन गया है। सफेद टोपी लगाये सेवक मुकुट लिए द्वार पर खड़ा है। सामने की ओर दो स्त्रियां हैं, जिसमें से एक फारसी टोपी पहने है। इस प्रकार सम्पूर्ण चित्र करुणा की मार्मिक अभिव्यक्ति है।

इस चित्र के लिए ग्रिफिथ्स महोदय ने लिखा है कि ''फ्लोरेन्स का चित्रकार इससे अच्छा रेखांकन कर सकता था और वेनिस का चित्रकार इससे अच्छे रंग लगा सकता था, किन्तु दोनों इससे अधिक सुन्दर भाव अभिव्यक्त नही कर सकते थे।''

सोलहवीं गुफा में अन्य ढेर सारे चित्र है, जिनमें बुद्ध वैराग्य का कारण चार दृश्यों (वृद्ध पुरुष, वृषभताडन्त्र, सन्यासी और शव) का चित्र है। ''अजातशत्रु और बुद्ध की भेट'', ''बुद्ध की पाठशाला'' ''बुद्ध का धनुर्विद्याभ्यास'', ''बुद्ध के सम्मोहन'', एक बहुत ही सुन्दर चित्र बुद्ध के ''गृहत्याग'' का है। ''माया देवी के स्वप्न'' दृश्य के ऊपर 'बुद्ध जन्म' का चित्रण है। इसमें बुद्ध जन्म लेते ही सात पग चलने वाली कथा को सात कमल पुष्पों के प्रतीक में चित्रित किया हैं। ''सुजाता की खीर'' ''राजगृह की गलियों में भिक्षापात्र लिये बुद्ध'' ''आषाढ़ में गौतम की प्रथम तपस्या'' आदि अनेक कथात्मक चित्र यहाँ है।

जातक कथाओं में यहाँ '' हस्तिजातक'' और महाउमग्गजातक की कथाएँ चित्रित है।

हस्तिजातक का चित्रण बहुत ही मनोहारी है। इसमें राजा द्वारा निर्वासित सात सौ भूखे–प्यासे लोगों के शोरगुल के कारण बोधिसत्व स्वयं उनके पास आते हैं, जो एक बहुत शक्तिशाली हाथी थे। स्वयं को भूखों की भूख मिटानें के लिए पहाड़ी से गिरा कर मार देते हैं और मृत हाथी से भूखे अपनी भूख बुझा लेते हैं।

इस चित्र के पहले दृश्य में बोधिसत्व विशाल हाथी, सभी को पहाड़ी के नीचे जाने को कहते हैं, फिर दूसरे दृश्य में बोधिसत्व हाथी मृत अवस्था में है। दो पथिक छुरियों से हाथी के माँस को काटते हुए दर्शाया है। अन्य पथिक को माँस पकाते हुए दर्शाया है। आगे सभी लोगों को जाते हुए चित्रित किया गया है।

यहाँ उमग्ग जातक में ''महोसध नाम के बालक का अपना–अपना पुत्र होने का अधिकार दो स्त्रियाँ एक साथ व्यक्त करती है, तो बुद्ध इसके समाधान हेतु जब बच्चे के दो टुकड़े करने व एक–एक टुकड़ा दोनों स्त्रियों को देने का प्रस्ताव रखते है तो, असली माँ बच्चे पर अपना अधिकार छोडने को तैयार हो गयी। इस दृश्य का उमग्ग जातक में चित्रण है।

गुफा संख्या 17

यह चैत्य गुफा सबसे सुरक्षित रही है, इस गुफा का निर्माण वाकाटक वंश के राजा हरिसेन के एक श्रद्धालु मण्डलाधिपति ने करवाया था। इस गुफा में सोलहवीं की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण चित्र हैं, जो सुरक्षित भी हैं। जिनमें जातक कथाओं की बहुलता है। डॉ. वर्गेस ने इस गुफा में इक्कीस सुरक्षित अच्छे दृश्यों का जिक्र किया है।

इस गुफा के प्रसिद्ध दृश्य, छःदन्त जातक, हस्ति जातक, मातृपोषक जातक, व्यग्रोघमृगजातक, सामजातक, शिविजातक, वेस्सान्तर जातक, महाहँस जातक महिप जातक, सिंहल अवदान, मच्छजातक, महासुतसोम जातक, आठ पापों से बचने के लिए बुद्ध का उपदेश, नीलगिरी प्रकरण, जीवन कूप मैत्रेय और मानुषी बुद्ध, श्रावस्ती का चमत्कार, बुद्ध का संघ को उपदेश

यहाँ के प्रसिद्ध चित्र हैं। इस गुफा के स्तम्भों और छतों पर गन्धर्व, अप्सराएं, कमलदल और सुन्दर आलेखन भी खूब है।

बुद्ध का संघ को उपदेश

इस गुफा में एक अद्‌भुत चित्र ''बुद्ध का संघ को उपदेश'' का हैं। जो एक सिंहासन पर प्रलम्बपाद मुद्रा में बैठे हुए हैं। चित्र में बुद्ध को तुषित स्वर्ग में अपने अन्तिम जन्म हेतु अवतरित होते चित्रांकित किया है। इसमें बहुत सी आकृतियाँ और बुद्ध की मुखमुद्रा नष्ट हो चुकी है, परन्तु उनके अनुयायियों की आकृतियों को कम ही क्षति पहुँची है। सभी आकृतियों में एकाग्रचित्तता, भक्ति और दिव्यभाव प्रचुरता से अंकित है।

चित्र 7 – बुद्ध का संघ को उपदेश।

इनके अतिरिक्त हस्तिजातक, महा उमग्ग जातक, नन्द का भिक्षु होना, श्रावस्ती का चमत्कार, हाथियों का जुलूस, बुद्ध का संघ को उपदेश, बुद्ध जीवन की घटनाएं, मायादेवी का स्वप्न, सुजाता की कहानी आदि चित्रित है।

राहुल समर्पण

राहुल समर्पण यहाँ का एक प्रसिद्ध चित्र है। गुफा का बायीं दीवार पर यह प्रसिद्ध चित्र अंकित है। संयोजन और कथानक दोनों ही दृष्टि से इसका बहुत महत्त्व है। बुद्धत्व प्राप्ति के बाद गौतम जब पहली बार कपिलवस्तु आते है, तो भिक्षा के लिए यशोधरा के सम्मुख पहुँच जाते हैं। यशोधरा अपने पति को क्या दे? जब अपना सर्वस्व पति विश्वगुरू बुद्ध स्वयं भिक्षु बनकर सामने उपस्थित हो। तो यशोधरा अपना सर्वस्व एकमात्र निधि पुत्र ''राहुल'' बुद्ध को समर्पित कर देती है। चित्रकार ने इस चित्र में राहुल के मुख पर अबोधता व आध्यात्मिकता के भाव बहुत ही सुन्दरता से चित्रित किये हैं। राहुल और यशोधरा को सामान्य मानवीय आकार और बुद्ध का वृहद् आकार में बनाकर उनके प्रभुत्व को प्रदर्शित किया गया है। यहाँ विश्व संरक्षक के रूप में बुद्ध को विशाल रूप में बनाया है। इस प्रकार संयोजन के सिद्धान्तों की दृष्टि से भी यह एक महत्त्वपूर्ण चित्र है।

चित्र 8 – राहुल समर्पण।

वेस्सान्तर जातक

वेस्सान्तर जातक की कथा सत्रहवीं गुफा में बडे ही रोचक ढंग से चित्रित की है। बोधिसत्व एक बार बेस्सान्तर के रूप में पैदा हुए थे। दान में उनकी बराबरी करना असम्भव था। वह मना करना जानते ही नहीं थे। लोगों ने उनकी दानशीलता की खूब परीक्षा ली। एक बार राजकुमार वेस्सान्तर को ही भिक्षा में माँग लिया जाता है। वेस्सान्तर अपनी पत्नी माद्री को राज्य से अपने निष्कासन का दुखद सन्देश सुना रहे हैं। चित्र में राजा आसन पर भावपूर्ण मुद्रा में बैठे है। सामने एक असुन्दर भिक्षु कुछ भिक्षा याचना कर रहा है। उसकी याचना में सम्पूर्ण राजपरिवार आश्चर्यचकित है। राजा के पीछे बेठी स्त्रियाँ चिन्तित है। राजा की दानशीलता का यश सुनकर भिक्षु राजकुमार को

यज्ञ में बलि के लिए भिक्षा में चाहता है, राजकुमार भी तैयार है। पीछे एक सेवक राजा के संकल्प लेने हेतु जलपात्र लाया है।

अगले दृश्य में राजकुमार विदा लेने को तत्पर दोनों हाथ जोडे बैठे हैं। माँ, दासी व चार सेवक आदि दुखीः मुद्रा में अंकित है। इसके अगले दृश्य में पुत्रों के साथ नगर से जाते कुमार अंकित है, जिसकी पृष्ठभूमि में बाजार का दृश्य चित्रित है।

चित्र 9 – वेस्सान्तर जातक।

अगले दृश्य में कुमार भिक्षुओं को अपने रथ और अश्व को देकर पैदल जाते हुए चित्रित है। उसके आगे जुजुक ब्राम्हण कुमार के दोनों बालकों को भिक्षा में माँगते हुए दर्शाया गया है। कथा के अन्त में कुमार वेस्सानार को वापिस लौटते हुए चित्रित किया गया है। रानी पारदर्शी चोली और पारदर्शी ओढनी पहने है। चित्र में हस्तमुद्राएँ और भाव–भंगिमाएँ प्रभावी है। रेखाएँ सबल और प्रवाहमयी है विशेषरूप से भिक्षुओं के कुरूप चेहरें, गंजे सिर, मुंह से बाहर निकलते दाँत और भारी ठुड्डी आदि का सूक्ष्मता से चित्रण हुआ है।

इस गुफा के बाहर बरामदे में उड़ते हुए गन्धर्व–अप्सराएं तथा इन्द्र का चित्रण है। एक और सुरापान का दृश्य है। दाँई ओर आकाश में उड़ती हुई अप्सराएं चित्रित है, जिनके अधिकांश रंग उड गये है। यहाँ अर्धवृत्तों और फुल्ले का आलेखन बना है। जो बरामदे को अलंकृत रूप देते हैं।

गुफा संख्या 1

गुफा संख्या एक और दो, समय की दृष्टि से अजन्ता की सबसे बाद की बनी गुफाएँ हैं। जो 500 ई. से 625 ई. के बीच बनी है। इसके कुछ चित्र वाकाटक काल के अन्तिम वर्षों में और कुछ चित्र चालुक्य राजाओं के समय के बने हैं। चालुक्य काल में अजन्ता के चित्रों में पतन प्रारम्भ हो चुका था। बुद्ध को राजसी वैभव के साथ अलंकृत चित्रित करने लगे और जातक कथाओं के आध्यात्मभाव ने सम्राटों के वैभवपूर्ण जीवन संबंधी चित्रों का स्थान ले लिया था।

गुफा संख्या एक विहार गुफा है, चौसठ खम्भो की सहायता से चौसठ फुट गहरी है। बौद्ध भिक्षुओं के निवास हेतु इसके अन्दर 14 कोठरियाँ हैं जिनमें भिक्षु रहते थे।

इसके खम्भों पर सुन्दर खुदाई की गई है तथा गर्भगृह में बीस फुट चौडे चबूतरे पर ''भगवान बुद्ध की धर्मचक्रप्रवर्तक मुद्रा'' में एक विशाल प्रतिमा बनी है, जिसके चारों ओर सृष्टि के तमाम जीवों को संयोजित किया गया है।

यहाँ के प्रमुख चित्रों में ''पद्मपाणि अवलोकितेश्वर'', ''मारविजय'', ''नागराज की सभा'', ''ब्रजपाणि'', ''शिविजातक'', ''श्रावस्ती का चमत्कार'', ''महाजन का वैराग्य'', ''नन्द तथा सुन्दरी का दृश्य'' ''चालुक्य राजा पुलकेशियन द्वितीय के दरबार में इरानी राजदूत'' ''नृत्यवादन'', ''चम्पेय जातक'', ''बैलों की लडाई'' तथा कई अलंकरण जिनमें कमल पुष्प, हँस, किन्नर–युगल आदि को अलंकरण की दृष्टि से ही बनाये गये हैं।

बोधिसत्व ''पद्मपाणि अवलोकितेश्वर'' और ''मार विजय'' गुफा संख्या एक के सर्वाधिक प्रसिद्ध चित्र है।

पद्मपाणि अवलोकितेश्वर

गुप्त कालीन विष्णु का प्रभाव लिये यह आकृति बुद्ध की असीम विश्व करूणा को व्यक्त करती है। उनकी भाव मग्न आँखे नीचे हाथ में लिए कमल पुष्प का अवलोकन कर रही है। चित्र में घुटनों के नीचे का भाग चित्रित नहीं है। एक उच्च स्तरीय शास्त्रीय शैली का यह चित्र कुछ ही रेखाओं द्वारा कंधों और बाहुओं के मनोहारी चित्रण से परिपूर्ण है। आकार सौन्दर्य और रेखीय प्रभाव अद्भुत है। चित्रकार का तूलिका पर अधिकार है, उसने केवल एक ही रेखा से दोनों भोहें बना दी है। रेखा में प्रवाह और बल है।

गले में मोतियों की माला और सिर पर मुकुट गुप्तकालीन बारीकी से अलंकृत है। लावण्य से परिपूर्ण भगवान बुद्ध की यह अलौकिक त्रिभंग मुद्रा 5′ 9″ x 2′ 5″ की साइज में आमदकद से भी बड़ी है। सजीवता लिए हुए इस चित्र में गति का अद्भुत प्रभाव है।

चित्र 10 – पद्मपाणि अवलोकितेश्वर।

चित्र की पृष्ठभूमि में कई आकृतियाँ चित्रित है जिनमें विभिन्न पशु–पक्षी, नाना पुष्प–लताऐं काल्पनिक देव–किन्नर आदि बोधिसत्व के चारों ओर आनन्दभाव से विचरण कर रहे हैं। निकट ही यशोधरा खड़ी है।

सम्पूर्ण चित्र में देवत्व और दिव्य भाव है, चित्र में कमल के समान माधुर्य है। मुख्य आकृति की सभी सहायक आकृतियाँ इस प्रकार निर्भय है, मानो वे अपने महान संरक्षक से आश्वस्त होने पर सृष्टि में विचरण हेतु निर्द्वन्द्व हो गयी है। धार्मिक और कलात्मक दृष्टि से यह अजन्ता का एक उत्तम चित्र है।

बोद्धिसत्व ''पद्मपाणि'' में गढ़नशीलता का सशक्त प्रभाव है। आकृति में यथार्थवादी परिप्रेक्ष का पालन नहीं है, मगर एक शास्त्रीय आदर्श परिप्रेक्ष्य है। मांसलता की अपेक्षा जीवन्तता पर विशेष बल दिया गया है। बौद्धिसत्व की आकृति एक कुलीन युवा पुरूष में सौम्य व भावयुक्त मुद्रा है। सशक्त पुरूषोचित अंग, स्फीतवक्ष, सुष्ठु ग्रीवा, विशाल ललाट, विशाल नम्र नेत्र, छोटे मगर पुष्ठ ओष्ठ, सरल नासिका किंचितवक्र भूचाप, चुनिन्दा अंलकृत आभूषण और स्कंधों पर फैले केश अलौकिक भाव को व्यक्त करते हैं। इस चित्र में कुछ ही रेखाओं से सौम्य और दिव्य भाव प्रदर्शित कर दिये हैं। इस चित्र को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि बोधिसत्व एक भव्य, आत्मत्याग और विश्व कल्याण की भावना को प्रकट कर रहे हैं।

मारविजय

इस गुफा का अन्य प्रसिद्ध व प्रतिनिधि चित्र मार–विजय का है। कहा जाता है कि भगवान बुद्ध को जब ज्ञान प्राप्त होने वाला था, तब उनकी परीक्षा के रूप में अनेक कष्ट और प्रलोभनों ने उन्हें आ घेरा। इन सभी को ''मार'' (कामदेव) की सेना कहा गया है। इन्होंने भगवान बुद्ध को अनेक प्रकार से विचलित करना चाहा था, परन्तु बुद्ध ने उन्हें निष्प्रभावी कर के अपने ध्येय पर विजय प्राप्त की थी।

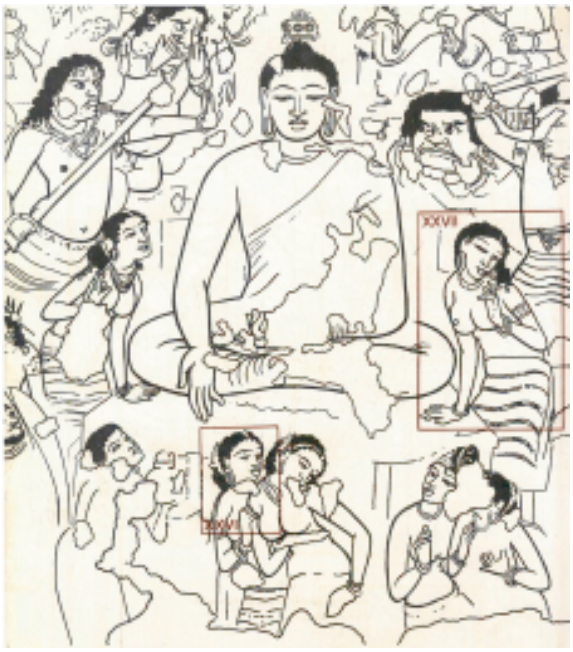

चित्र 11 – मारविजय।

तपस्यालीन बुद्ध पर एक भयानक आकृति तलवार चला रही है। जिस प्रकार कमल पत्र जल में रहने पर भी गीला नहीं होता है ठीक उसी प्रकार बुद्ध इस संसार के मध्य निर्विकार भाव से सांसारिक दुःखों को दूर करने के लिए भूमि को साक्षी बनाकर सुखासन मुद्रा में ध्यानलीन है। पृष्ठभूमि में बोधिवृक्ष चित्रित है। यह एक आध्यात्मिक चित्र है। चित्र संयोजन में केन्द्रीयता का पालन किया है।

''श्रावस्ती का चमत्कार'' में बोद्धिसत्व ने स्वयं को आचार्यों की पंक्ति में सिद्ध करने के लिए श्रावस्ती के राजा प्रसेनजीत की उपस्थिति में कई चमत्कार दिखाए। जिसमें एक चमत्कार में उन्होंने अपने को अगणित बुद्धरूपों में प्रकट किया था।

एक भित्ति पर चम्पेय जातक कथा का चित्रण है। अपनी पूर्वजन्म की इच्छा के कारण बोधिसत्व नागलोक में राजा चम्पेय (नागराज) के रूप में जन्में। धन और ऐश्वर्य से शीघ्र ही उनका

मन भर गया और दूसरों के उपकार के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग करने का निश्चय कर, वे चींटियों के बिल पर जा कर लेट गये, जिससे चींटियाँ उनकी देह का भक्षण करके अपना पेट भर सके। परन्तु एक सपेरा नाग को पकड़ लेता है और अपना जीवनयापन करता है।

दो बैलों का युद्ध तथा अन्य गुफाओं की भाँति इस गुफा की छत पर बड़े ही सुन्दर अलंकरण है, जिनमें लताऐं, पुष्प, पशु–पक्षी आदि विभिन्न आयताकारों में चित्रित है।

गुफा संख्या 2

गुफा संख्या दो के मुख्य चित्रों में ''माया देवी का स्वप्न'', ''बुद्ध जन्म'', ''महाहंस जातक'', ''श्रावस्ती का चमत्कार'', ''पूर्णावादन जातक'', ''विदुर पण्डित जातक'' ''रूरू जातक'', ''क्षान्तिवादी जातक'', ''सर्वनाश'', ''प्राणों की भिक्षा'', ''पूजार्थिनी स्त्रियाँ'', ''सुनहरे मृग का उपदेश'' आदि प्रसिद्ध चित्र हैं।

गुफासंख्या दो भी इसकी पड़ोसी गुफा एक के समकालीन रही है। इसके मुख्य चित्रों में माया देवी का स्वप्न, बुद्धजन्म, महाहँस जातक श्रावस्ती का चमत्कार, पूर्णावादन जातक, विदुर पण्डित की कथा, रुरु जातक, क्षान्तिवादी जातक, सर्वनाश, प्राणों की भीक्षा, पूजार्थिनी स्त्रियाँ, सुनहरे मृग का उपदेश आदि प्रसिद्ध चित्र हैं।

महाहँस जातक गुफा की दाहिनी ओर चित्रित है। जिसमें हँस के रुप में बोधिसत्व बनारस के राजा–रानी को धर्मोपदेश दे रहे है। बोधिसत्व हँस को बनारस की रानी खेमा ने पकड़कर मंगवाया था।

माया देवी का स्वप्न, बुद्ध के जन्म के चित्रों के नीचे माया देवी का शयन कक्ष है, जहाँ एक श्वेत हाथी को माया देवी ने अपने गर्भ में प्रवेश करते देखा था। इस चित्र में कलाकार ने सफेद गोल आकार को प्रताप पुंज के रुप में स्वप्न की कथा का निरुपण किया है। ऊपरी भाग में माया देवी अपने पति शुद्धोधन को स्वप्न की जानकारी दे रही है। अग्रभाग में दो ब्राम्हण ज्योतिषी मानों स्वप्न का विश्लेषण कर रहे हैं। उनके चारों ओर दास–दासियाँ खड़े हैं। जिनकी अंग–भंगिमाएँ भी कुछ निर्णयात्मक पहलू को दर्शाती है। इसी चित्र में स्तम्भ के सहारे एक रमणी खड़ी है जिसका एक पैर बड़ी ही स्वाभाविकता से मुड़कर स्तम्भ से टिका है। गर्दन झुकी हुई अँगुलियों से गिनती में मग्न है। शरीर का ऊपरी भाग स्तम्भ से सटा है। अनुमान है कि यह चित्र बुद्ध की विमाता महाप्रजावती का है, जो गिनती लगा रही है कि बुद्ध जन्म के कितने दिन शेष है। इस चित्र में कलाकार ने भूलवश दोनों पैरों की अँगुलियाँ एक जैसी बना दी है। जिसके कारण यह आकृति दो बायें अगूठें वाली रमणी के नाम से भी प्रसिद्ध है। अगले दृश्य में शालवृक्ष की डाल पकड़े माया देवी खड़ी है। तीन नेत्रवाले इन्द्र ने नवजात शिशु को ग्रहण कर रखा है। उपवन के बाहरी ओर भिखारियों की भीड़ लगी है, जो बुद्ध जन्म पर भीख लेने को आतुर है। इस गुफा में तुषित स्वर्ग में बुद्ध को सिंहासन पर बैठे भव्य रुप में चित्रित किया है। बुद्ध का एक हाथ धर्मचक्र मुद्रा में हैं और प्रभामण्डल से मुखाकृति को देवत्वरुप में दर्शाया गया है। सिंहासन के दोनों ओर सुन्दर अलेखन हैं। पास में खड़ी देवताओं की आकृतियाँ बुद्ध को बड़े सम्मान से देख रही हैं।

चित्र 12 – माया देवी का स्वप्न – बुद्ध जन्मकथा – राजा शुद्धोधन।

सर्वनाश

इस गुफा में एक अन्य चित्र ''सर्वनाश'' के नाम से जाना जाता है। चित्र में एक वृद्ध भिक्षु का बायाँ हाथ ठोड़ी से टिका चिन्ता की मुद्रा में लगा है और दायाँ हाथ इस प्रकार घुमा हुआ है, मानो सब कुछ नष्ट हो गया हो। आँखों से और मुख मुद्रा से भी यही कुछ प्रकट हो रहा है। चित्र अत्यधिक क्षत–विक्षित हो जाने के कारण विषयवस्तु की सही–सही जानकारी नहीं दे पाता है, किन्तु यह निश्चय है कि यह वृद्ध या तो बुद्ध के गृहत्याग पर पश्चाताप कर रहा है या फिर कोई भिक्षु बुद्ध के निर्वाण का सन्देश लाया है।

इस गुफा में, दाहिनी दीवार पर पूर्णक और इरन्दवती की प्रेम कथा भी चित्रित है। उद्यान में झूले पर झूलती हुई राजकुमारी इरन्दवती के शरीर का कौमार्य और लावण्य अति ही सुन्दर है। आँखों का स्वप्निल भाव बखूबी से कलाकारों ने चित्रित किया है। इरन्दवती ने रस्सी को बड़े ही स्वाभाविकता से पकड़ रखा है। रस्सी की गोलाई झूले में गति का आभास दिखाती है।

कटिपर्यन्त अनावृत शरीर में कौमार्य की बड़ी कुशलता से व्यंजना की गई है। संपूर्ण चित्र प्रणय प्रभाव लिए हुए है। दूसरे भाग में लट्ठे के सहारे खड़ी इरन्दवती अपने प्रेमी पूर्णक से लज्जा पूर्वक बातचीत करती दिखायी गयी है। इन सभी का उसकी मुखमुद्रा पर स्पष्ट प्रभाव है।

चित्र 13 – सर्वनाश।

अजन्ता की गुफाओं के चित्रों के ये वर्णन तो उदाहरण है, यहाँ तो सेकड़ों जातक कक्षाएँ चित्रित है, बुद्ध रुप चित्रित है। स्थान–स्थान पर गन्धर्व, यक्ष, किन्नर एवं मानवीय मिथुनों का अंकन है। अनेक पशु–पक्षियों का नाना मुद्राओं में मनोरम चित्रण है। अनेकों प्रकार के वृक्षों उनके पत्र–पुष्पों और फलों को कथा प्रसंगों के अनुरुप, तो कहीं–कहीं स्वतंत्र सौन्दर्य के लिए आलेखनों में चित्रित किये हैं। मानवाकृतियों के विभिन्न रुप, विशेषतः नारीय आकृतियाँ चित्रों में अन्यत्र देखने में दुर्लभ है। इसके अतिरिक्त और भी कई सौन्दर्यमय आकृतियाँ होंगी, सौन्दर्यपूर्ण संयोजन रहे होंगे, जिनके बारे में हम अज्ञात हैं और वे कलामर्मज्ञों व कलारसिकों के अज्ञात में ही नष्ट हो गये।

चित्र 14 – पशु आकृति व अलंकरण।

चित्र 15 – पक्षी–वनस्पति व अलंकरण।

अजन्ता के चित्रों की विशेषताएं

अजन्ता में लगभग आठ सौ वर्षों तक समयानुसार खनन और चित्रण का काम हो रहा था। फलतः यहाँ के चित्रों पर कई

प्रकार का प्रभाव पड़ा। सर्वाधिक सुन्दर चित्रण वाकाटक काल का है और अजन्ता के चित्रों की विशेषता इसी काल में बने चित्रों की विशेषता अजंता के चित्रों की विशेषता स्थापित हुई है। (कहलाती है) अजन्ता अपने चित्रगत कई विशेषताओं के कारण सर्वप्रिय और विश्वप्रसिद्ध है।

रेखा का असाधारण अधिकार, रंग विधान, नारी का लावण्य मय अद्वितीय चित्रण, विषय वैविध्य, त्रिभुवन संपुजन, विभिन्न शारीरिक और हस्त मुद्राएं और भावभंगिमा, भवन, काल्पनिक परिप्रेक्ष्य, केशविन्यास, मुकुट–वस्त्राभूषण, आलेखन आदि का कला सिद्धान्तों से चित्रण, अजन्ता के चित्रों को कई विशेषताओं से भर देता है।

रेखा

भारतीय चित्र रेखा प्रधान है और अजन्ता इसका जीवंत प्रमाण है। अजन्ता की सजीव रेखाऐं चित्रों को चंचल बना देती है, निर्जीव चित्रों को भी वाचाल बना देती है। कलाकार आवश्यकतानुसार अपनी रेखा को कोमल, कठोर, गोलाई, डील–डोल ही रेखाओं से निर्मित नहीं किये बल्कि स्थितिजन्यलघुता, बल उभार, गति जैसे भाव भी रेखाओं द्वारा ही दे दिये हैं।

पर्सी ब्राउन ने पूर्वी देशों की चित्रकला को विशेषतः रेखा की चित्रकला और पाश्चात्य को छाया–प्रकाश का प्रभावी बताया है। अजन्ता की अधिकांश रेखाएं अटूट, प्रवाहमय और भावप्रणव है। हस्तमुद्राओं का चित्रण अजन्ता के इसी ज्ञान का एक प्रमाण है, जिनमें हाथों से ही सारे भाव स्पष्ट करने की क्षमता है।

अजन्ता की रेखाओं में भावाभिव्यक्ति में भी बहुत बड़ा काम किया है। इन रेखाप्रधान चित्रों को गढनशीलता के लिये छाया–प्रकाश की आवश्यकता नहीं है। ''पद्मपाणि अवलोकितेश्वर'' में कुछ ही रेखाओं में सौम्य और दिव्य भाव प्रदर्शित कर दिये हैं। बुद्ध की मुखमुद्रा में दुःख, चिन्तन, सोम्य, शोकभाव एक ही रेखा में अंकित कर दिये हैं।

हाथियों की विभिन्न मुद्राएं, सर्वनाश और दयायाचना जैसे अजन्ता के अधिकांश चित्र रेखाप्रधान ही तो हैं। अजन्ता के चित्रकारों ने भिन्न–भिन्न रूपों, चरित्रों तथा विभिन्न भावों को रेखा के द्वारा सफलता से अभिव्यक्ति किया है। अजन्ता की अधिकांश हस्तमुद्राऐं रेखाप्रधान हैं, जो अभिव्यक्ति को सरल कर देती है। आकृतियों की भंगिमाएँ हो या फिर कुछ अन्य सभी को हस्तमुद्राओं द्वारा कुछ ही रेखाओं में चित्रकारों ने आकृतियों को बोलती हुई बना दी है। इन रेखाओं ने अजन्ता के चित्रों को चिरस्थायी बना दिये हैं।

रंग विधान

वैसे तो समय के प्रभाव ने अजन्ता के रंगों को भी धूमिल किया है, फिर भी अधिकांश स्थानों पर रंगों में अपना ओज मिलता है। रंगों का सौष्ठव, आभा और माधुर्य अच्छा है। अजन्ता के चित्रों का रंग विधान भी अलौकिक है। यहाँ आला–गीला चित्रण विधान न होकर सूखी दीवार पर टेम्परा पद्धति से चित्रण हुआ है। अमिश्रित रंगों को छाया–प्रकाश रहित पद्धति से लगाये गये हैं। इतने लम्बे समय के बाद भी अधिकांश रंग आज भी अपनी ताजगी दर्शाते हैं। अजन्ता के चित्रों में स्थानीय खनिज रंगों का प्रयोग हुआ है। प्रायः अपारदर्शी, सफेद, लाल विभिन्न तान लिये हल्के व गहरे रंग, जो चूने के क्षारात्मक प्रभाव से भी सुरक्षित रह सके हैं। रामरज का पीला रंग, लालरंग के लिये गेरू और हिरौंजी, काले के लिये काजल, लालिमा लिए भूरा, लोह (अयस्क) से प्राप्त खनिज रंग हैं। हरा रंग एक स्थानीय खनिज से बना है जो संगसब्ज टेरावर्ट ग्रीन है। नीला रंग फारस से आयात किया हुआ लेपिस लाजुली है। इन रंगों को गोंद व स्थानीय वनस्पतिक पायस के साथ तैयार किया जाता था।

अजन्ता के चित्रों में रेखाचित्रण करके प्रायः सपाट रंग भर दिये जाते थे और फिर लावण्यमयी रेखाओं द्वारा आकार निर्मिति कर दी जाती थी।

कई स्थानों पर अजन्ता के रंग मनोवैज्ञानिक प्रभाव वाले हैं। अत्यन्त गौरवर्ण को गुलाबी रंग से, तो दर्पण में देखती युवा सुन्दरी को हरे रंग से दर्शाया है जो ताजगी के साथ–साथ एक प्रतिकात्मक प्रभाव भी देता है। इस प्रकार रंग भी अजन्ता के चित्रों में अपनी विशेषताएँ रखते हैं।

नारी चित्रण

अजन्ता के चित्रों में नारी चित्रण सौन्दर्य का प्रतीक है, जो यहाँ की प्रमुख विशेषता है। धर्म के आवेश में भी अजन्ता के ये चित्रकार नारी के महत्त्व का भूले नहीं थे। जीवन के सभी प्रसंगों में नारी पुरूष की सहचरी रही है। किसी चित्र में वह प्रयेसी बनकर प्रेमी को प्रणय का दान देती है, तो अन्यत्र माता बन सृष्टि की श्रृंखला को निरन्तरता देती है। माँ, रानी, दासी, पत्नी, पुत्री, सखी सहचरी–अनुचरी जैसे नारी के विविध रूप अजन्ता के चित्रकारों ने जीवन्त चित्रित किये हैं। चित्रकारों ने हर जगह नारी चित्रण को सौन्दर्य रूप में ला रखा था, चाहे वह कथा से सम्बन्धित हो अथवा न हो। अजन्ता के चित्रों को देखकर लगता है कि सौंदर्य से परे नारी का चित्रण करना उन्हें पसंद ही नहीं था। इसी कारण गुफा संख्या 2 में ''दण्ड पाती हुई युवती'' के चेहरे को, इस डर से छिपा ही दिया कि प्रसंगानुकूल मनःस्थिति चेहरे पर कुरूपता न ला दे। नारी सौंदर्य के प्रति इतनी गहरी आस्था कहीं अन्यत्र देखने को नहीं मिलती है।

चित्र 16 – प्राणों की रक्षा – दंड पाती युवती।

अजन्ता के नारी चित्रण के लिये कला समीक्षक ग्लेड स्टोन सोलोमन ने लिखा है ''कहीं भी नारी को इतनी पूर्ण सहानूभुति व श्रद्धा प्राप्त नहीं हुई है। अजन्ता में यह प्रतीत होता है कि उसे विशिष्टता के साथ नहीं बल्कि एक सारतत्व के रूप में निरूपित किया है। वह कोई व्यक्तिगत पात्र नहीं है, वह तो एक नियम है, वह वहाँ एक नारी ही नहीं, अपितु समस्त विश्व के सृजन व सौन्दर्य का अवतार है।''

इन चित्रकारों को जहाँ भी सौन्दर्य की आवश्यकता हुई तों इन्होंने अपनी श्रेष्ठता का प्रमाण प्रस्तुत करने के लिये नारी को अगणित रूपों में चित्रित कर दिया है। इस प्रकार नारी चित्रण अजन्ता की चरम उपलब्धि है।

अजन्ता के चित्रों में नारी का आवृत–अनावृत तथा अर्धावृत जैसी विभिन्न स्थितियों का समावेश किया है। अनावृत नारी शरीर इन चित्रकारों के लिये कोई गोपनीय विषय नहीं रहा, जिसे अध्ययन के लिये उन्हें व्यावसायिक मॉडल बैठाने पड़े हो। उन्होंने तो इन्हें खुले रूप में ही देखा और सोचा और खुले रूप में ही इन्हें चित्रित किया था। नारी के शारीरिक अंग–उपांगों में उरोज और नितम्बों का आकार शारीरिक अनुपात से बढ़ा कर चित्रण करने पिछे कलाकार का भाव सृष्टी निर्माण में नारी को उर्वरा शक्ति रूप के साथ–साथ काव्य के शृंगार पक्ष को अभिव्यक्त करने का रहा है, जो अजन्ता की चरम उपलब्धि है।

विभिन्न घटनाओं के अंकन में कुछ विशिष्ठ आकृतियाँ बड़े आकर में चित्रित की गयी है, तथा उनकी विशेषताओं को भी, अजन्ता के कलाकारों ने बड़ी उत्कृष्ठता से उभारा है। जातक कथाओं के चित्रण में कहानी के विभिन्न चरणों को क्रमशः एक ही दीवार पर लगा अंकित किया है। इन्हें विभाजन रेखा से विभक्त न करके कथानक के आगे कथानक का चित्रण कर एक दूसरे से संपूर्ण कथानक का संबंध दर्शाया है। अजन्ता के अंकन में अनेक प्रकार के भाव तथा अनेकानेक रस का दिग्दर्शन होता है। इस अर्थ के लिए बाण भट्ट ने ''त्रिभुवन संपुंजन'' शब्द का प्रयोग किया है। जहाँ तीनों भुवनों के दिग्दर्शन हो जाते हो ''त्रिभुवन संपुंजन''।

त्रिभुवन संपुंजन

संस्कृत कवि बाणभट्ट का शब्द ''त्रिभुवन संपुंजन'' शब्द अजन्ता के लिए बहुत ही सार्थक शब्द है। सत्य है कि अजन्ता में तीनों लोकों की वस्तुओं का चित्रण हुआ है। विषय वैविध्य की यहाँ खूब भरमार है। दैवीसृष्टि, देवता, इन्द्रादिक, अप्सरा–सुर–असुर, मानव, यक्ष, नाग, किन्नर, पृथ्वी, स्वर्ग, सूर्यचन्द्र, वन–पर्वत, सागर–सरिता, वृक्ष–लता, पुष्प–पत्र–फल, पशु–पक्षी, जलचर, नभचर, मानवीय–अतिमानवीय आदि सभी तरह की आकृतियों का यर्थाथसाम्य का कल्पना के संस्पर्श के साथ अजन्ता में चित्रण हुआ है।

इसी तरह बाल, युवा, वृद्ध, स्त्री–पुरुष, योगी–भोगी, रोगी–स्वस्थ, राजा–मन्त्री–सेवक, ब्राह्मण–व्याध, सैनिक–दूत, विदुषक–विद्वान, रानी, राजकुमारी, नर्तकी–प्रेयसी, दासी–प्रणयिनी, विरहिणी–प्रसविनी सभी का अजन्ता में चित्रण किया गया है। भाव में राग–द्वेश, क्रोध–हर्ष, शोक–उत्साह, भय, करुणा, वैराग्य तथा राजमहल, वन, वाटिका, जलाशय आदि सभी इन कलाकारों ने चित्रित किये हैं। जुलूस हाथी–घोड़ें सभी यहाँ चित्रित हैं। जीवन के विविध पक्षों का विश्वकोश रुप में इतना बड़ा महाकाव्य वह भी स्वाभाविकता से चित्रित करना निसंदेह अन्यत्र दुर्लभ है। जीवन के सभी पक्षों को समानरुप से और लौकिक–अलौकिक भाव को इतने माधुर्य से चित्रित किया है कि अजन्ता के चित्रों में भौतिक और आध्यात्म का एकाकीरण हो गया है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि, अजन्ता के चित्र धर्म विशेष तक ही सीमित नहीं रहे हैं, बल्कि विभिन्न समुदायों की कला के रुप में व्यापक रुप धारण कर चुके हैं। विषय धार्मिक होते हुए भी सांसारिक रोचकता इन चित्रों में है।

केन्द्रीय संयोजन

वैसे तो अजन्ता के चित्रों में संयोजन की विविधता है। फिर भी संयोजन केन्द्र आधारित है। मुख्य विषय और मुख्य आकृति की ओर दर्शक की दृष्टि स्वतः ही चली जाती है। संयोजन की सभी आकृतियाँ केन्द्र प्रयोजनार्थ हैं : सभी का उद्देश्य केन्द्र को पुष्ट करने का रहा है। जिससे चित्र और चित्र की विषयवस्तु सबल बन गये है। मुख्य आकृति को प्रधानता देने के लिए इसे अन्य आकृतियों से बड़ी व मध्य भाग में बनाकर प्रभुत्व का प्रतिपादन किया है। कई बोधिसत्व के चित्रों की पृष्ठ भूमि में नाना चर–अचर जीव–जन्तु चित्रित किये है, जिससे संसार की नश्वरता का बोध कराया गया है। अजन्ता में संयोजन सौष्ठव की अपेक्षा घटना की वर्णनात्मकता पर अधिक बल दिया है, वहाँ संयोजन सौष्ठव तो स्वतः ही आ गया है।

मुकुट, आभूषण, वस्त्र व केश विन्यास

अजन्ता में मुकुटों, आभूषणों, वस्त्रों व केश को भी बड़ी विविधता और सुन्दरता से अंकित किया गया है। देवताओं तथा महापुरुषों के मुकुट शिखर के समान ऊँचे और भव्य बनाये है। उदाहरणार्थ ''पद्मपाणिअवलोकितेश्रवर'' का मुकुट भव्यता लिए हुए है। नागराज के मुकुट के पीछे पाँच फन का नाग लगा है। इसी प्रकार ''गृहत्याग'' व ''बज्रपाणि'' नामक चित्रों में मुकुट की बनावट तथा आकार से व्यक्ति का पद व उसके चरित्र के महत्व का आभास होता है। राजा और रानी के मुकुट में भी अन्तर दर्शाया है। अजन्ता के चित्राकारों ने पात्रों की शोभा बढ़ाने के लिए इन्हें रत्नों जड़ित मोतियों की लम्बी–लम्बी मालाएँ और गले को बड़े–बड़े मोतियों की मालाओं से युक्त चित्रित किया है। मुकुटों से माथे तक लटकती छोटे–छोटे मोतियों की मालाएँ तथा गर्दन से वक्षस्थल पर लहराती हुई ये मालाएँ तत्कालीन राजसी अंलकरण को दर्शाती प्रतीत होती हैं। अन्य आभूषणों में मीनाकार कुण्डल पत्र व मटकाकार कुण्डल, भुजाओं में व कमर में मोतियों की करधनियाँ बनायी है। हाथों में कड़े, बाजूबन्ध व मणिबन्धों से स्त्रियों के कोमल हाथों को और भी सुन्दर बना दिये है।

चित्र 17 – मुकुट व आभूषण।

वस्त्रों की स्वाभाविक फहरान को इन चित्रों में सुन्दरता से दर्शाया है। मानव आकृतियों के वस्त्रों की सिकुड़न व फहरान स्वाभाविक है। पुरुष अधिकांशतः अधोभाग में धोती पहने व ऊपरी शरीर में कुर्ता पहने दर्शाये हैं। स्त्रियाँ कोहनी तक की आस्तिन की चोली तथा नीचे के भाग में धोती या आँचल पहने हैं। नर्तकियाँ विशेष प्रकार का चुस्त कुर्ता और तंग पायजामा पहने हैं। चित्रकारों ने इनके वस्त्रों को भी नाना आलेखनों से अंलकृत किया गया है।

यद्यपि अजन्ता के चित्र बहुत प्रचीन हैं, फिर भी वर्तमान में स्त्रियाँ अजन्ता में चित्रित केश–विन्यास से प्रेरणा लेती हैं। स्त्रियों के लम्बे लहराते बेणियों में बंधे बाल, कंधों पर लटकते गोलाकार (घुंघराले) बाल, माँथे पर लटकते, चिकुर जूड़ों में बन्धे बाल, गुथे हुए बाल, खुले एवं छिटके हुये कुन्तल केश आदि अनेक प्रकार के केश–विन्यास का मोहक रूप यहाँ देखने को मिलता है।

चित्र 18 – केश विन्यास।

हस्तमुद्राएँ एवं भावभंगिमाएँ

अजन्ता के चित्रों में विभिन्न हस्तमुद्राओं व भाव–भंगिमाओं की अद्भुत छटा देखने को मिलती है। इन्हीं दो बातों से चित्रकारों ने अपने पात्रों को जीवन्त कर दिया। अजन्ता की मुद्राएँ भाव की पूर्ण अतिव्यक्ति करती है।

अजन्ता की आकृतियों का शैलीकरण, इन्हीं मुद्राओं व भाव–भंगिमाओं से हुआ है। आकृतियों की बनावट, भावभय नेत्र, वाचाल भौहें, पुष्ट अधर, हस्त मुद्राओं आदि के माध्यम से स्नेह, विशाद, वात्सल्य, क्रोध आदि भाव कलाकारों ने अजन्ता में सहज ही प्रदर्शित किये हैं। लचकदार अंगुलियों की मुद्राएँ भारतीय शास्त्रीय नृत्य में प्रयुक्त मुद्राओं के समरुप हैं। यहाँ कलाकार ने समकालीन प्रचलित नृत्यकला की हस्तमुद्राओं का प्रयोग किया है। इन मुद्राओं ने आकृति की भव्यता और भावाभिव्यक्ति में अपूर्व शक्ति दी, फलतः अजन्ता के पात्रों में दिव्य रुप स्थापित हो गया।

चित्र 19 – हस्तमुद्राऐं।

अजन्ता में विभिन्न आकृतियों के निर्माण में हस्त मुद्राओं ने खूब सहयोग दिया है। जिनमें प्रमुखरुप से शान्ति की हस्तमुद्रा, शिखरमुद्रा, दण्डहस्तमुद्रा, पद्मपाणिहस्तमुद्रा, धर्मचक्र हस्तमुद्रा, वैराग्यमुद्रा आदि अजन्ता के चित्रों में सुन्दर व भावपूर्ण प्रदर्शित हुई है। हस्तमुद्राओं में पुष्प लिए, वाद्ययन्त्र बजाते, मधुपात्र पकड़े, चँवर डुलाते, वस्त्र पकड़े आदि भी दिखाई गयी है। पैरों की मुद्राओं का भी अजन्ता के चित्रों विशेष स्थान है।

भावाभिव्यक्ति में अजन्ता के चित्रों का विशेष महत्व है। चित्रकार ने यहाँ के चित्रों में छन्दरीति का परिचय देते हुए, नारी को सुकोमल लतिका के समान लावण्यमय भंगिभाओं में चित्रित किया है। जो चित्ताकर्षक के साथ–साथ नारी को अद्वितीय सम्मान भी देती है। यहाँ गुफा संख्या दो में चित्रित विमाता महाप्रजापति की भंगिमा दर्शनीय है, जिसमें वह एक कोमल लतिका के समान स्तम्भ के सहारे अपना बायाँ पैर मोड़े खड़ी है। इसी प्रकार ''पद्मपाणि अवलोकितेश्वर'' ''मरणासन्न राजकुमारी'' ''झूला झूलती युवती'' ''श्रृँगाररत राजकुमारी'' के चित्र भावभंगिभाओं के उत्तम उदाहरण हैं।

आकृतियों की विभिन्न भावभंगिमाएँ प्रदर्शित करते समय चित्रकार ने शारीरिक स्थितिजन्यलघुता का पूरा ध्यान रखा है। यही कारण है कि सभी आकृतियाँ मुख मण्डल से ही स्वभाव की उग्रता, सोम्यता, चंचलता, विनोद, दृढ़ता, आदि का ज्ञान करा देती है। भय, श्रृंगार, हर्ष, शान्ति, वीर व रौद्र आदि भाव को अजन्ता के चित्रकारों ने सहज ही इस चित्रों में दर्शा दिया है।

आलेखन

अजन्ता के चित्रों में आलेखन भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह अतिशयोक्ति ना होगी कि अजन्ता आलेखनों की खान है। अजन्ता के चित्राकारों ने चित्रण में आलेखन को भी बोधिसत्व के समकक्ष महत्व दिया है। गुफा को सुसज्जित करने, रिक्त स्थानों को भरने, गुफा के मुख्य द्वार, स्तम्भों, छतों आदि सभी पर कलाकारों ने उसी भाव से सुन्दर व भाव मग्न आलेखन किया है, जिस भाव से भित्तियों पर बुद्ध और बोधिसत्व को चित्रित किया। मुकुट, वस्त्राभूषण सभी को सुन्दर आलेखनों से चित्रित किये हैं। अजन्ता के आलेखनों में चित्रकार ने विद्याधरों व अप्सराओं के सुन्दररुप, पशु–पक्षियों, पुष्पों–लताओं के प्रयोग के साथ बन्दर, वृषभ, मीन, मकर, मृग, मयूर, बतख, हँस आदि को स्वाभाविक उन्मुक्ता के साथ–साथ काल्पनिक अलंकरण में चित्रित किये हैं।

चित्र 20 – अलंकरण।

मानो ये सभी जीव मानव जीवन के सुख–दुख के साथी हो। यहाँ कमल पुष्प व लताएँ विविध रूपाकारों में प्रदर्शित हैं। वनस्पतियों के मध्य प्रेमी युगल, किन्नर, हँस, हस्तिदल, मीन, मकर, मयूर, मृग, जल, थल व चर एक दूसरे से मिलजुल गये हैं। अजन्ता के आलेखनों में स्थायित्व और गति की सन्तुलित योजना और छन्दमय अभिप्रायों की लयात्मक पुनरावृति के कारण ये जीवन्त भी बन गये हैं।

चित्र 21 – अलंकरण।

आलेखनों में आयताकार, वर्तुलाकार अथवा शंकु के आकार में ज्यामितीय आलेखनों की भी भरमार है। कहीं–कहीं प्रेमी युगलों से भी आलेखनों में दिव्यता दी गयी है।

अजन्ता की पहली और दूसरी गुफा में सभी छतें आलेखनों से भरी है। पक्षियों तथा जलचरों के अतिरिक्त गन्धर्व तथा विद्याधर–युगल भी बादलों के बीच–बीच में बनाये गये हैं। अजन्ता के आलेखन आज भी भारतीय चित्रकला की सर्वोतम निधि मानी जाती है।

परिप्रेक्ष्य

अजन्ता के चित्रकारों ने यथार्थ की अपेक्षा भावना और कल्पना को साकार रुप देने के लिए मानसिक व काल्पनिक परिप्रेक्ष्य को काम में लिया। श्रृद्धा, स्नेह, घृणा, क्रोध आदि सभी को बखूबी से दिखाया। चित्रों में प्रयुक्त अनेक आकृतियों को सामान्य अनुपात से बड़ा बनाकर उनके महत्व को व्यक्त किया। राहुल समर्पण चित्र में बुद्ध की विशाल आकृति इसका उत्तम उदाहरण है। इस चित्र की पृष्ठ भूमि में भवन आदि के परिप्रेक्ष्य में चित्रकार ने सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है।

अजन्ता के चित्रकारों ने ''काल्पनिक परिप्रेक्ष्य'' का भी चित्रों में समावेश किया है। कथानक के अनेक स्थानों और विभिन्न समय के दृश्यों को एक ही चित्र में अद्‌भुत ढंग से संयोजित कर दिया है। महल के कई भागों में होने वाले दृश्यों को चित्रित करने में कथानक की स्पष्टता हेतु कई चित्रों में महल की छत को इन चित्रकार ने हटा दी है। जैसे संपूर्ण दृश्य को कुछ ऊँचाई से एक साथ देखा जा रहा है। इस प्रकार चित्र के विभाजन पर भी संयोजन में एक सूत्रता है। जो चित्रकार के संयोजन पर आधिपत्य को व्यक्त करता है।

अजन्ता के चित्रकारों ने यहाँ बहुद्देशीय परिपेक्ष्य का भी पालन किया है। अजन्ता के चित्रकारों ने मिलन बिन्दु को क्षितिज में स्थापित नहीं कर दर्शक ने नेत्र पर स्थित किया है। उदाहरणार्थ अजन्ता में चौकोर वस्तु के समीप का भाग छोटा और दूर का भाग बड़ा बनाया है। प्रेमी–युगल, माया देवी का स्वप्न, बुद्धजन्म के दृश्यों में बहुद्देशीय परिप्रेक्ष्य का अच्छा प्रयोग है। अजन्ता के चित्रों में यथार्थ परिप्रेक्ष्य का भी अच्छा प्रयोग हुआ है, जैसे षडदन्त जातक कथा में जंगली दृश्य तथा पूजागृह और कुछ अन्य भवनों के चित्रण में।

प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता

बौद्ध धर्म के अहिंसा के नियमानुसार भिक्षु प्रकृति और सृष्टि के समस्त जीवों के प्रति प्रेमभाव रखते थे, और अजन्ता जैसे प्राकृतिक स्थान का भी प्रभाव था कि जहाँ कलाकार इन्हीं के बीच मे रहते थे। अजन्ता के आलेखनों में हँस, मयूर और कपोत को यथार्थ और काल्पनिक दोनों के भिन्न–भिन्न अस्तित्व के साथ भी समन्वित रूपों में संजोया है। चित्र में इनकी ग्रीवा तथा शरीर में तो स्वाभाविकता का ध्यान रखा, परन्तु इनकी पूंछ के चित्रण में चित्रकार काल्पनिक और आलंकारिक विवरणात्मकता में खो गया। अजन्ता के कलाकार ने जलक्रीड़ा करते हाथियों को खूब विविधता से चित्रित किये एवं अपनी संयोजन की स्वतन्त्रता का खूब लाभ लिया। वनस्पति के चित्रण में नाना प्रकार के वृक्ष, फूल व पत्तियाँ कलाकारों के प्रकृति प्रेम को दर्शाती है। छःदन्त जातक कथा इसका उत्तम उदाहरण है। मृगों, शरारती बंदरो, अश्वों, बैलों, और हाथियों की मस्त चाल में कलाकारों ने इनके प्रति अपना स्नेहिलभाव प्रदर्शित किया है। जो चित्रकार की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति, अंकन–पटुता और प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता को व्यक्त करती है।

बाघ (4 थी सदी ई. से 5 वी सदी ई.)

भौगोलिक स्थिति व नामकरण

बाघ की गुफाएँ मध्यप्रदेश में स्थित हैं। महू रेल्वे स्टेशन से धार मार्ग के द्वारा बाघ कस्बे तक पहूँचा जाता है। बाघ की गुफाओं का नामकरण भी अजन्ता की ही तरह पास के ''बाघ'' नामक गाँव के कारण पडा। प्राचीन ग्वालियर राज्य की विंध्याचल पर्वत श्रृंखला में नर्मदा की एक सहायक नदी बागमती से 5 किमी. दूर बाघ नामक गॉव के पास ये गुफाएँ स्थित है।

स्थानीय लोग इन गुफाओं को पंच पांडू की गुफाएँ भी कहते हैं। ये गुफाएँ भी अजंता की तरह सैकड़ों वर्षों तक अज्ञात रही। स्थानीय लोग यह अवश्य जानते थे कि यहॉ पर कुछ गुफाएँ हैं, मगर चित्रित गुफाओं का उन्हें भी अन्दाज नहीं था।

खोज

1818 में लेफ्टीनेन्ट डगरलफिल्ड ने सर्वप्रथम बाघ की गुफाओं का विवरण ''साहित्यिक विनिमय संघ'' की एक पत्रिका के द्वितीय अंक में प्रकाशित करवाया था। बाद में एरिक्सन और डॉ. इम्पे ने बाघ के गुफा चित्रों पर विस्तृत जानकारियॉ प्रकाशित की। सन् 1929 में कर्नल सी.ई.ल्युवर्ड ने रायल एशियाटिक सोसायटी की पत्रिका में एक गवेषणात्मक लेख लिखा। सन् 1910 में असीत कुमार हलदार और 1925 में मुकुल चन्द्र डे ने भी बाघ के चित्रों पर अपने–अपने विस्तृत लेख प्रकाशित किए।

उद्देश्य

बाघ की गुफाएँ भी अजन्ता चित्र श्रृंखला की एक कड़ी है। ये गुफाएँ महायान बौद्ध सम्प्रदाय से संबंधित हैं। इन्हें बौद्ध भिक्षुओं के आवास और बुद्ध उपदेशों के प्रवचन–श्रवण हेतु बनाया गया था।

रचना काल

बाघ की गुफा की चट्टानों का पत्थर बडा मुलायम है, जहाँ ना तो मूर्तियॉ बन पायी और ना ही शिलालेख आदि खुद पाये हैं। इस प्रकार इनके रचना काल के लिए स्पष्ट प्रमाण भी नहीं मिलते हैं। फिर भी यह निर्विवाद स्वीकारा गया है कि बाघ के चित्र गुप्तकाल के श्रेष्ठतम उदाहरणो में से हैं। यहॉ चित्रित प्रमाण पूर्णतः नष्ट हो चुके है। इन धुँधले पड़े रंगों को गीला करके देख पाना भी असम्भव है। फिर भी एक जुलूस के चित्र पर 'क' अक्षर हिरौन्जी रंग में लिखा है। प्राचीन लिपिशास्त्री जिसका अर्थ छठी–सातवीं शताब्दी से लेते हैं। कला इतिहासकार विन्सेंट स्मिथ बाघ की गुफा चित्रों का समय 626–628 ई. मानते हैं। पुरातत्व विभाग द्वारा इन गुफाओं की सफाई और जीर्णोद्वार करते समय दूसरी गुफा में 'महाराज सुबन्धु' का एक ताम्रपत्र मिला, जिससे इन गुफाओं के निर्माणकाल का ठीक समय निश्चित हो जाता है। ताम्रपत्र की चौथी पंक्ति के अनुसार यह गुफादान **''कलयन''** (बाघ) नामक विहार को दिया गया है। इस प्रकार ये गुफाएँ पूर्व में कलयन (बोद्ध धर्म द्वारा प्रदत्त नाम) से भी पुकारी जाती होंगी। इतिहासकार महाराज सुबन्धु का समय 416–466 ई0 के मध्य मानते हैं। अतः सभी प्रकार के अध्ययन से यह निर्णय निकलता है कि ये गुफाएँ महाराज सुबन्धु के समय में तैयार हो गई होगी। जिनका समय चौथी–पॉचवी शताब्दी माना जा सकता है।

चित्र 22 – बाघ गुफा का प्रवेशद्वार।

बाघ की गुफाओं की संख्या और इनके नाम

बाघ में कुल नौ गुफाएँ थीं, जो सभी विहारगृह थे। इन गुफाओं के कई नाम प्रचलित थे। पहली गुफा का नाम ''गृह गुफा'', दूसरी गुफा गुसाई अथवा ''पंच पाण्डू'' की गुफा कहलाती है। तीसरी गुफा को ''हाथीखाना'', चौथी गुफा को ''रंग महल'', पॉचवी को ''पाठशाला'' कहा जाता है। छठी, सातवीं, आठवीं व नवीं गुफाएँ आवागमन की दृष्टि से अवरुद्ध सी हैं, फलतः इनके नाम भी प्रचलन में नहीं रहे हैं।

बाघ के चित्र

बाघ में गुफा संख्या चार व पॉच के कुछ चित्रों को छोड़ कर अन्य सभी (गुफा संख्यॉ 1, 2, 3, 6, 7, 8 व 9 में) गुफाओं के चित्र पूर्णरुप से नष्ट हो चुके हैं। चौथी और पॉचवी गुफा से मिलता हुआ एक 200 फीट का दालान (बरामदा) है, जिसकी छत बीस स्तम्भों पर आधारित थी, जिसके गिरने से 15 फीट का एक चित्रित पैनल नष्ट हो गया है। चौथी गुफा के बाहर की दीवार तथा पांचवी गुफा के बाहर की दिवार के आरंभ होने के

स्थान पर के चित्र सबसे अच्छी स्थिति में थे, जो वर्तमान में नहीं के बराबर शेष है।

गुफा संख्या 1 व 2

यह एक विहार गुफा है, वर्तमान में इस गुफा में कोई मूर्ति और चित्र के प्रमाण शेष नहीं हैं और गुसाई अथवा पाण्डू के नाम की दुसरी गुफा की दीवारों पर मानवाकृतियों के संयोजन तथा छत पर बेल–बूटों के आलेखनों के चिन्ह यहॉ–वहॉ बिखरे हुए दिखाई देते थे, जो अब पूर्णतः नष्ट हो चुके हैं।

गुफा संख्या 3

इस गुफा को ''हाथी खाना'' कहते हैं, इसका केन्द्रीय कक्ष बुद्ध और बोधिसत्वों के चित्रों से भरा हुआ था, किन्तु अब केवल बुद्ध का आभा मण्डल ही शेष रह गया है। एक स्थान पर खड़ी बुद्ध आकृतियॉ अण्डाकार आभा मंडल के मध्य चित्रित थीं। एक अन्य आकृति के पैर, कमल, तथा हाथों मे दीप लिए एक उपासक की आकृति अंकित है। द्वार के निकट भूमि को स्पर्श करती स्त्री की स्थिति भी अस्पष्ट सी है।

गुफा संख्या 4

यह गुफा चैत्याकार में है, जिसे रंग महल भी कहते हैं। इसमें बनी पद्मासन मुद्रा में बुद्व मूर्तियों के कारण यह चैत्य का रूप प्रकट करती है। किसी समय यहॉ बुद्ध के सुसज्जित चित्र भी रहे होंगे। इसी गुफा के बाहरी बरामदे में 45 फीट लम्बे और 6 फीट चौड़े एक स्थान पर आकर्षक चित्र मिलते हैं। यह पैनल गुफा संख्या पॉच तक फैला हुआ है। जिसमें आठ दृश्य चित्रित हैं। जो स्थान–स्थान पर बने केले के वृक्षों व द्वारों से सभी दृश्यों को अलग–अलग करते हैं।

पहला दृश्य

अधिकांश चित्र इस गुफा के सामने वाली दीवार पर हैं, जहाँ द्वार के ऊपर दो दृश्य अंकित हैं। पहला दृश्य नायिका के वियोग से संबंधित प्रतीत होता है। एक स्त्री शोकाकुल है तथा दाहिने हाथ से पल्ले से अपना मुँह छिपा कर शायद वेदना व्यक्त कर रही है। इस स्त्री का बांया हाथ कुछ कहने की मुद्रा में फैला हुआ है। एक अन्य स्त्री सहानुभूतिवश उदासभाव से देखती हुई इसे सान्त्वना दे रही है। कुछ स्त्रियाँ झरोखे के पास बैठी हैं। छत के ऊपर एक कपोत युगल बैठा है, जो प्रणय प्रसंग का प्रतीकात्मक चित्रण है।

दूसरा दृश्य

इस चित्र में चार भद्रपुरूष पालथी लगाये पीली गोल गदि्दयों पर बैठे हुए का है, जो कोई मन्त्रणा करते प्रतीत होते हैं। चारों पुरूष राजसी वेशभूषा में हैं, ये सभी गले तथा हाथों मे आभूषण धारित हैं। बांयी ओर के दो व्यक्तियों के सिर पर मुकुट भी है। दोनों मे पहला कोई मंत्री और दूसरा राजपुरूष प्रतीत होता है। हस्तमुद्राओं और नेत्रों में भावाभिव्यक्ति का अच्छा तालमेल है। पृष्ठभूमि में उद्यान का दृश्य है। सम्भवतः यह चित्रण किसी राजपुरूष द्वारा बौद्ध धर्म अंगिकार करने की घटना का हो।

तीसरा दृश्य

इस दृश्य में आकाश में विचरण करते हुए छः व्यक्तियों का एक समूह का है। जिसमें एक प्रधान आकृति (धर्म प्रवर्तक मुद्रा में) के निकट कुछ व्यक्ति वार्तालाप कर रहे हैं। सभी आकृतियॉ भिक्षुदशा में सिर मुंड़े हुए हैं।

चौथा दृश्य

तीसरे दृश्य के ठीक नीचे पॉच गायिकाओं के मध्य एक सुन्दरी वीणा वादन की मुद्रा में खड़ी है, गायिकाओं के चित्रों में केवल कमर तक का भाग ही शेष रहा है। अजन्ता की ही तरह सभी स्त्री आकृतियों ने कमर तक कसी चोली पहन रखी है, व इनके बाल जूड़े मे बंधे हैं। चित्र में अजन्ता की ही तरह ईरानी नीला रंग (लेपिस लाजुली) भरा गया है।

पांचवा दृश्य

यह दृश्य बड़ा ही रोचक है। इसमें दो समूह में नृत्यांगनाएँ और वाद्य–वादिकाएँ चित्रित हैं। प्रथम समूह में छः तथा दूसरे समूह में सात नृत्यांगनाएँ एक पुरूष के चारों ओर नृत्यमग्न हैं। दृश्य में पुरूष को आकर्षक वेशभूषा में और नृत्यरत मुद्रा में चित्रित किया गया है। चित्रकार ने सम्पूर्ण संयोजन केन्द्राभिमुख संयोजित किया है, साथ ही प्रभाविता के सिद्धान्त को भी महत्व दिया है। दूसरे समूह में नृत्यमुद्रा में खडी पुरूषाकृति को घेरे सात नृत्यांगनाएँ मण्डलाकार रूप में खड़ी हैं। नर्तक चुस्त कुर्ता और तंग पायजामा पहने है, तथा उसके बाल कंधों पर लहरा रहे हैं। गायिकाओं के पास छोटे–छोटे मंजिरे, मृदंग और कुछ के पास बजाने वाले छोटे डण्डें हैं। दोनों समूह की वेश–भूषा एक जैसी ही हैं। यहाँ भी वर्तुलाकार संयोजन में मुख्य आकृति प्रभाविता लिए हुए चित्रित की गयी है। **(चित्र संख्या 23 बाघ–2)**

चित्र 23 – बाघ गुफा संख्या 4 का पांचवां दृश्य : नृत्य दल।

छठा दृश्य

इस दृश्य में उद्यान की दीवार के दूसरी ओर एक सत्रह घुड़सवारों के दृश्य का अंकन है, जो किसी राजपरिवार का जुलूस प्रतीत होता है। जुलूस में एक सी गति, राजप्रतीक चिन्ह और सभी की एक सी पोशाकें राजपरिवार को प्रकट करती है। अश्वों की उन्नत ग्रीवा, स्वाभाविक गति एवं अश्वारोहियों की मुखमुद्राएँ विजयोल्लास को प्रकट करती हुई है। जो विजय के या कार्य समाप्ति के बाद पुनः अपने आलय को लौट रही है।

सातवाँ दृश्य

इस दृश्य में हाथियों का एक जुलूस है, जिसमें छः हाथी और तीन घुडसवार हैं। हाथियों पर राजपरिवार के व्यक्ति बैठे हैं, घोडों पर सिपाहियों को दर्शाया है। चित्रकारों ने हाथियों की गति के अंकन में अच्छा रेखीय कौशल दिखाया है। इनके पीछे की ओर स्त्रियों के दो समूह हैं, जिनको बड़ी ही आकर्षक मुद्रा मे चित्रित किया गया है, दोनों दृश्यों (स्त्री समूहों के बीच) के बीच मे एक दीवार चित्रित है। पास मे कुछ वनस्पति, नदी और झोपड़ी व गांव सा दृश्य अंकित है।

आठवाँ दृश्य

सातवे दृश्य के बाद एक द्वार है। जिसके दूसरी ओर अन्य दृश्य है, जो अब पूर्णतः नष्ट हो चुका है। परन्तु डॉ. इम्पे ने जब यह गुफा देखी थी, तब यह दृश्य पूर्ण सुरक्षित था। उनके कथनानुसार यह दृश्य बडा विशिष्ठ व रोचक है। इसकी आकृतियाँ ठीक विपरित दिशा मे देख रही है। इनमें चार हाथी और तीन घोड़ें हैं, जो विश्राम की स्थिति में हैं।

इन पर बैठे महावत भुजाएँ बांधें हाथियों के मस्तक पर आराम कर रहे हैं। एक हाथी की सूंड में कपडा बंधा है। निकट ही दो पुरूष आकृतियाँ पैदल चल रही हैं, जिनके हाथ में तलवार व भाला है। निकट ही शाल वृक्ष के नीचे कुछ जल पात्र, डाल पर नीला कपड़ा व नीचे धर्मचक्र चिन्हित है। इसके साथ ही एक केले के वृक्ष के नीचे पालथी लगाये बुद्ध या कोई स्थावर अपने शिष्य को उपदेश दे रहे है। इसके अतिरिक्त और भी कुछ आकृतियाँ यहाँ चित्रित हैं, किन्तु सभी अस्पष्ट और धूमिल हो चुकी हैं।

इस गुफा के खम्भो की पिछली पंक्ति पर अनेक सुन्दर आलेखन हैं, जिनका अब कुछ–कुछ धूमिल रूप ही दिखाई देता हैं।

गुफा संख्या 5

इस गुफा मे अनेक चित्र रहे हैं, जिनमें बुद्ध का सुन्दर चित्र के अवशेष मात्र रह गये हैं। इस विहार गुफा के अन्दर की पाँचों कोठरियाँ सुसज्जित थी, जहाँ अब कुछ भी शेष नहीं है। इन चित्रों की आकृतियॉ, भाव–भंगिमाएँ और अलंकरण अजन्ता के समान ही हैं।

बाघ की गुफाओं की छतों का सारा प्लास्तर गिर चुका है, परन्तु यह निश्चय है कि यहाँ भी सुन्दर आलेखन रहे होंगे। कार्ल खण्डालावाला ने इन अभिलेखों में से ''मुर्गी और उनके चूजों'' का एक चित्र प्रकाशित भी किया है।

बाघ के चित्रों का चित्रण–विधान

बाघ गुफा की चट्टानें अजन्ता की तरह कठोर पत्थर की न होकर बालू के पत्थर की हैं, जिसका बालू खिरता रहता है। इन्हीं भित्तियों पर चूने का प्लास्तर चढा कर टेम्परा रंगों से कलाकारों ने यहाँ चित्रण किया गया है। यहाँ का चित्रण विधान अजन्ता से मेल रखता है। बाघ के चित्रों के रंग भी उसी क्षेत्र से प्राप्त किये गये थे, जिन्हें कूट–पीसकर स्थानीय गोंद में मिलाकर काम मे लिये गये हैं। किन्तु अजन्ता वाली आकारों की काले रंग की अन्तिम खुलाई (बाह्य रेखा) का यहाँ अभाव है। शायद इन कलाकारों ने यह कार्य बीच में ही छोड़ दिया होगा

या फिर समय लेकर काला रंग चूने के तेज से नष्ट हो गया होगा।

अजन्ता की तरह यहाँ पर भी पहले आकृतियों का रेखांकन किया गया, फिर स्थानीय रंगों को समतल रूप में भर कर गोलाई व उभार देने के लिए आस–पास गहरे रंगों का प्रयोग किया गया है। बाघ के इन गुफा चित्रों में हिरौन्जी, सफेद और काले रंगों से सुन्दर आलेखन बने हैं तथा हरे, पीले, लाल व नीले विरोधी रंगों का भी खूब प्रयोग हुआ है। इस प्रकार बाघ के चित्रों में रंगों की दो शैलियाँ दिखाई देती हैं, जो सम्भवतः चित्रण के अलग–अलग कालखण्ड़ों को दर्शाती हैं।

बाघ की विशेषताएँ

जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण

बाघ की गुफाओं मे केवल बौद्ध धर्म का ही चित्रण नहीं हुआ अपितु अश्वारोहण, गजारोहण, नृत्य–गान, जुलूस, राजपुरूष, स्त्रियों की विभिन्न अवस्थाएँ : प्रेम–विरह का भी सुन्दर चित्रण यहाँ हुआ है। जीवन की उल्लास और आनंद की अभिव्यक्ति बाघ में अंजता से सुन्दर है। आकारों के अंग–प्रत्यंगों का अनुपात, मुद्रा–स्थितियाँ व संयोजन सभी परिपक्व कलाशैली का परिचय देते हैं।

प्रकृति एवं पशु–पक्षी चित्रण

बाघ के चित्रों मे प्रकृति का अंकन बड़ा ही सुन्दर हुआ है। मोर–चकोर, कोकिल–कपोत व सुक–सरिका सदा ही भारतीय सृजन में प्रेरणा–प्रेरक व सहयोगी रहे हैं, जिनका चित्रण यहाँ भी खुब हुआ है। आलेखनों मे फूल–पत्ति, पशु–पक्षी सभी कुछ आकर्षक ढंग से यहाँ संयोजित किए हैं। पुष्पगुच्छों, लताओं, कमल–कमलदलों का सुन्दर चित्रण बाघ में हुआ है। लताबन्धों के बीच–बीच में पक्षियों के विविध रूप अत्यन्त ही रोचक ढंग से बाघ के चित्रकारों ने चित्रित किए हैं। साथ ही बाघ के चित्रकारों ने हाथियों और अश्वों के चित्रण में भी रोचकता दिखाई है। इनकी विभिन्न मुद्राओं में इन्हें कई आकर्षक ढंग से चित्रित किया है।

बादामी (6 सदी ई. से 8 सदी ई.)

भौगोलिक स्थिति

बादामी गुफाएँ महाराष्ट्र प्रान्त के बीजापुर जिले के आइहोल के निकट स्थित है। दक्षिण में ''वाकाटकों'' के बाद एक शक्तिशाली वंश ''चालुक्य'' का उदय हुआ। इस वंश में पुलकेशियन प्रथम, उसके पुत्र कीर्तिवर्मन, व उनके पुत्र पुलकेशियन द्वितीय बड़े प्रतापी राजा हुये। कीर्तिवर्मन के बाद उसका छोटा भाई मंगलेश चालुक्य वंश का शासक बना और उसने ''वात्यापिपुरम'' आधुनिक ''बादामी'' को अपनी राजधानी बनाया। शासक मंगलेश कला प्रेमी और कला का एक अच्छा संरक्षक था। इसी कारण उसके काल में ''महाबलीपुरम'', ''काँचीपुरम'' और ''बदामी'' की चौथी गुफा जैसे कला स्थल बनकर तैयार हुएँ। बादामी की यह चौथी गुफा वास्तु, शिल्पसज्जा और चित्रकारी की दृष्टि से श्रेष्ठ मानी जाती है।

बादामी की चौथी गुफा में मंगलेश के शासन काल के बारहवें वर्ष का एक लेख मिला है। जिसका समय 579 ई. है। इसके आधार पर बादामी गुफा का समय 579 ई. निश्चित किया जाता है। इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस चौथी गुफा के मुख्य मण्डप में विष्णु की प्रतिमा स्थापित की गई थी और इस प्रतिमा की पूजा–सेवा के लिए चालुक्य शासन की ओर से अनुदान रुप में ''लन्जीसवाड़ा'' नामक ग्राम की जागीर इस मन्दिर के प्रबन्ध हेतु दी गयी थी।

बादामी में कुल चार गुफा मन्दिर है, जिसमें एक जैनधर्म से और तीन ब्राह्मण धर्म से संबंधित है। इस प्रकार ब्राह्मण धर्म के चित्रों में अब तक के ज्ञात चित्र उदाहरणों में ये प्राचीनतम भित्ति चित्र है। इन चित्रों की शैली अजन्ता चित्र शैली से साम्यता रखती है।

बादामी चित्रों की खोज का श्रेय डॉ. स्टेला क्रेमरिश को मिलता है। कलाविद् डॉ. शिवराममूर्ति ने भी बादामी गुफा के चित्र वैभव की भूरी–भूरी प्रशंसा की है।

बादामी गुफा के चित्र

पहला दृश्य

इस विशाल पैनल चित्र के केन्द्र में राजा–रानी सिंहसनारुढ़ संगीत व नृत्य का आनन्द ले रहे हैं। कुछ दर्शक महल के ऊपरी झरोखें से इस दृश्य को देख रहे हैं। राजा की आकृति कोमल व नीलियायुक्त हरे रंग की है। जिसका अब धड़ और हाथ ही शेष रहा है। केवल मुकुट बच गया है और संपूर्ण मुखाकृति नष्ट हो चुकी है। शरीर पर चालुक्य काल की अनेक

मालाएँ और यज्ञोपवीत है। चित्र के नीचे की ओर कुछ व्यक्ति बैठे हैं। आस–पास कुछ स्त्रियाँ चँवर लेकर खड़ी हैं। बायीं ओर इन्द्र की एक नृत्य सभा का चित्रण है। जिसमें इन्द्र को स्तम्भ युक्त मण्डप में सिंहासन पर बैठे दर्शाया है। पृष्ठभूमि में पर्दा भी टंगा है। चित्र के मध्य में एक युगल नृत्य कर रहा है। जिसके आसपास स्त्रियों की एक मण्डली वाद्ययन्त्र बजा रही है। चित्र में इन्द्र की विलासिता को व्यक्त किया गया है, और नृत्य दल उसे आसक्त करने का प्रयत्न करता है।

दूसरा दृश्य

इस पैनल में सिंहासन पर एक राजा विश्राम की मुद्रा में अधलेटा चित्रित है। राजा का एक पैर नीचे पादपीठ पर है और दूसरा पैर सिंहासन पर रखा है। निकट में अनेक राजकुमार व राजपुरुष बैठें हैं। दूसरी और रानी भी सिंहासन पर अलसायी मुद्रा में बैठी है, जिसका सिंहासन राजा के सिंहासन से कुछ नीचा है। पास ही एक दासी राज चिन्ह 'दण्ड' लिए खड़ी है। दूसरी ओर एक दासी रानी के पैर में अलक्तक लगा रही है। चारों ओर श्रृंगार प्रसाधिकाएँ बिखरी पड़ी है। रानी गौरवर्ण की है, तथा उसके कैश बड़े ही सुन्दर ढंग से संवारे हुए है। सम्भवतः यह दृश्य मंगलेश के बड़े भाई कीर्तिवर्मन के परिवार का हो, कारण कि मंगलेश अपने बड़े भाई कीर्तिवर्मन का बड़ा ही सम्मान करता था। शिलाभिलेख में मंगलेश ने इस गुफा का समस्त वैभव अपने अग्रज को ही समर्पित किया है। गुफा के निकट ही एक वाराह प्रतिमा है।

गुफा के निकट ही वाराह की प्रतिमा स्थापित करना, सम्राट द्वारा अपने ईष्ट के समीप स्वयं को प्रतिस्थापित करने वाली बादामी की यह परम्परा आगे चलकर, ''महाबलीपुरम'' में वाराह के निकट पल्लव राजा नृसिंहवर्मन पिता महेन्द्रवर्मन और पितामह सिंहविष्णु की सपत्नीक आकृतियाँ उत्कीर्ण करने में यही परम्परा विकसित हुई।

बादामी गुफा के अन्य पैनलों में कुछ खण्डित चित्र बचे हैं, जिनमें ''आकाशगामी विद्याधर'' चित्र की पृष्ठभमि में उड़ते हुए बादल, उड़ते हुए विद्याधर के युगल चित्र, आदि भावपूर्ण मुद्रा में अंकित हुए हैं। एक स्थान पर स्तम्भ का सहारा लिए एक ''विचारमग्न विरहणी'' की आकृति भी अंकित है। जिसकी आँखों और शारीरिक मुद्रा से गहरी वेदना व्यक्त होती है। यह चित्र दर्शक में भावोत्पन्न करने में विशेष महत्व रखता है।

चित्रण विधान

बादामी चित्रों का चित्रण विधान बाघ से मिलता–जुलता है, किन्तु अभिव्यक्ति पूर्ण ये चित्र बहुत श्रेष्ठ है। आकृति निर्माण में कुछ अनुपातहीनता अवश्य है, फिर भी भावाभिव्यक्ति में ये कोई कभी नहीं रखते हैं। वेशभूषा, मुद्राओं और संयोजन में बदामी गुफा के चित्रों पर अजन्ता का प्रभाव है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अजन्ता गुफा चित्रों की विषय वस्तु क्या है ?
2. चैत्य और विहार से क्या अभिप्राय है ?
3. गुफा संख्या 1 में कौन सा चित्र प्रसिद्ध है ?
4. जातक कथाओं से क्या अभिप्राय है ?
5. राहुल समर्पण का दृश्य कौनसी गुफा में चित्रित है ?
6. अजन्ता में प्रयुक्त अलंकरणों में किन–किन को स्थान दिया गया है ?
7. अजन्ता भित्ति चित्रण किस पद्धति में किया गया है ?
8. बाघ गुफायें कितनी है ?
9. बादामी की गुफा किस राज्य में है ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. अजन्ता गुफा चित्र जोगीमारा गुफा चित्रों का ही सुधरा हुआ रूप है। स्पष्ट कीजिए।
2. अजन्ता गुफाओं का परिचय देते हुए प्राप्त चित्रों की विशेषतायें बताइये।
3. अजन्ता गुफाओं का समय, चित्रण पद्धति एवं मुख्य चित्रों पर अपने विचार व्यक्त कीजिये।
4. बाघ गुफा में प्राप्त चित्रों पर प्रकाश डालिए।
5. बादामी की गुफाओं में प्राप्त चित्रों पर लेख लिखिये।

अध्याय

7

पाल एवं अप्रभ्रंश/जैन शैली

दूसरी सदी ईसा पूर्व से 7वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक भारतीय चित्रकला की प्राचीन परम्परा हमें भित्ति चित्रों के रूप में अजंता, ऐलोरा, बाघ, बादामी आदि गुफा मंदिरों में देखने को मिलती है। भित्तिचित्रण की समृद्ध परम्परा के पश्चात संधिकाल में स्वतंत्र स्थापत्य निर्माण के साथ–साथ एक नवीन चित्रशैली का उदय हुआ, जो 9वीं सदी से 15वीं सदी तक के लम्बे समयान्तराल के कला स्वरूप पाल शैली और प्राकृत (अपभ्रंश) शैली के रूप में मुखरित हुआ। पूर्वमध्यकालीन चित्रकला का इतिहास उत्थान और पतन दोनों ही दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण है। एक ओर बाह्य आक्रमणों की शुरूआत और स्थानीय शासकों की साम्राज्यवादी सोच के फलस्वरूप प्राचीन भारतीय कला परम्परा का पतन हुआ लेकिन यदि हम बाह्य आक्रमणों के प्रभाव का सकारात्मक पक्ष देखें तो इस समय सामाजिक एवं धार्मिक सन्दर्भों में नवीन जन चेतना का संचार हुआ जो कला संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्द्धन का आधार बना। पूर्व मध्यकालीन धार्मिक दृष्टिकोण स्वतंत्र मंदिर निर्माण, मूर्तन का आधिक्य और साहित्य–चित्रण में सहचर्य एक नवीन परिवेश में मुखरित हुआ जो पोथी चित्रण के स्वरूप में सामने आया।

उत्तरी भारत में बाह्य आक्रमणों के कारण कला एवं संस्कृति का अप्रत्याशित विघटन सर्वविदित है। इस अप्रत्यशित विघटन से बचाव और धर्म के संरक्षण के मध्य नजर उत्तरी भारत में साहित्य पर आधारित पाल और अपभ्रंश नामक दो शैलियों का विकास हुआ। धार्मिक संदर्भों को भाषायी जनसंचार के साथ दृष्टांत चित्रण के महत्व को रेखांकित करती यह पोथी चित्र शैलियाँ कालान्तर में मध्यकालीन भारतीय चित्रकला का मूल आधार बनी। बौद्ध और जैन धर्म मतावलम्बियों द्वारा विकसित दोनों धार्मिक शैलियाँ संयोजनात्मक पक्ष, रंगाकन, तकनीक और आकार आलेखन की दृष्टि से समान है। मात्र विषयगत भिन्नता इनको पाल व प्राकृत (जैन) में विभक्त करती है।

पाल शैली (9वीं सदी से 12वीं सदी तक)

8वीं सदी के उत्तरार्द्ध में भित्ति चित्रण परम्परा के अपकर्ष (पतन) के फलस्वरूप भारत के उत्तरी पूर्वी राज्य बंगाल–बिहार और पश्चिम भारत के गुजरात एवं मालवा के मैदानी क्षेत्रों में कला का लघुचित्रण स्वरूप सचित्र पौथीयों में परिलक्षित हुआ। हर्ष के पश्चात मगध एवं बंगाल पर पाल राजवंश का शासन स्थापित हुआ। इस वंश के राजा धर्मपाल जो धार्मिक प्रवृत्ति, दूरदर्शी और कला का आश्रयदाता था, जिसने विक्रमशिला विश्वविद्यालय का निर्माण करवाया। इसके पश्चात् उसका पुत्र देवपाल मूर्ति, वास्तु और चित्रकला का महान उन्नायक सिद्ध हुआ। इसी समय सारनाथ, कुशीनगर, नालन्दा आदि स्थानों पर मूर्तन और स्थापत्य के सुन्दर उदाहरण दृष्टव्य होते है। अन्य शासकों ने भी इस क्षेत्र में कला को संरक्षण प्रदान कर सांस्कृतिक विरासत को हरितमायुक्त बनाया।

पाल शैली का नामाकरण

16वीं सदी के इतिहासकार–लामातारानाथ के अनुसार भारत में दो शैलियां मुख्य थी। एक पूर्वी शैली और दूसरी पश्चिमी शैली। भारत के पूर्वी प्रान्त बंगाल एवं बिहार में पाल राजाओं द्वारा बौद्ध धर्म से सम्बन्धित विषयों के सचित्र ग्रन्थ पाल शैली में मिलते है। इस शैली के चित्रकार धीमन और वितपाल ने उत्कृष्ट कार्य कर पाल शैली को उत्कर्ष पर पहुंचाया। बिहार, उत्तर प्रदेश, बंगाल, उड़ीसा, नेपाल, तिब्बत आदि क्षेत्रों से प्राप्त ग्रंथों – प्रज्ञापारमिता, साधनामाल, पिंगल मत, नन्दाव्यूह, महामयूरी आदि के आधार पर इसको प्रादेशिकता की बजाय पाल शैली के नाम से पुकारा जाने लगा, जो तर्कसंगत जान पड़ता है।

विशेषताएँ

तकनीक और विषय वस्तु

लघुचित्र शैली परम्परा का प्रारम्भ पोथी चित्रण से माना जाता है। सर्वप्रथम चित्रण माध्यम के रूप में पाल शैली में बौद्ध धर्म के चित्र ताड़पत्र पर सृजित किये गये और यही धर्म के प्रसार–प्रचार के प्रमुख माध्यम भी बने। ताड़ पत्रों की आकार सीमितता के कारण चित्र एक निश्चित आकार में ही बने जो 2¼ ईंच × 22¼ ईंच आकार में काष्ठपटीकाओं के मध्य सुरक्षित रखे जाते थे। इन चित्रों में विषयवस्तु के रूप में बौद्ध धर्मों से सम्बद्ध साहित्य जैसे प्रज्ञापारमिता, साधनमाला, पिंगलमत, नन्दाव्यूह, नित्यहिनकातिलक, महामयूरी आदि ग्रन्थों की सचित्र रचना महत्वपूर्ण है। इनके अलावा बुद्ध जन्म, जातक कथाएं, बुद्ध चरित्र, देवी देवताओं का चित्रण देखने को मिलता है।

रूप–अन्तराल

ताड़पत्रों के सीमित आकार के कारण पाल शैली के चित्रों में संयोजन की दृष्टि से चित्रतल को प्रायः दोनों ओर लम्बवत तथा मध्य में आलेख्य स्थान निश्चित किया जाता था। मध्य में मुख्य दैवी आकृति अन्य सहयोगी आकृतियों से संयोजित की जाती थी। चित्रित आकृति के दोनों ओर स्याही से सुन्दर लिपि में कथानक का लेखन और अंतिम किनारे अलंकृत हाशियों से सुसज्जित किये जाते थे। संयोजन सरल एवं संतुलित है जहाँ रूप एवं आकारों का आधिक्य नहीं है। वृक्षों में कदली व नारियल का अंकन और हाशियों को ज्यामितिय आकारों, बेलबूटों तथा पुष्पों से अलंकृत किया जाता था।

वर्ण–विधान

ताड़ पत्रीय चित्रों में मुख्यतः प्राथमिक विशेषता वर्ण–विधान की प्रतीकात्मक रंग संगति रही है। लाल रंग की प्रधानता लिए रंगतों में सिंदूरी हिंगूली, गुलाबी, नीले में लाजवंती, नील और फाखताई रंगते पीले, हरे श्वेत व श्याम रंगों के सहयोग से चित्र को अधिक प्रभावशाली बनाती है। प्रतीकात्मक परिप्रेक्ष्य में हरा रंग वर्षा तथा सम्पन्नता का प्रतीक और लाल रंग उत्तेजना एवं भाव प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

आकृति विधान

आकृतियां अजंता की भांति लोच एवं माधुर्य के स्थान पर चित्र स्थान की सीमितता के कारण एक निश्चित मुद्रा में चित्रित की जाने लगी, किन्तु विषयगत आग्रह अजंता से प्रेरित रहा। विशेष रूप से बुद्ध को अभिप्राय मूलक स्वरूप में बोधिसत्व रूप – पद्मपाणि, अवलोकितेश्वर, वज्रपाणि और मैत्रेय बुद्धा के रूप में चित्रित किया गया है वहीं देवियों के रूप में तारादेवी, मजुश्री, मायादेवी आदि आकृतियों का साम्य और भयंकर मुद्राओं में अंकन दृष्टव्य है।

चित्र 1 – वरदान देते बोधिसत्व, अष्ठशस्त्रिका प्रज्ञापारमिता सचित्र पांडुलिपी पाल शैली, 12वीं शताब्दी

चित्र 2 – अष्ठशस्त्रिका प्रज्ञापारमिता सचित्र पांडुलिपी, पाल शैली, 12वीं शताब्दी

चित्र 3 – वज्र के साथ कमल पर विराजमान ममाकी, पाल शैली, 11वीं शताब्दी

वज्र के साथ कमल पर विराजमान ममाकी, चित्र 3

चित्र में ममाकी को वज्र को धारण किए हुए कमल पर विराजमान दिखाया गया है। संयोजन स्थान की सीमितता के कारण लम्बवत चित्रित किया गया है। हाशियें के दोनों ओर स्वर्ण पृष्ठभुमि में आलेख्य से सुसज्जित किया गया है। ममाकी को नील वर्ण में संयोजन के मध्य में कमल पुष्प पर विराजमान दिखाया गया है। ममाकी को अधिक प्रभावशील दिखाने के लिए श्वेत पृष्ठभूमी में चित्रित किया है। दोनों हाथ की मुद्राएँ भंगिमा पूर्ण, चेहरे की सौम्य भाव भंगिमा, गुठली के समान चिबुक, पतली व लम्बी नासिका, सवाचश्म चेहरा, उभार लिए वक्ष स्थल, परवल की फांक के समान आँखें, भौंहे ऊपर की ओर तनी हुई, पैरों की अंगुलियां सेम की फली की भांति चित्रण किया गया है। रंग विधान में लाल पृष्ठभुमि में नील वर्ण का प्रयोग किया गया है। आलेख्य को स्वर्ण पृष्ठभुमि पर काली स्याही से सीमांकित किया गया है। रंगों का प्रयोग सपाट व समतल हुआ है। यह चित्र पाल शैली के चित्रों में से उत्कृष्ठ चित्र है।

अपभ्रंश शैली (जैन शैली) (11वीं सदी से 15वीं सदी तक)

10वीं सदी से 15वीं सदी के बीच अपभ्रंश शैली का विकास जैन धर्म के श्वेताम्बर सम्प्रदाय (मत) को मानने वाले साधु तीर्थंकरों एवं अनुयायीयों के द्वारा किया गया। इस शैली में निर्मित अधिकांश चित्र जैन धर्म से सम्बन्धित रहे और इनकों बनाने वाले चित्रकार भी संभवतः जैन साधु रहे होंगे। उपलब्ध साहित्यिक साक्ष्यों, मूर्तन, एलोरा एवं दक्षिणी भारत के मंदिरों के भित्तिचित्रों के आकार–प्रकार के द्वारा यह बात स्पष्ट होती है कि बाह्य आक्रमणों के फलस्वरूप धार्मिक प्रचार–प्रसार के चित्रण माध्यम के रूप में विकृत शारीरिक भंगिमाओं एवं प्रतीकात्मक रंगाकन से युक्त एक नवीन शैली का उदय हुआ जो जैन (अपभ्रंश) शैली के नाम से पुकारी जाने लगी।

चित्रकला में रेखीय विकृतता, आकारगत रूपविकार सम्भवतया पूर्व मध्यकालीन जैन मंदिरों में उत्कीर्ण मूर्ति शिल्पों से प्रेरित जान पड़ता है। इन मंदिरों में मूर्ति शिल्पों में अतिभंग, कोणिय तराश, वक्षस्थलों में कुदक सदृश्य उभार, पतली नासिका, छोटी चिबुक, क्षीण कटि, भारी नितम्ब एवं लम्बवत विशाल नेत्रों का मूर्तन इस काल की कला की विशेषता रही। इसके पश्चात तीर्थंकरों की प्रतिमाओं पर आँख ऊपर से धातुनिर्मित या रत्नजड़ित लगायी जाने लगी। मूर्तन के यही अतिशयात्मक रूप चित्रकला में अपभ्रंश शैली के रूप में मुखरित हुआ। इस शैली के विकास का मुख्य आधार जैन धर्म को मानने वाला एक नवीन वर्ग बना। गुजरात एवं मालवा के क्षेत्रों में उभरे इस वर्ग का व्यापार एवं वाणिज्य पर आधिपत्य सा हो गया। जिन्होंने जैन धर्म के प्रचार–प्रसार की दृष्टि से अधिकाधिक धार्मिक साहित्य को चित्रित करवाकर जैन उपाश्रयों, मंदिरों और ज्ञान भण्डारों को भेंट स्वरूप प्रदान किये। धार्मिक साहित्यों के चित्रण की परिपाटी 14वीं सदी के अंत तक आते–आते परिपक्व अवस्था में पहुंच कर क्षेत्रीय विस्तार के कारण गुजरात से बाहर भी विकसित हुई। कालान्तर में उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर ही इसके नामाकरण के प्रति मतभेद प्रकट हुए।

शैली की खोज एवं नामाकरण

अपभ्रंश चित्रण परम्परा की खोज के संदर्भ में 1913 ई. में हरमेन ग्वेट्स का लेख महत्वपूर्ण है जो बर्लिन संग्रहालय में सुरक्षित कल्पसूत्र के चित्रण विधान को रेखांकित करता है। इसके पश्चात् 1924 में बोस्टन संग्रहालय के कल्पसूत्र पर आधारित डॉ. आनन्द कुमारस्वामी, 1925 ई. में एन.सी. मेहता, 1928 ई. में अजीत घोष और 1929 ई. में डॉ. पर्सी ब्राउन के लेखों और शोध अध्ययनों से इस शैली को एक नया विस्तार मिला। इसके पश्चात डॉ. ओ.सी. गांगुली, हीरानन्द शास्त्री, विजयमुनि, डॉ. मोतीचन्द्र खजांची, रायकृष्ण दास, कार्ल खण्डालवाला और सरयुदोषी आदि विद्वानों के लेखों एवं पुस्तकों के द्वारा इस चित्रांकन परम्परा को कला इतिहास में एक उचित स्थान प्राप्त हो सका। लेकिन इसके नामकरण को लेकर विद्वानों में मतभेद विद्यमान रहे।

जैन धर्म के श्वेताम्बर सम्प्रदाय से संबद्व सचित्र ग्रंथें में ताड़पत्रीय ग्रंथ, कागज ग्रंथ और कपड़े के पट चित्र पाटन, खम्भात, अहमदाबाद, जैसलमेर, बीकानेर एवं जोधपुर आदि स्थानों के जैन उपाश्रयों, मंदिरों एवं ज्ञान–भण्डारों में सुरक्षित है। इनमें उपलब्ध सचित्र ग्रंथों की ताड़पत्रीय श्रृंखला में 11वीं सदी से 12वीं सदी के ग्रंथों में प्रमुखतः 1. निशीथ चूर्णी 1100 ई., 2. ज्ञात सूत्र 1127 ई., 3. अंग सूत्र 1127 ई., 4. कालकाचार्य कथा – 1285 ई., 5. औधनिर्युतिवृति 1650 ई. जैसलमेर, 6. महावीरचरित्र 1236 ई., 7. त्रिष्ठाश्लाका चरित 1242 ई. आदि। कालकाचार्य कथा, कल्पसूत्र और सुपासनाचर्यम आदि ग्रंथों के आधार पर डॉ. हरमेन ग्वेट्स डॉ. आनन्द कुमारस्वामी, अजीत घोष, साराभाई नवाब और पर्सीब्राउन आदि ने इसे जैन शैली के नाम से सम्बोधित किया लेकिन कालान्तर में अजैन ग्रंथों में बालगोपाल स्तुति, दुर्गासप्तशती, रतिरहस्य, लोरचंदा, चौरपंचासिक एवं गीतगोविन्द की उपलब्धता और पाटन, खम्भात से प्राप्त पटचित्र व अहमदाबाद से प्राप्त एन.सी. मेहता के निजी सग्रंह 'से प्राप्त बसंत–विलास' नामक चित्र के आधार पर इसे एन.सी. मेहता, डॉ. मोतीचन्द्र खजांची आदि ने गुजरात शैली के नाम से

सम्बोधित किया। लेकिन इसके पश्चात जैन और अजैन ग्रंथों की विभिन्न प्रतियाँ गुजरात के अतिरिक्त मालवा, मांडू, जौनपुर, अवध, काशी और भारत के अन्य पश्चिमी भागों से उपलब्ध तथ्यात्मक साक्ष्यों के आधार पर डॉ. आनन्द के. कुमार स्वामी, अजीत घोष, कार्लखण्डालावाला, सरयूदोषी आदि ने इसे पश्चिमी शैली के नाम से स्थापित करने की पैरवी की।

नामाकरण से उत्पन्न विरोधाभास के प्रति विद्वानों के एक मत होने का एक मात्र आधार शैलीगत गुणों की समानता एवं विषयगत एकरूपता अर्थात विकृत अंग–प्रत्यंगों से युक्त भावहीन मुद्राओं, शारीरिक भंगिमाओं में अतिभंग और एक अजीब सा अधोपतन व अस्थिरता शैलीगत विशेषता बन गई, जिसके आधार पर रायकृष्णदास, ओ.सी. गांगुली और अन्य विद्वानों ने इसको अपभ्रंश शैली के रूप में नामित करने का प्रस्ताव रखा जिसको सभी ने एक मत से स्वीकार किया। उसके पश्चात यह शैली अपभ्रंश के नाम से विख्यात हुई।

विशेषताएँ

1. इस शैली के चित्र आकार संयोजन की दृष्टि से पाल शैली के समान अर्थात स्थान की सीमितता के कारण लम्बवत आलेख्य स्थान के मध्य में आकार रचना, दोनों ओर सुन्दर लिपि और किनारे सुन्दर हाशियों के रूप में सुसज्जित चित्रित किये जाते थे।
2. चित्रण माध्यम में ताड़पत्र, कागज एवं कपड़े के पट्ट व काष्ठपट्टिकाओं का प्रयोग हुआ है।
3. चित्र में आकृतियाँ शारीरिक दृष्टि से अनुपातहीन बनी जिनमें विचारमग्न जकड़ी आसन मुद्राएँ, भावशून्य भंगिमा, छोटी चिबुक, पतली नासिका, सवाचश्म चेहरे और परवल की फाँक सी आँख और परली आँख बाहर निकली हुई, अत्याधिक उभरा वक्ष स्थल, क्षीणकटि, भारी नितम्ब और कमजोर हस्तमुद्राओं से युक्त चित्रित किया गया है।
4. रंग–विधान में लाल पृष्ठ भूमि पर पीली और सिंदूरी आकृतयों को काली स्याही से सीमांकित किया गया है। रंगों का प्रयोग सपाट समतल हुआ है।
5. जैन शैली के प्रारम्भिक चित्रों में रूप–अंतराल का अभाव है लेकिन उत्तरकाल के चित्रों में वास्तु एवं प्रकृति चित्रण का प्रतीकात्मक अंकन हुआ। हाशियों में स्वर्ण रंगों का प्रयोग होने लगा। चित्रों का आकार एक निश्चित स्वरूप लिए हुये अर्थात् (10" X 3") रहा।
6. चित्रों की विषयवस्तु मुख्यतः जैन धर्म से सम्बन्धित रही। लेकिन उत्तर कालीन चित्रों में अजैन विषयक सचित्र ग्रंथों की रचना भी विशेष उल्लेखनीय है।

अप्रभ्रंश शैली के प्रमुख चित्र

चित्र 4 – गणधर, अप्रभ्रंश शैली

उपरोक्त चित्र में गणधर सुधरमा प्रवचन देते हुए चित्रित किये गये है। भिक्षु को सफेद वस्त्र पहने हुए दिखाया हैं। ऊपर मोर पक्षी बैठे हुए हैं। नीचे कमल पुष्प हैं सिर के पीछे भी आभामण्डल के लिए कमल पुष्प दिखाया गया हैं। पृष्ठभूमी में लाल रंगो का प्रयोग अधिक किया गया हैं। गणधर को पीले रंगो से चित्रित किया गया हैं। लाल पृष्ठभुमि में पीले, नीले व सफेद रंगों की प्रधानता है। चित्र की विषय वस्तु जैन धर्म से सम्बन्धित है। चित्र में आकृतियाँ शारीरिक दृष्टि से अनुपातहीन बनी है, विचारमग्न जकड़ी हुई आसन की मुद्राएँ चित्रित की गई है। अग्रभुमि में भी कमल पुष्प को लालिमा लिए हुए आसन के नीचे संयोजित किया है। हाशिए में नील वर्ण से बेल–बूटों को समानुवर्तिता लिए हुए सपाट व समतल रंगों से सुसज्जित किया गया है। संयोजन के मध्य भाग में मुख्य मुद्रा की रचना की गई है। मुख्य आकृति के अनुपात में सेवकों को छोटा चित्रित किया गया है। गणधर के चेहरे की भंगीमा भावशुन्य, कानों में लम्बे कुण्डल, शरीर पर अधोवस्त्र को सपाट रंगों द्वारा चित्रित किया गया है।

चित्र 5 – शिशु जिना महावीर : चित्र कल्पसूत्र पांडुलिपी से 14 वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध

शिशु जिना महावीर की घुति नामक चित्र कल्पसूत्र पांडुलिपी से 14 वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध में पश्चिमी भारतीय शैली का हैं। यह एक लोकप्रिय विषय जन्म के समय महावीर का स्नान पर आधारित हैं। जिना को दो घुटना टेककर बैंल की जोड़ी के रूप में दिखाया हैं। शिशु पीठासीन देवता इन्द्र की गोद में बैठा हैं। दो परिचर देवताओं ने अपने पहले स्नान की प्रत्याशा में हाथों के उपर द्युत वाहिकाओं को पकड़ रखा हैं।

महत्वपूर्ण बिंदु

1. लघुचित्रण परम्परा का प्रारम्भ पाल शैली से माना जाता है। यह पूर्णतया ताड़पत्रीय चित्रण परम्परा थी।
2. पाल राजवंश से शासक धर्मपाल एवं देवपाल ने इस शैली को उत्कर्ष पर पहुँचाया। पाल शैली के प्रमुख चित्रकारों में धीमन और वितपाल थे।
3. पाल शैली के चित्रित ग्रंथों ने बौद्ध धर्म के प्रमुख ग्रंथ प्रज्ञापारमिता, पिंगलमत, साधनमाला, महामयूरी, बहुचरितम, नन्दाव्यूह, ममाकी, हीरूका आदि है।
4. पाल शैली की रंग योजना सरल, प्राथमिक एवं प्रतीकात्मक है।
5. अपभ्रंश शैली के रूप में जैन शैली का उद्भव जैन मुनियों एवं अनुयायी के द्वारा हुआ जो कालान्तर में जैन, पश्चिमी एवं अपभ्रंश शैली के नाम से पुकारी जाने लगी।
6. अपभ्रंश शैली में ताड़पत्रीय ग्रंथों के अलावा कागज, कपड़े एवं काष्ठ पट्टिकाओं पर भी चित्रण हुआ।
7. जैन शैली के नामकरण को लेकर विद्वानों में मत भिन्नता दृष्टव्य है लेकिन 'अपभ्रंश' नाम से प्रस्ताव को सभी ने स्वीकार किया।
8. शैली की मुख्य विशेषताओं में सवाचश्म चेहरे में परली आँख को पूर्ण बनाया गया तथा आकृतियां अतिभंग लिए, कोणीय तराश युक्त बनायी गई।
9. रंगों का प्रतीकात्मक अंकन एवं सपाट प्रयोग इस शैली को आधुनिक शैली के समकक्ष लाता है। लाल पीले, नीले, काले एवं स्वर्ण रंगों का चित्र में बाहुल्य है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. पाल शैली के प्रमुख संचित्र ग्रंथों के नाम लिखिए।
2. पाल शैली के चित्रण माध्यम के रूप में क्या प्रयुक्त हुआ?
3. अपभ्रंश शैली को अन्य किन नामों से पुकारा जाता है?
4. अपभ्रंश शैली में चित्रित पांच संचित्र ग्रंथों के नाम लिखो।
5. अपभ्रंश शैली में चित्रित तीन अजैन ग्रंथों के नाम लिखिये।
6. ताड़पत्रीय चित्रों की विशेषताएं बताईये।
7. अपभ्रंश शैली की विशेषताएं लिखो।
8. पाल शैली के सचित्र ग्रंथों का उल्लेख कीजिये।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के माध्यम के रूप में पाल शैली की समीक्षात्मक व्याख्या कीजिये।
2. अपभ्रंश शैली के नामाकरण को लेकर मत भिन्नता पर समीक्षात्मक टिप्पणी कीजिये।
3. अपभ्रंश शैली के सचित्र ग्रंथों में विषयवस्तु की व्याख्या कीजिये।
4. पाल शैली की तकनीक, विषयवस्तु और रंगाकन पद्धति पर अपने विचार व्यक्त कीजिये।

खण्ड–स

इकाई–3

सिन्धुघाटी मूर्ति शिल्प, बौद्ध, जैन तथा हिन्दू मूर्ति शिल्प

अध्याय

8

सिन्धुघाटी सभ्यता के मूर्ति शिल्प – मोहनजोदड़ो और हड़प्पा 2500 ई.पू. से 1500 ई.पू.

कला का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना मानव सभ्यता का है। मानव सभ्यता का ज्ञान हमें उनके द्वारा बनाये चित्र एवं मूर्ति से होता है। अनुमानतः मानव किसी शिलाखण्ड या अपने निवास स्थल गुफा में बैठे जाने–अनजाने किसी पत्थर द्वारा रेखा खीचकर चित्र का सृजन किया, जो द्वि–आयामी है। जिसमें कालान्तर में छाया प्रकाश द्वारा गढ़नशीलता उत्पन्न कर त्रि–आयामी भ्रम को आभासित किया जा सका है। उसी प्रकार आदिम मानव ने किसी ठोस पदार्थ के स्वभावानुसार गढ़कर, खोदकर, उभारकर; ठोककर और पीटकर उन्हे त्रि–आयामी रूप प्रदान किया, जो लम्बाई चौड़ाई और गहराई के साथ अन्तराल में स्थान घेरता है, उसे मूर्ति के रूप स्वीकारा गया।

रायकृष्णदास के अनुसार सभी प्राकृतिक तथा कृत्रिम धातु , पाषाण, काँच, मिट्टी, आदि अन्य माध्यम द्वारा उनके स्वभाव के अनुसार गढ़कर, खोदकर, उभारकर; कोरकर पीटकर, हाथ से या औजार के माध्यम से डौलियाकर, ठप्पा करके और साँचा छापकर उत्पन्न की हुई त्रि–आयामी आकार को मूर्ति कहते हैं। प्रारम्भ कालीन मूर्तिकला के कुछ उदाहरण है जिनमें हाथी दाँत पर खुदा हुआ एक हाथी का चित्र, घोड़े की प्रतिमा और हड्डी पर बनाया गया एक टट्टू की आकृति है, जिन्हे मूर्तिकला की जन्मदात्री कह सकते है और मूर्तिकला का इतिहास आरम्भ होने की जानकारी भी मिलती है। मानव द्वारा मूर्ति निर्माण के पीछे दो प्रकार की मनोवृत्तियॉ देखी जा सकती हैं–

1. अपने इर्द–गिर्द की स्मृति एवं उस पर अपनी विजय का इतिहास बनाये रखना
2. अपनी अमूर्त भावना को मूर्त रूप प्रदान करना।

भारत में मूर्तिकला के प्रमाणिक अवशेष सिन्धुघाटी से उपलब्ध हुए हैं। जिससे भारतीय मूर्तिकला के निर्माण में कलाकार की कौशलता, तकनीक और कला साधना का आंकलन किया जा सकता है। वास्तव में कला के विभिन्न माध्यमों में मूर्तिकला निसंदेह सर्वाधिक सशब्द और बहुआयामी है, जिसमें धर्म की सदैव प्रधानता रही है। मनुष्य ने प्रकृति की प्रत्येक वस्तु को देवत्व के रूप माना तथा उसे मूर्ति के माध्यम से अमूर्त को मूर्त रूप प्रदान कर मूर्ति को पूजा की परम्परा के साथ जोड़ा। भारत में मूर्ति पूजन की परम्परा का ज्ञान भी सिन्धुघटी सम्यता से प्राप्त मातृ देवी की मृण मूर्तियों के अवशेषों से ही होता है। भारत में इस प्रकार की मूर्तियॉ मोहनजोदड़ो, हडप्पा, चन्हूदड़ो, कालीबंगा, लोथल, रोपड़, रंगपुर और आहड़ प्रमुख स्थलो की खुदाई से प्राप्त हुई है।

सिन्धुघाटी सभ्यता की मूर्तिकला का काल एवं विकास

सिंधु घाटी सभ्यता विश्व की प्राचीन नदी घाटी सभ्यताओं में से एक प्रमुख सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के नाम से भी जानी

जाती है। सिंधु घाटी सभ्यता के काल को निर्धारित करना निःसंदेह बड़ा ही कठिन काम है फिर भी विभिन्न विद्वानों ने इस विवादास्पद विषय पर अपने विचार व्यक्त किए। हड़प्पा सभ्यता का काल निर्धारण मुख्य रूप से मोसोपोटामिया में 'उर' और 'किस' स्थलों पर पाए गए हड़पाई मुद्राओं के आधार पर किया गया। इस क्षेत्र में सर्वप्रथम प्रयास जान मार्शल द्वारा किया गया तथा उन्होने 1931 ई. में इस सभ्यता का काल 3250 ई. पूर्व से 2750 पूर्व निर्धारित किया। लेकिन ह्वीलर ने इसका काल 2500 से 1500 ई. पूर्व माना है। काल निर्धारण की रेडियोधर्मिता (कार्बन डेटिग C-14) विधि का आविष्कार होने पर इस विधि से सभ्यता का काल निर्धारण पर पुनः विचार किया गया जिसमें–

1. पूर्वी हड़प्पा चरण लगभग ई. पूर्व 3500 से 3600
2. परिपक्व हड़प्पा चरण लगभग ई. पूर्व 2600 से 1900
3. उत्तर हड़प्पा चरण लगभग ई. पूर्व 1900 से 1300

उपरोक्त तीनों सम्भावित कालखण्डों और हड़प्पा से उपलब्ध अवशेषों के नवीन विश्लेषणात्मक वैज्ञानिक पद्धति कार्बन सी–14 के आधार पर हडप्पा सभ्यता का प्रमाणिक काल ई. पूर्व 2300 से ई. पूर्व 1750 निर्धारित किया गया है।

सिंधु घाटी के नगरों की विधिवत खुदाई का कार्य बीसवी शती में ही आरंभ हो गया। श्री आर. डी. बनर्जी तथा रायबहादुर, दयाराम सहानी ने वर्ष 1921–22 मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा के टीलों का महत्व पहचाना और 1921 ई. में सर जोन मार्शल के निरीक्षण में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग ने इसका उत्खनन प्रारम्भ किया। मोहनजोदड़ो के टीलों का 1922 ई. में खोजने का श्रेय श्री राखाल दास बनर्जी को है जिनके नेतृत्व में पाकिस्तान के सिन्ध प्रांत के लरकाना जिले के मोहनजोदड़ो में स्थित एक बौद्ध स्तूप की खुदाई के समय एक और स्थान का पता चला इस नवीनतम स्थान के प्रकाश में आने पर ये मान लिया गया कि शायद यह सभ्यता सिंध घाटी तक सीमित है अतः इस सभ्यता का नाम सिंधु घाटी रखा गया। इससे पूर्व 1927 ई. में हडप्पा नामक स्थान पर उत्खनन होने के कारण सिंधु सभ्यता का नाम हड़प्पा सभ्यता पड़ा। लेकिन कालांतर में ' स्टूअर्ट पिग्गाट' ने हड़प्पा एवं मोहनजोदडों को एक विस्तरित साम्राज्य की जुड़वा राजधानी बताया। अतः सिंध नदी के किनारे इसके प्रमुख केन्द्र होने के कारण इस सभ्यता का नाम सिंध घाटी सम्यता नाम दिया गया।

यह सभ्यता सिन्ध नदी के काँठे से और उसके पश्चिम बलूचिस्तान तक तथा संभवतः इधर गंगा, यमुना एवं नर्मदा के काँठे तक व्यापत थी। जहाँ मानव सभ्यता की एक विकसित अवस्था प्राप्त हुई हैं। यहाँ मकान पक्की ईटों के बनाये जाते थे, इन बस्तियों के रास्ते चौड़े और सु–विभाजित हैं, नालियों का बहुत अच्छा प्रबंध है। यहाँ के अवशेषों में विशाल जलकुण्ड उल्लेखनीय है, जिसका आकार 39 फुट लम्बा, 23 फुट चौड़ और 8 फुट गहरा है। इस स्नानागार के तीन ओर बरामदे तथा पीछे की ओर कई कोठे बने हुए हैं।

चित्र 1 – मोहनजोदड़ो का विशाल स्नानागार

यहाँ निवास करने वालों का व्यापारिक संबंध लघु एशिया तक था। वे अच्छे पोत के सूती कपड़े बनाते थे जो उनका मुख्य व्यापार था। इस सभ्यता का वहाँ की सभ्यता से बहुत कुछ समानता के कारण कुछ पंडितों की तो यहाँ तक धारणा है कि यही सभ्यता अपने भारतीय दायरे से लेकर लघु एशिया तक फैली हुई थी।ये लोग सोने के कलापूर्ण आभूषण बनाकर पहनते थे एवं उपरत्नों के सुंदर मणी बनाकर धारणा भी करते थे। लोहे का आविष्कार उस समय तक शायद नहीं हुआ था इसलिए ताँबे का उपयोग बड़ी कुशलता से करते थे, जो मूर्तिकला के अवशेषों से ज्ञात होता है।

मूर्तियाँ

मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई से विविध माध्यमों में सृजित मूर्तियाँ प्राप्त हुई, जिनमें पत्थर, मिट्टी, काँसे व पीतल आदि की हैं यहां से प्राप्त होने वाली मूर्तियों में प्रमुख निम्न है–

1 दाड़ी वाले योगी की मूर्ति
2 पुरूष धड़
3 नर्तकी की मूर्ति (पत्थर)
4 नर्तकी मूर्ति (ताम्र)
5 मातृदेवी की म्रण–मूर्तियाँ
6 वृषभ और मोहरें

योगी की मूर्ति

यह एक आवक्ष प्रतिमा है। जो दाड़ी वाले योगी के नाम से जानी जाता है। यह सफेद चूना पत्थर से निर्मित है। इस योगी के छोटी–छोटी मुछें तथा दाड़ी संवार कर बनाई गई है। आंखें अधखुली और मस्तक छोटा व पीछे की ओर ढ़ालू बनाया गया है। जिसका माथा व भुजा आभूषण से अलंकृत है। बांये कन्धे पर से होता हुआ त्रिफुलिया अलंकरण से सज्जित शॉल ओढ़े हुए है। ज़िमर के विचार से यह एक पुजारी की मूर्ति है। गार्डन के मतानुसार इस प्रतिमा पर सुमेरियन अथवा बेबीलोनियन प्रभाव अंकित होता है।

चित्र 2 – योगी की मूर्ति

मानव धड़

पुरूष धड़

यह नग्न युवा पुरूष का धड़ हड़प्पा से प्राप्त हुआ है, जो लम्बवत् खड़ी एक आदर्श पुरूष प्रतिमा है। जो उच्चकोटी की स्वाभाविकता एवं गढ़नशीलता लिए अंकित हैं। लाल बलुआ पत्थर का धड़ 9.2 से.मी. ऊँचा 5.5 से.मी. चौड़ा तथा 3 से.मी. मोटा है। यह शारीरिक रचना एवं सौन्दर्य की दुष्टि से उत्कृष्ट है इस प्रतिमा की सृजनशीलता से कलाकार की कौशलता का अनुमान लगाया जा सकता है।

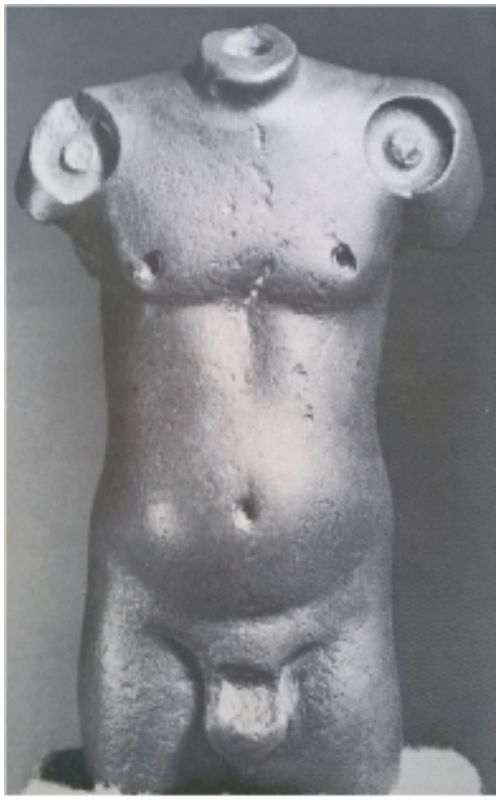

चित्र 3 – पुरूष धड़

नर्तकी धड़

यह प्रतिमा सलेटी पत्थर में निर्मित 10 से.मी. ऊँची व 4 से.मी. चौड़ी तथा 3 से.मी. मोटी, जो हड़प्पा से प्राप्त हुई है। जिसके सिर और हाथ नहीं है। तथा पैर भी आधे टूटे हुए हैं। इसका एक पैर मुड़ा हुआ नृत्य की मुद्रा में अंकित है। जिसमें मूर्तिकार ने नारी के शरीर विन्यास, नितम्ब और क्षीण कटि को संतुलित बनाकर एक अद्भूत नारी सौन्दर्य का सफल सृजन किया है।

चित्र 4 – नर्तकी धड़

ताम्र (Bronzes) की नर्तकी मूर्ति

मोहन जोदड़ो से प्राप्त हुई यह ताम्र की एक अद्‌भुत नर्तकी की मूर्ति जो 10.5 से.मी. ऊँची और 5 से.मी. चौड़ी एवं 2.5 से. मी. मोटी है। जो मूर्तिकला की दृष्टि अद्‌भुत कृति है। इस प्रतिमा के बायें हाथ में कलाई से कोहनी तक चूड़ियां, कड़े आदि पहने हुए है तथा दाहिना हाथ कमर पर रखा है तथा दो–दो कड़े पहने हुए है, जो विश्राम की अवस्था में है तथा शरीर के अनुपात में हाथ व पैर लम्बे है। यह उस समय की उत्तम ढलाई कला एवं कलाकार की कला साधना एवं कौशल का प्रमाण है।

चित्र 5 – ताम्र की नर्तकी मूर्ति

म्रण–मूर्तियाँ

सिन्धु सभ्यता से प्राप्त मृणशिल्प रूप में मातृदेवी की मूर्तियाँ, बर्तन एवं मुहरें, चिड़ियां, पशुओं एवं मानवाकृतियां आदि से तत्कालीन मानव की कला, संस्कृति और दैनिक जीवन की उपयोगी वस्तुओं की जानकारी मिलती है यहाँ मृणशिल्प की उत्कृष्ट तकनीकि के साथ–साथ कलात्मकता एवं सौन्द्रय को भी विशेष महत्व देने की परम्परा का बोध होता है।

मातृदेवी की म्रण–मूर्तियाँ

पाषाण और ताम्र की मूर्तियों के अतिरिक्त अनेक मृण–मूर्तियाँ भी मिली हैं, जिसमें मातृदेवी की मूर्तियाँ भी उत्कृष्ट है। इन मूर्तियों में प्रफुलित और भयानक मुख दिखाये गये हैं। जो आभूषणों से अलंकृत है। ये मूर्तियां केवल धार्मिक आभिप्रायों के लिये ही उपयोग में आने की परम्परा का आभास कराती है।

चित्र 6 – टेराकोटा मातृदेवी की मूर्तियाँ

मोहरें

मोहन जोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई में मुद्रायें और मुहरें बहुत अधिक संख्या में मिली हैं। ये मुद्रायें कुछ हाथी दांत, पकाई मिट्टी तथा नीले या सफेद, विशेष प्रकार के चमकीले पत्थर की हैं। सभी मुहरें ढाई इंच लंबाई चौड़ाई की चौकोर हैं। मोहरों के सपाट धरातल पर प्रायः वास्तविक या काल्पनिक पशुओं की आकृतियाँ उभरी हुई अंकित हैं तथा इन सभी मोहरों पर सिन्धु सभ्यता की तत्कालीन लिपि में कुछ लिखा हुआ है। जिसे अभी तक भी ठीक से पढ़ा नहीं जा सका है।

सिन्धु घाटी की खुदाई से 1200 से अधिक पत्थर की बनाई मोहरें कलात्मक रूपों व लेखों की दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। ये करीब 1 इंच मोटी है। इनके पीछे प्रायः एक अंगूठी नुमा उठान लगी रहती थी जिससे ये धागे में बांधकर अच्छी तरह से प्रयोग में लाई जा सकें। मोहरें वर्गाकार, ढोलनाकार व गोल आकारों में प्राप्त हुई हैं। इन मोहरों पर वृषभ व हिरण का अंकन संयुक्त रूप भी देखने को मिलता है।

इसके अतिरिक्त सिन्धु घाटी से कुछ ताम्र मुद्रायें भी मिली हैं। जो माप में 1.2 0.5 इंच से 1.5 01 इंच हैं। इन पर पशुओं की आकृतियाँ अंकित है। कुछ विद्वानों ने ताम्र मुद्राओं को ताबीज की संज्ञा दी है।

चित्र 7 – मोहरें

एक पशुपति की मुद्रा हड़प्पा से प्राप्त हुई है, इसमें पशुओं से घिरे एक योगी को अंकित किया गया है, जो 5.7 से.मी. लंबी 3. 7 से.मी. चौड़ी तथा 2.5 से.मी. मोटी है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि ये शिव की आकृति है। जिसके सिर पर बड़े–बड़े सींगों वाला मुकुट है। इसके चारों ओर पशु अंकित होने के कारण इसे पशुपति की मुद्रा कहा जाता है। जो उस समय की धार्मिक भावना को प्रकट करती है, पशुओं की मुहरों में वृषभ की मुद्रा मोहन जोदड़ो से प्राप्त हुई, जो तत्कालीन वृषभ की प्रकृति को प्रदर्शित करती है। विशाल वृषभ की बहुत ही सुन्दर आकृति अंकित है। इसे बहुत ही शक्तिशाली और शौर्यपूर्ण दर्शाया गया है।यह मुद्रा 2.5 से.मी. लंबी 2.5 से.मी. चौड़ी तथा 1.5 से.मी. मोटी है।

चित्र 8 – पशुओं के बीच बैठे हुए योगी

मोहन जोदड़ो से एक दो बाघों के मध्य एक मनुष्य की मोहर प्राप्त हुई है, जो राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में संग्रहित है। इसमें एक मानवाकृति दोनों हाथ फैलाये, जिसके दोनों ओर दो बाघ हैं। दोनों बाघों के मुंह खुले हुये हैं। मानव को शक्तिशाली मुद्रा में खड़ा अंकित है। एक अन्य मोहर पर मनुष्य की आकृति वाला बकरा खड़ा है। उसके आगे एक व्यक्ति झुका तथा पीपल की शाखाओं से घिरे किसी देवता की उपासना कर रहा है। कई मुद्राओं पर लिपी अंकित जिसे पढ़ा नहीं जा सका है।

खिलौनें एवं बर्तन

सिन्धु घाटी में धातु तथा पकाई हुई मिट्टी के अनेक खिलौने भी मिले हैं। धातु का ढाला हुआ बैल, पकाई हुई मिट्टी की मातृका देवी, भेड़, कछुआ, बैल तथा बन्दरों आदि के खिलौने भी मिले हैं। रस्सी पर खिसकने वाला बन्दर, गर्दन हिलाने वाला पशु, चिड़िया, गाड़ी आदि। इसके अतिरिक्त सीटी बजाने वाले खिलौने, आलिगंन करते हुए दो बन्दर, चीनी मिट्टी के बने काफी सुन्दर हैं।

चित्र 9 – बैल गाड़ी

मोहन जोदड़ो और हड़प्पा में पक्की मिट्टी के बर्तन का बहुत प्रचलन था। इन पर सुन्दर चित्रकारी भी की जाती थी। ये पात्र दैनिक जीवन के काम में लिए जाते थे और कुछ में शव गाडे जाते थे। ये बर्तन लाल रंग से रंग कर उस पर काली रेखओं से चित्रण करने की परम्परा रही है। इन पात्रों पर की जाने वाली चित्रकारी में फल–पत्तियां, पशु, पक्षी आदि ज्यामितिय आकारों में बनाऐ गये है।

उपयुक्त समस्त कला कृतियों के आधार पर कहा जा सकता है कि मोहन जोदड़ो तथा हड़प्पा के कलाकार काफी निपुण कलाकार थे वे धातु, मिट्टी तथा पत्थर की आकृतियाँ व मूर्तियाँ बड़ी कुशलता से बनाते थे। इनमें स्त्री और पुरूषों के वस्त्रों तथा आभूषणों का भी सुन्दर अंकन हुआ है। यहाँ से प्राप्त आभूषणों के मनकों पर ज्यामीतिय अलंकरण भी बने हैं।

इस प्रकार भारतीय कला के इतिहास में सिन्धुघाटी की सभ्यता का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। जो बैबीलोनियन एवं मिश्र आदि सभ्यताओं के समकालीन भारतीय सभ्यता का बोध कराती है।

चित्र 10 – विभिन्न आकार के मृणपात्र

लोथल

लोथल गुजरात के अहमदाबाद जिले में 'भोगावा नदी' के किनारे 'सरगवाला' नामक ग्राम के समीप स्थित है। इस स्थल की खुदाई श्री 'रंगनाथ राव' के नेतृत्व में 1954–55 ई. की गई। जहाँ दो भिन्न–भिन्न टीले के बजाय पूरी बस्ती एक ही दीवार से घिरी थी, जो छः खण्डों में विभाजित है। लोथल का ऊपरी नगर, जो दुर्ग के नाम से जाना जाता है जो चतुर्भुजाकार था यह पूर्व से पश्चिम 117 मी. और उत्तर से दक्षिण की ओर 136 मी. तक फैला हुआ था।

नगर दुर्ग के पश्चिम की ओर विभिन्न आकार के 11 कमरें बने थे, जिनके प्रयोग मनके (मोती) या दाना बनाने वाले फैक्ट्री के रूप में किया जाता था। लोथल नगर क्षेत्र के बाहरी उत्तरी–पश्चिमी किनारे पर समाधि क्षेत्र का, जहां से बीस समाधियां मिली हैं। यहाँ की सर्वाधिक प्रसिद्ध उपलब्धि हड़प्पाकालीन बन्दरगाह के अतिरिक्त विशिष्ट मृदभांड, उपकरण, मोहरें, बांट तथा माप एवं पाषाण उपकरण हैं। यहाँ तीन समाधि के भी उदाहरण मिले हैं। लोथल की अधिकांश कब्रों में कंकाल के सिर उत्तर की ओर और पैर दक्षिण की ओर था।

लोथल नगर के उत्तर में एक बाजार और दक्षिण में एक औद्योगिक क्षेत्र था। जहाँ ताँबे तथा सोने का काम करने वाले शिल्पियों की उद्योगशालाएं भी प्रकाश में आई हैं। यहां से घर के सोने के दाने, सेलखड़ी की चार मुहरें, सीप एवं तांबे की बनी चूड़ियों और बहुत ढंग से रंगा हुआ एक मिट्टी का जार मिला है। लोथल से शंख के कार्य करने वाले दस्तकारों और ताम्रकर्मियों के कारखाने भी मिले हैं।

चित्र 11 – मृणपात्रों पर रेखीय अलंकरण

लोथल से प्राप्त अवशेषों के आधार पर निम्न तथ्यों की जानकरी होती है–

1 लोथल एक बन्दरगाह के रूप में जाना जाता था यहाँ पर मिश्र तथा मेसोपोटामिया से जहाज आते जाते थे। इसका औसत आकार 214 x 36 मीटर है।

2 इसके उत्तर में 12 मीटर चौड़ा एक प्रवेश द्वार निर्मित था। जिससे होकर आते–जाते थे और दक्षिण दीवार में अतिरिक्त जल के लिए निकास द्वार था।

3 लोथल में गढ़ी और नगर दोनों एक ही प्राचीर से घिरे हैं।

4 अन्य अवशेषों में धान (चावल), फारस की मोहरों एवं घोड़ों की लघु मृण्मूर्तियां प्राप्त हुई हैं।

5 इसके अतिरिक्त अन्य अवशेषों में लोथल से प्राप्त एक मृदभांड पर एक विशेष चित्र उकेरा गया है जिस पर एक कौआ तथा एक लोमड़ी उत्कीर्ण है।

6 यहां से उत्तर अवस्था की एक अग्निवेदी मिली है। नाव के आकार की दो मोहरें तथा लकड़ी का अनाज गृह मिला है। अन्न पीसने की चक्की, हाथी दांत तथा पीस का पैमाना मिला है। यहाँ से एक छोटा सा दिशा मापक यंत्र भी मिला है। ताँबे का पक्षी, बैल, खरगोश व कुत्ते की आकृतियां मिली है, जिसमें तांबे का कुत्ता उल्लेखनीय है।

7 यहां बटन के आकार की एक मुद्रा मिली है। लोथल से 'मोसोपोटामिया' मूल की तीन बेलनाकार मोहरें मिली है। अन्न पीसने के दो पाट मिले है जो पूरे सिंधु का एक मात्र उदाहरण है।

8 उत्खननों से लोथल की जो नगर योजना और अन्य भौतिक वस्तुए प्रकाश में आई हैं उनसे लोथल एक लघु हडप्पा या मोहनजोदड़ों नगर प्रतीत होता है। सम्भवतः समुद्र के तट पर स्थित सिंधु–सभ्यता का यह स्थल पश्चिम एशिया के साथ व्यापार के दृष्टिकोण से सर्वात्तम स्थल था।

कालीबंगा

कालीबंगा राजस्थान के हनुमानगढ़ जिले में घग्घर नदी के बाएं तट पर स्थित है। खुदाई 1953 में 'बी.बी.लाल' एवं 'बी. के. थापर द्वारा करायी गयी। यहाँ पर प्राक हड़प्पा एवं हड़प्पाकालीन संस्कृति के अवशेष मिले हैं। यह प्राचीन समय में चूड़ियों के लिए प्रसिद्ध था। ये चूड़ियाँ पत्थरों की बनी होती थी।

हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो की भांति यहाँ पर सुरक्षा दीवार से घिरे दो टीले पाए गए हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि यह सैंधव सभ्यता की तीसरी राजधानी रही होगी। पूर्वी टीले की सभ्यता प्राक् हड़प्पाकालीन थी। कलीबंगा में सिन्धु पूर्व सभ्यता की यह बस्ती कच्ची ईटों की किलेबन्दी से घिरी थी। किलेबन्दी के उत्तरी भाग में प्रवेश मार्ग था। जिससे सरस्वती नदी तक पहुँच सकते थे। मिट्टी के खिलौनों, पहियों का जानकारी प्राप्त होता है।

चित्र 12 – कालीबंगा का टीला

इस सिन्धु पूर्व सभ्यता में सामान्यतया मकान में आंगन होता था और उसके किनारे पर कुछ कमरे बने होते थे आंगन में खाना पकाने का साक्ष्य भी प्राप्त होता है, क्योंकि वहाँ भूमि के ऊपर और नीचे दोनों प्रकार के तन्दूर मिले हैं। हल के प्रयोग का साक्ष्य मिला है, क्योंकि इस स्तर पर हराई के निशान पाये गये हैं। हल चलाने के ढंग से संकेत मिलता है कि एक ओर के खाँचे पूर्व पश्चिम की दिशा में बनाये जाते थे और दूसरी ओर के उत्तर दक्षिण दिशा में। इस युग में पत्थर और ताँबे दोनों प्रकार के उपकरण प्रचलित थे परंतु पत्थर के उपकरणों का प्रयोग अधिक होता था। यहाँ से दैनिक जीवन प्रयुक्त होने वाली वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कालीबंगा के इस चरण का जीवन 3000 ई. पू. के आस पास रहा होगा।

दूसरे बड़े टीले से जो वस्तुएँ मिली हैं, वे हड़प्पा सभ्यता के समानुरूप हैं। कालीबंगा के इस टीले में कुछ अग्नि कुण्ड भी मिले हैं। कालीबंगा से मिट्टी के बर्तनों के कुछ ऐसे टुकड़े मिले हैं, जिनसे यह निश्चित होता है कि सिन्धु सभ्यता की लिपि दाहिनी ओर से बायीं ओर लिखी जाती थी। कालीबंगा में मोहनजोदड़ो जैसी उच्च–स्तर की जल निकास व्यवस्था का आभास नहीं होता है। भवनों का निर्माण कच्ची ईटों से किया जाता था, किंतु नालियों, कुओं तथा स्नानागारों में पकाई ईंटों का उपयोग किया गया।

कालीबंगा के दुर्ग टीले के दक्षिण भाग में मिट्टी और कच्चे ईटों के बने हुए पाँच चबूतरे मिले हैं, जिसके शिखर पर हवन कुण्डों के होने के साक्ष्य मिले हैं। अन्य हड़प्पा कालीन नगरों की भांति कालीबंगा दो भागों नगर दुर्ग (या गढ़ी) और नीचे दुर्ग में विभाजित था। नगर दुर्ग समनान्तर चतुर्भुजाकार था। यहाँ पर भवनों के अवशेष से स्पष्ट होता है कि यहाँ भवन कच्ची ईटों के बने थे।

चित्र 13 – शिवलिंग : टेराकोटा

यहाँ पर लघु पाषाण उपकरण, मणिक्य एवं मिट्टी के मनके, शंख, कांच एवं मिट्टी की चूड़ियां, खिलौना गाड़ी के पहिए, सांड की खण्डित मृण्मूर्ति, सिलबट्टे आदि पुरावशेष मिले हैं। यहाँ से प्राप्त शैलखड़ी की मोहरें (सीलें) और मिट्टी की छोटी मोहरे (सीले) महत्वपूर्ण अभिलिखित वस्तुएं थी। मिट्टी की मोहरों पर सरकण्डे के छाप या निशान से यह लगता है कि इनका प्रयोग पैकिंग के लिए किया जाता रहा होगा।

चित्र 14 – बैलगाड़ी

मोहरें व ईटें

कालीबंगा से प्राप्त जो मुहरें व ईटें है जिनमें एक सील पर किसी अराध्य देव की आकृति है। यहाँ से प्राप्त मुहरें 'मेसोपोटामिया की सभ्यता के मुहरों के समकक्ष थी। कालीबंगा की प्राक्–सैंधव बस्तियों में प्रयुक्त होने वाली कच्ची ईटें 30 X 20 X 10 से. मी. आकार की होती थी। यहाँ से मिले मकानों के अवशेषों से पता चलता है कि सभी मकान कच्ची ईटों से बनाये गये थे, पर नाली और कुओं में पक्की ईटों का प्रयोग किया गया था। यहाँ पर कुछ ईटें अलंकृत पायी गयी हैं। कालीबंगा का एक फर्श पूरे हड़प्पा का एक मात्र उदाहरण है जहाँ अलंकृत ईटों का प्रयोग किया गया है। इस पर प्रतिच्छेदी वृत का अलंकरण हैं।

चित्र 15 – मोहर

रंगपुर

रंगपुर गुजरात के काठियाबाड़ प्रायदीप में सुकभादर नदी के समीप स्थित है। इस स्थल की खुदाई वर्ष 1953–1954 ई. में ए. रंगनाथ राव द्वारा की गई थी। यहाँ पर पूर्व हड़प्पा कालीन संस्कृति के अवशेष मिले हैं। रंगपुर से मिले कच्ची ईटों के दुर्ग, नालियां, मृदभांड, बांट, पत्थर के फलक आदि महत्त्वपूर्ण हैं। यहाँ धान की

भूसी के ढेर मिले हैं। यहां से प्राप्त अवशेषों के आधार पर ज्ञात होता है कि यह ऐतिहासिक स्थान गोहिलवाड़ प्रांत में सुकभादर नदी के पश्चिम समुद्र में गिरने के स्थान से कुछ ऊपर की ओर स्थित है। इस स्थान से 1935 तथा 1947 में उत्खनन द्वारा सिंधु घाटी सभ्यता के अवशेष प्रकाश में लाए गये थे तथा यहाँ प्रथम खुदाई के अवशेषों से विद्वानों का यह अनुमान था कि ये हड़प्पा सभ्यता के दक्षिणतम प्रसार के चिन्ह हैं, जिनका समय लगभग 2000 ई.पू. होना चाहिए। वर्ष 1944 ई. के जनवरी मास में यहाँ पुरातत्त्व विभाग ने पुनः उत्खनन किया, जिससे अनेक अवशेष प्राप्त हुए। जिनमें प्रमुख थे–अलंकृत व चिकने मृदभांड, जिन पर हिरण तथा अन्य पशुओं के चित्र हैं। यहाँ से भूमि की सतह के नीचे नालियों तथा कमरों के भी चिन्ह मिलें हैं। खुदाई से रंगपुर में अति प्राचीन अणुपाषाण युगीन सभ्यता के भी खंडहर मिले हैं। जो इस सभ्यता का मूल स्थान बेबीलोनिया बताया जाता है। रंगपुर के निकटवर्ती अन्य कई स्थानों से सिंधु घाटी सभ्यता के अवशेष प्रकाश में लाए गये हैं।

रोपड़

यह स्थल पंजाब प्रदेश सतलुज नदी के बांए तट पर स्थित है। जिसकी खेज 1950 ई. में बी.बी. लाल के द्वारा की गई थी। इस स्थल की खुदाई 1953–56 में यज्ञ दत्त शर्मा के द्वारा की गई, जहां पर हड़प्पा पूर्व एवं हड़प्पाकालीन संस्कृति के अवशेष प्राप्त हुए। यहां प्राप्त मिट्टी के बर्तन, आभूषण एवं ताम्बे की कुल्हाड़ी महत्वपूर्ण है। पक्के मकानों के अवशेषों से ज्ञात होता है कि ये मकान पत्थर एवं मिट्टी से बनाये जाते थे। एक स्थान से शवों के अंतिम संस्कार के लिए प्रयोग होने वाले ईटों का एक छोटा कमरा भी मिला है, जिससे ज्ञात होता है कि यहां शवों को ,गढ्ढों में दफनाया जाता था। रोपड़ से कुछ मिट्टी के पक्काए गए आभूषण, शंख की चूड़िया, गोमेद पत्थर के मनके तांबे की अंगूठिया आदि प्राप्त हुऐ है।

आहड़ सभ्यता

दक्षिण–पश्चिम राजस्थान के उदयपुर के समीप आहड़ ग्राम के पास से गुजरने वाली बनास की सहायक बेड़च नदी के तट पर एक ऐसी सभ्यता के अवशेष मिले है जो अपने आप में महत्वपूर्ण है। इस नदी के तट पर सर्वप्रथम इस सभ्यता के अवशेष आहड़ स्थित धूलकोट पर मिले है। अतः इस सभ्यता को आहड सभ्यता अथवा बनास सभ्यता के नाम से पुकारा जाता है। यह सभ्यता बनास व उसकी सहायक नदियों के किनारे राजस्थान में उदयपुर, चित्तौड़गढ़, भीलवाड़, अजमेर, टोंक तथा मध्यप्रदेश में मन्दसौर तक फैली हुई है। यह आज से लगभग 4000 वर्ष पूर्व की है तथा विभिन्न उत्खन्न के स्तरों से पता चलता है कि 18वीं सदी तक यहाँ कई बार बस्ती विकसीत हुई और उजड़ी। ये ताम्रयुगीय कौशल केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध है यहाँ 500 मीटर लम्बे धुलकोट के टीले से ताँबे की कुल्हाड़ियाँ, लोहे के औजार, बांस के टुकड़े, हड्डियाँ आदि प्राप्त हुई है।

अनुमानतः मकानों की योजना में आंगन या गली या खुला स्थान रखने की व्यवस्था थी एक मकान में 4 से 6 बड़े चूल्हों का होना आहड़ में वृहत् परिवार या सामूहिक भोजन बनाने की व्यवस्था पर प्रकाश डालता है। आहड़ से खुदाई में प्राप्त बर्तनों तथा उनके खंडित टुकड़ों से हमें उस युग में मिट्टी के बर्तन बनाने की कला का अच्छा परिचय मिलता है। यहाँ तृतीय ईसा पूर्व से प्रथम ईसा पूर्व की यूनानी मुद्राएं मिली है इससे स्पष्ट होता है कि उस युग में राजस्थान का व्यापार विदेशी बजारों से होता था। इस बनास सभ्यता की व्यापकता एवं विस्तार गिलूंड बागौर तथा अन्य आसपास के स्थानों से प्रमाणित होता है इसका सम्पर्क हड़प्पा, नागदा, आदि भागों से था। यहां से प्राप्त काले व लाल मिट्टी के बर्तनों के आकार, उत्पादन व कौशलता का ज्ञान होता है।

सर्वप्रथम इस सभ्यता की खोज का कार्य 1951–52 ई. में प्रारम्भ हुआ जिसका श्रेय अभय कीर्ति व्यास को जाता है। तथा 1954–1955 में डॉ रत्नचन्द्र अग्रवाल (भूतभूर्व निदेशक, पुरातत्व एवं संग्रहालय, राजस्थान) द्वारा उत्खनन हुआ । इसके बाद में 1960–1961 में पुरातत्व विभाग राजस्थान व डेक्कन कॉलेज पुणे के संयुक्त तत्वावधान में प्रो. हंसमुख धीरजलाल संकालिया के नेतृत्व में उत्खनन हुआ। यहाँ उत्खनन के दौरान प्राप्त विशिष्ट मृदभाण्ड की परम्परा हाने के कारण इसे आहड़ संस्कृति नामकरण किया। उस स्थान पर दो संस्कृतियों के अवशेष मिलते है, जिसमें एक ताम्रपाषाण कालीन एवं दूसरी ऐतिहासिक कालीन है।

प्राप्त अवशेषों की कार्बन डेटिग C-14 निर्धारण करने से यह पता चलता है कि यह सभ्यता आज से लगभग 4000 वर्ष प्राचीन है। यहां की बस्ती कई बार बसी तथा उजड़ी। लगभग ई. पूर्व 2000 से ई. पूर्व 2200 तक प्रथम काल तथा ई. पूर्व 300 से 200 ई. सदी तक द्वितीय काल की सामग्री मिली है। इन दोनों काल के बीच यह स्थल उजाड़ पड़ा रहा। प्रथम काल की सामग्री में चित्रित मृदपात्र तथा ताम्बे के उपकरण प्राप्त हुए हैं। तथा लोहे का पूर्णतया अभाव मिला, जब कि द्वितीय काल की प्राप्ति में लोहे के उपकरण चक्रकूप तथा पक्की मिट्टी की मोहरें व सांचे प्रमुख हैं। प्रथम काल में करीब पन्द्रह बार व द्वितीय काल में तीन चार बार लगातार आबादी बसने व ध्वंस

होने से इस स्थल ने एक टीले का रूप धारण किया जिसे आधुनिक बोलचाल की भाषा में धूलकोट भी कहते हैं। यह टीला लम्बाई में करीब 2500 फुट, चौड़ाई में 800 फुट तथा 50 फुट ऊँचा है।

प्राचीन आहाड़ निवासी सात विभिन्न प्रकार के मृदपात्र बनाना जानते थे, जिनमें लाल व काले रंग के बर्तन विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार के बर्तन सर्वप्रथम श्री रत्न चंद्रजी अग्रवाल द्वारा वर्ष 1955–56 ई में खुदाई के दौरान प्रकाश में लाये गये। यहां प्राप्त मृदपात्र से ज्ञात होता है कि इन बर्तनों को पक्काने की एक विशेष विधि थी जिसे उलटी तपाई कहते हैं। इस विधि के अनुसार बर्तनों को आग में तपाने से पूर्व घासफूस भर दिया जाता था तथा इन बर्तनों के इस प्रकार उलटा रख दिया जाता था जिससे उसकी गर्दन तथा कंधे का भाग नीचे की ओर रहे जिससे अन्दर हवा जाने के लिये मुंह का कुछ भाग ऊपर उठा रहे। आग में पक्कने के बाद मृद पात्रों के बाहरी तथा अंदर का भाग काला तथा नीचे का भाग लाल हो जाता था। इस प्रकार के बर्तनों की आकृति विभिन्न प्रकार की होती थी। प्रत्येक आकृति के अलग– अलग आकार के बर्तन बड़े व छोटे के क्रम में बनाऐ जाते थे जिससे कि छोटा बर्तन बड़े बर्तन में सही नाप के साथ बैठ जाए। इस तरह से बर्तन का पूरा सैट तैयार करने की परमपरा रही थी। इन लाल व काले रंग के मृदपात्र को चित्रित भी किये जाते थे। मृदपात्र के उपरी भाग पर सफेद व गेरूआ रंग से चित्रण किया जाता था। कभी–कभी यह चित्रण अन्दर व बाहर गर्दन के पास हल्की रेखओं द्वारा डिजाइन की जाती थी। अधिकतर की जाने वाली डिजाइनें लयबध रेखाओं में की गई, तथा कुछ सीधी एवं समानान्तर रेखाओं से भी बनाई जाती थी। कुछ ऐसे मृदपात्र मिले जिस पर ये अलंकरण तिरछी, मोड़दार तथा जालीदार भी बनाई जाती थी। प्रायः ये डिजाइनें अधिकतर ज्योमितिक आकारों में बनाई जाती थी। लाल व काले रंग बर्तन प्रायः बिना हत्थे के मिले हैं। ये बर्तन बड़े व मध्यम आकार के न होकर छोटे आकार के ही होते थे। संभवतः ये बर्तन खाने–पीने के काम में आते थे। प्याले, तश्तरी, हाडी, प्लेटें व छोटे लोटे इस श्रेणी में आते हैं। लाल व काली सतह पर जो सफेद बिन्दुओं के निशान इन मृदपात्रों पर दिखाई देते हैं।

चित्र 16 – हांडी

मृदपात्रों के अलावा यहां की खुदाई के दौरान कुछ ऐसी सामग्री भी प्राप्त हुई है, जिससे तत्कालीन मानव जनजीवन की प्रक्रिया का भी ज्ञान सहज हो पाता है। यहां निवास करने वाला मानव मकान बनाकर व्यवस्थित ढ़ंग से रहते थे। मकान की नींव की दीवार से ज्ञात होता है कि ये स्थानीय पत्थरों के टुकड़ों को मिट्टी में मिलाकर नींव में काम लेते थे जिससे नींव की दीवार मजबूत रहे। मकान छोटे व बड़े दोनों प्रकार के आयताकार बनाऐ जाते थे। इन मकानों में प्रवेश हेतु एक ही द्वार बनाने की परम्परा देखने को मिलती है।

चित्र 17 – ताम्र कटोरा

इसी प्रकार ताम्रयुगीन मानव कला एवं सौन्दर्य प्रेमी थे। वे अपने शरीर को सज्जाने के लिये विविध प्रकार के आभूषण बनाते थे तथा आभूषणों पर नक्काशी करके भांति–भांति के चित्र

व अलंकरण बनाते थे। आभूषणों में मणके कर्ण आभूषण चूड़ियां आदि मुख्य हैं। ताम्र के बर्तन बनाने में भी कौशल थे जिसमें कटोरे आदि बनाने की परम्परा रही है।

खुदाई में अधिकांश मणके पक्की मिट्टी के बने मिले है परन्तु कुछ मणके हड्डी, कार्नेलियन, जेस्पर, क्रिस्टल, लैपिस व ग्लास के भी बने मिले है। ये मणके विभिन्न आकारों में मिले है जैसे चौड़े, चपटे, लम्बे, षटकोणीय तथा गौल आदि है। पक्की मिट्टी के खिलौने, जानवर और मानवाकृति भी बनाई है जो सहज सरल एवं उनकी अपनी प्रकृति के अनुरूप है। पशु आकृतियों में हाथी, बैल, घोड़े आदि बनाऐ गये है। प्राप्त पशु आकृतियों में बैल की आकृति प्रधान है। बैल के ऊँची कुबड़, लम्बे सींग, छोटा मुंह है। यहां से निकली कलात्मक एवं दैनिक उपयोगी प्राप्त सामग्री को राजस्थान सरकार की ओर से आहड़, उदयपुर में ही स्थापित संग्रहालय में प्रदशित किया गया है। यहां की सामग्री शोधकर्त्ताओं व छात्रों के लिये बड़ी महत्त्वपूर्ण है।

चित्र 18 – पक्की मिट्टी के मणके

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. मोहन जोदड़ो व हड़प्पा कहाँ पर स्थित है ?
2. काँसे की नर्तकी कहाँ से प्राप्त हुई ?
3. शाला ओढ़े योगी की मूर्ति किस स्थल की खुदाई में प्राप्त हुई?
4. मोहन जोदड़ो व हड़प्पा में प्राप्त मोहरों के प्रकार बताइये।
5. मोहन जोदड़ो की खोज का श्रेय किसको है ?
6. राजकीय संग्रहालय आहड़ कहां स्थित है ?
7. बनास नदी सभ्यता के केन्द्रों के नाम लिखिए ?

निबंन्धात्मक प्रश्न

1. सिंधुघाटी सभ्यता की मूर्तिकला का काल एवं विकास पर अपने विचार प्रकट किजिए।
2. कालीबंगा के उत्खन्न से प्राप्त कला सामग्री के बारे में लिखिए।
3. आहड़ सभ्यता पर अपने विचार वक्त किजिए।

अध्याय

9

बौद्ध, जैन तथा हिन्दू मूर्ति शिल्प

भारतीय मूर्तिकला के इतिहास का अवलोकन किया जाये तो वैदिक काल के बाद मौर्य कालीन मूर्तिकला अपना एक विशिष्ट महत्व रखती है। राजनीतिक दृष्टि से मौर्यकाल से गुप्तकाल तक उत्तर भारत एक सूत्र में बंधा हुआ था। इन राजवंशो में साँस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से धर्म, कला, दर्शन साहित्य, विज्ञान, गणित व चिकित्सा आदि सभी अपने चर्मोत्कर्ष पर थे। भारतीय इतिहास में गुप्त काल को स्वर्ण काल के रूप में माना जाता है।

सिन्धु सभ्यता से प्राप्त अवशेषों से यह प्रमाणित हो जाता है कि जन साधारण में मूर्तिपूजा प्रचलन में उस समय भी रही है। वैदिक साहित्य में यंत्र पूजा और नाग के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। इसी से प्रेरणा पाकर ही मौर्यकालीन शिल्पकारों में सम्पूर्ण उत्तरी भारत में अनेक प्रतिमाओं का निर्माण किया।

भारतीय जीवन पद्धति में मूर्ति पूजन की परम्परा उत्तर वैदिक काल से ही मानी जाती हैं। ऋग्वेद में ब्रहम श्री पुरूषोतम की मूर्ति का उल्लेख प्राप्त होता है।

"अदो यद्दारू प्लवेत सिन्धोः परे अपुरूषम।
तदार भस्व दुर्हणो तजे गच्छ परस्तरम्।।"

(युजुर्वेद 10/155/3)

"हे उपासक! दूर देश में समुन्द्र के तट पर उनके ऊपर जो दारू ब्रह्म की मूर्ति है जो किसी मनुष्य द्वारा निर्मित नहीं है उसकी अराधना करके उनकी कृपा से बैकुण्ठ को प्राप्त हो।"

इस समय आम जन प्रकृति की भिन्न–भिन्न शक्तियों के साकार रूप की उपासना करते थें जैसे अग्नि, इन्द्र, वरूण, विष्णु, रूद्र आदि। इससे यह आभास होता है कि इनकी मूर्तियां भी अवश्य बनाई जाती रही होगी। ऋग्वेद के ही एक उल्लेख्य से यह और स्पष्ट हो जाता है। ऋग्वेद का मंत्रकार अपने एक मंत्र में पूछता है– " कौन मेरे इन्द्र को मोल लेगा ? यहां इन्द्र का अभिप्राय इन्द्र की मूर्ति ही है ; जिसे वह पूजता है।

मौर्यकाल पूर्व की मूर्तिकला (322ई.पू. से 185 ई. पू.)

भारत में अब तक से सबसे प्राचीन ऐतिहासिक मूर्तिशिल्प मगध राज्य में मिले है। जो की वहां के शैशुनाक वंश (ई.पू. 720–366) के कई शासको की है ; जिनका पता उन पर खुदे नामों से हो जाता है। इन शैशुनाक मूर्तियों में सबसे पुरानी मूर्ति अजातशत्रु की है जिसे बुद्ध के समकालीन माना जाता है और इनका राज्यभिषेक ई.पू. 552 में हुआ था तथा इनका मृत्युकाल ई.पू. 525 माना गया हैं। अतः इस मूर्ति का निर्माण काल भी तकरीबन मृत्यु के समय का होना चाहिये। क्योंकि कवि मास के प्रतिभा नाटक से यह ज्ञात होता है कि राजाओं की मृत्यु के पश्चात उनकी मूर्तिया बनाकर देवकुल (देवल) में रखी जाती थी। भारत में यह परम्परा सम्भवतः महाभारत काल से ही चली आ रही थी जो आगे भी अनवरत चलती रही जिसे गुप्त शासको के बाद राजपूत शासको ने भी इस परम्परा को कायम रखा।

अजात शत्रु की मूर्ति मथुरा के परखम नाम के गांव से प्राप्त हुई तथा अजात शत्रु के अज उदयी तथा उसके पुत्र नदिवर्धन की मूर्तियां पटना नगर से प्राप्त हुई हैं। जो कलकत्ता के संग्रहालय में सुरक्षित है। शैली के आधार पर देखा जाए तो ये तीनों मूर्तियां एक समान विशेषताओं को धारण किये है। इस शैली में यर्थाथ परक स्वरूप ऊभर कर आया है जो मानव शरीर के यथारुप को प्रकट कर रहा है। मूर्तिकार ने भाव मूर्ति न बना कर वस्तु मूर्ति का टंकन किया है। अपने अतीत को संजोने की मानव की मूल प्रकृति इस प्रकार के निर्माण का मूल आधार होती है। इसके रुप को दैवीय रूप नहीं कहा जा सकता, क्योंकि भारतीय मूर्तिकारों ने दैवीय स्वरूप निर्धारण में आलौकिकता का बड़ा भाव पूर्ण संयोग बना हैं, जबकि इनमें मानव शरीर का यथार्थ परक स्वरूप दिखाई पड़ता है। कुछ विद्वानों ने इन मूर्तियों को यक्ष मूर्तियों के रूप में स्वीकार किया हैः किन्तु उनका कोई यथोचित आधार प्रस्तुत नहीं हो पाया क्योंकि अलौकिकता के भाव पूर्ण स्वरूप का यहां अभाव है। कालान्तर में इनके

प्रयोजन की सार्थकता न रहने से यक्ष मूर्ति के रूप में ही स्वीकार किया जाने लगा उदाहरण स्वरूप राजा नंदिवर्धन की मूर्ति यक्ष नंदिवर्धन की मूर्ति मानी जाने लगी जो इस बात का द्योतक है कि पूर्व में यह मूर्तियाँ यक्ष मूर्तियाँ न होकर राजाओं की मूर्तियाँ ही थी। ये सभी मूर्तियाँ आदम कद से भी थोड़ी बड़ी थी जैसे कि अजात शत्रु की मूर्ति की ऊंचाई आठ फुट आठ इंच की थी।

इस काल की तीन मूर्तियाँ और प्राप्त हुई है। जिसमें एक पुरूष व दो स्त्री मूर्ति हैं। एक स्त्री मूर्ति मथुरा से मिली जो मनसा देवी के नाम से पूजी जाती है, दूसरी स्त्री मूर्ति ग्वालियर राज्य के बेस नगर से प्राप्त हुई। इस मूर्ति की ऊंचाई 6 फूट व 6 इंच है। जो कलकता संग्रहालय में सुरक्षित है। पुरूष मूर्ति मथुरा के बरोदा नाम ग्राम से प्राप्त हुई जो परखम ग्राम के पास स्थित है। इस मूर्ति का मस्तिष्क से छाती तक का अंश प्राप्त हुआ है। यह मूर्ति भी मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। इन मूर्तियों पर किसी तरह का नाम अंकित नहीं है; किन्तु यक्ष मूर्तियाँ प्रमाणित हो ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला है अतः इनको राजा व रानियों की मूर्तियों माना जाना ठीक होगा। कई विद्वानों ने इन्हें मौर्य काल अथवा शुंगकाल की मूर्तियाँ सिद्ध करने की चेष्टा की है; परन्तु इन मूर्तियाँ पर चढा हुआ ओप (पॉलिस), ऊंचा डील डोल का आकार तथा सिर पर उष्णीय (मुँडासा) का अभाव तथा शैली में मानवीय शरीर की यथार्थ परकता से सभी गुण इन मूर्तियाँ को मौर्य काल अथवा अशोक से पूर्व होने की धारणा को ही पुष्ट करता है।

मौर्य कालीन मूर्तिकला

मगध में नंद वंश सम्राज्य अपने अन्तिम काल में अत्यन्त अत्याचारी हो ऊठा था जिसे चन्द्रगुप्त मोर्य ने अपने गुरू चाणक्य के पथ प्रदर्शन से समाप्त कर मौर्य राजवंश की स्थापना की। मौर्य काल के दो प्रतापी सम्राट चन्द्रगुप्त और अशोक के प्रयासों से सम्पूर्ण भारत राजनीतिक रूप से एक सूत्र में बंध चुका था तथा इस विशाल भू–भाग पर एक छत्र राज्य होने से समूचे भारतवर्ष में साँस्कृतिक व सामाजिक मान्यताओं हेतु सुअवसर मिल गया था। मौर्य शासकों की राजधानी पाटली पुत्र से ही धर्म सम्बन्धित, आर्थिक; साँस्कृतिक व राजनीतिक व प्रशासन सम्बन्धि नीतियों का निर्धारण होता था। मौर्य शासकों ने अपने शासन काल में कलाओं को विशेष संरक्षण प्रदान किया तथा मूर्तिकला विशेष रूप में अपनी कलात्मक अभीधा को लेकर उभर कर आई। मौर्य काल की वैभवता दृढ़ राजसिक सत्ता, तथा कलानुरागी शासकों के प्रश्रय ने कला के विकास को अनुकूल धरातल प्रदान किया।

चन्द्रगुप्त के दरबार में ग्रीक राजदूत मैगास्थनीज रहता था। उसने अपने प्रवास का वर्णन लिखा था कि चन्द्रगुप्त का विशाल एवं भव्य राज प्रासाद एशिया के श्रेष्ठतम भवनों में से था; इसने भवनों के विविध अलंकरणों तथा विशेषताओं को अपने वर्णन में इंगित किया है। इसके अतिरिक्त कौटिल्य अर्थ शास्त्र में नगर प्रासाद तथा दुर्ग की संरचना के विधान का उल्लेख किया गया है। भवन निर्माण के प्रति शासकों की रूचि तथा वैभवपूर्ण निर्माण के प्रयोजन ने शिल्पकारों को कला के विकास व श्रेष्ठ निरूपण के उचित अवसर प्रदान किये जिससे भवन निर्माण व मूर्तिकला उतरोत्तर विकास के पथ पर चलने लगी।

मौर्य कालीन मूर्तिकला के विकास में एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी था कि मौर्य शासकों ने समूचे भारत में राज्य के प्रमुख राज मार्गो, नगरों तथा धार्मिक केन्द्रो पर स्तम्भों का निर्माण कराया तथा उन स्तम्भों के शीर्ष भाग पर विविध प्रकार की मूर्तियों का अंकन किया गया जो मौर्यकाल की विशेष धरोहर है। ऐसा माना जाता है यह स्तम्भ निर्माण की परम्परा वैदिक काल में भी प्रचलित थी ; किन्तु उसका स्पष्ट रूप चिन्हित नही हो सका। अशोक से पूर्व भी स्तम्भों की परम्परा विद्यमान थी जिससे प्रेरणा लेकर अशोक ने बड़े व्यापक रूप से स्तम्भों का निर्माण कराया। कई विद्वान ने बसाद व वखिरा के स्तम्भों को अशोक से पहले के स्तम्भ माना है।

मौर्य काल के कलात्मक वैभव तथा व्यापक रूप में मूर्ति निर्माण को देखकर भारतीय मूर्तिकला को मौर्यकाल से ही आरम्भ मान लिया है। ऐतिहासिक दृष्टि से तो यह सही नहीं है; लेकिन मूर्तिकला के निर्माण में शैलीपरक परिपक्वता तथा स्वरूप निर्धारण में श्रेष्ठता के आधार पर मौर्यकाल भारतीय मूर्तिकला के प्रतिस्थापन में श्रेष्ठ घटक के रूप में स्वीकार किया जाता रहा हैं।

मौर्यकालीन कला–शैली, स्वरूप व भावों के अंकन की दृष्टि से दो रूप में निर्धारित की जा सकती है। आन्नद के. कुमार स्वामी ने इस विभाजन को स्पष्ट करते हुए इस काल की कला को राजकीय कला तथा लोक कला दो रूप में विभाजित किया। राजकीय कला के अन्तर्गत धौली की गजमूर्ति तथा अशोक द्वारा निर्माण किये गये स्तम्भों को सम्मिलित किया तथा लोक कला के अन्तर्गत यक्ष मूर्तियों तथा सामान्य मूर्तियों को सम्मिलित किया गया। लोक कला अर्थात यक्ष व सामान्य मूर्तियाँ का निर्माण राज संरक्षण में न होकर मूर्तिकारों ने जन सामान्य के बीच हुआ है। सम्राट अशोक द्वारा बनाये स्तम्भों में मूर्तिकार ने विशाल मौर्य सम्राज्य के राजकीय वैभव और साम्राज्य प्रतिष्ठा को मूर्तिमान करने के लिए प्रतीक रूप में बलशाली पशुओं की आकृतियों को प्रतिष्ठित किया गया है।

चन्द्रगुप्त का पौत्र सम्राट अशोक (ई.पू. 277–236) जिसकी गणना संसार के महानतम् शासकों में की जाती है। वह वस्तुत न केवल कुशल राजनीतिज्ञ व शासक था बल्कि एक महापुरूष भी था। राज्य पर सतारूढ़ होने के बाद मौर्यवंश का अपने

पराक्रम के बल पर विस्तार किया। अपने आरम्भिक शासन काल के एक दशक में सम्राट अशोक अत्यन्त कठोर उग्र प्रकृति के कारण विख्यात रहे। इस काल में इन्होंने अनेक युद्ध किए व विजय प्राप्त की।

राज्यारोहण के बारहवें वर्ष में अशोक ने अपने प्रबल पड़ोसी कलिंग पर विजय प्राप्त की। माना जाता है कि इस युद्ध में करीब डेढ़ लाख कलिंग वासी कैद कर लिए गये, एक लाख से अधिक युद्ध में मारे गए तथा इससे अधिक युद्धोपरान्त मारे गए। युद्ध की विभिषिका व दारूण दृश्य को देखकर सम्राट अशोक का हृदय पश्चाताप से भर गया। राज्यभिषेक के तेरहवें वर्ष में विजय दुन्दुभि के स्थान पर अशोक की धर्म दुन्दुभि बजी। स्वयं सम्राट जनता में धर्म प्रचार और धर्म शिक्षा के लिए संकल्पित हो गए। हिंसा व क्रुरता और उसके परिणाम स्वरूप जो प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई उसे सम्राट अशोक अंहिसा एवं जीव दया पर आधारित बौद्ध धर्म की ओर झुके। उन्होंने बौद्ध धर्म को राजधर्म घोषित किया। बौद्ध धर्म को शासकीय धर्म बनाने के उपरान्त भी सम्राट अशोक ने ब्राहमणों, मन्दिरों और वैदिक धर्म को भी भरपूर सम्मान दिया। सम्राट के हृदय की उदारता में भारतीय इतिहास में अशोक महान के रूप में प्रतिष्ठित हुए। सम्राट अशोक लगभग चालीस वर्षो तक सिंहासन पर रहें। कलिंग के युद्ध के पश्चात् विभिन्न तीर्थो में घूमकर, उपदेशक भेजकर, शिलालेख गढ़कर अनेक प्रकार से मानवीय मूल्य तथा धार्मिक सद्भावनाओं का प्रसार किया। अल्प समय में ही हजारों की संख्या में स्तुपों का निर्माण कराया गया। सैकड़ों विहार उनके समय में स्थापित हुए। अपनें शिलालेखों में माता पिता की एवं प्राणियों की सेवा, सत्य, त्याग, तप आदि सभी सम्प्रदायों में सद्भावना पर शिक्षा वाक्य खुदवाऐ।

मौर्यकाल की कला का सुन्दरतम् रूप सम्राट अशोक द्वारा निर्मित कराये गये भव्य व ऊँचें स्तम्भ है। यह सतम्भ कला के उत्कृष्ट स्वरूप के आदर्श है इन स्तम्भों के शीर्षभाग में मूर्तियों का निर्माण विशेष रूप से महत्वपूर्ण है ये स्तम्भ एक ही पाषाण द्वारा निर्मित है; जिसका निर्माण चुनार के पत्थर द्वारा हुआ है। सम्भवत चुनार मे ही पत्थरों को काट कर इन सतम्भों का निर्माण करवाया गया तथा वहीं से देश के विभिन्न भागों में भिजवा कर स्थापित करवाया गया। ये शिला स्तम्भ जिनको लाट भी कहा जाता है, स्थूलाकार विशालकाय पाषाण खण्ड है। इनकी लम्बाई 20 फीट से लेकर 50 फीट तक है और इनका व्यास सामान्यतः 3 फीट 7 ईंच से लेकर 4 फीट 1.5 ईंच तक है। ये स्तम्भ नीचे से ऊपर की ओर क्रमशः पतले होते चले गए तथा शीर्ष पर किसी सुन्दर आकृति का निर्माण किया गया है संरचना की दृष्टि से इसे तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है;

1. **स्तम्भ शीर्ष –** जिस पर सिंह, गज, अश्व तथा वृषभ आदि की मूर्तियां निर्मित की गई है।
2. **अण्ड या माया –** यह भाग गोलाकार है जिस पर चक्र, लता पशु व अधोमुखी कमल पुष्प दल आदि से सज्जित है।
3. **सतम्भ का तना –** यह भाग मूलतः स्तम्भ है तथा नीचे से उपर की ओर पतला होता जाता है।

पूरे स्तम्भ को कलात्मक दृष्टि से देखे तो सर्वाधिक कलात्मक महत्व का स्तम्भ शीर्ष भाग है। स्तम्भों के शीर्ष पर पशुओं की आकृतियां निर्मित की गई है जो बहुत ही सुन्दर है। इन स्तम्भों के शीर्ष भाग में उल्टे कमल पुष्प के ऊपर रस्सीनुमा सज्जा के साथ दोनों ओर मालाएं निर्मित है, जिसे ऊपर वर्गाकार या चतुर्भुजाकार एक पीठिका है। इस पीठिका के आकार को भी अनेक प्रकार से अलकृंत किया गया है। पीठिका पर तीसरे आयाम पर खड़ी या बैठी पशु की मूर्ति निर्मित है। इस शीर्ष भाग की विशेषता है कि उल्टे कमल की आकृति से लेकर पशु मूर्ति तक सभी में एक ही पाषाण खण्ड प्रयुक्त किया गया है। पशु मूर्तियां कहीं कहीं स्वतंत्र रूप में तथा कहीं कहीं संयुक्त रूप में बनी है। संयुक्त मूर्तियाँ का पृष्ठ भाग आपस में जुड़ा हुआ है। पशु मूर्तियों में सिंह, गज,अश्व, और वृषभ आदि का अंकन हुआ है। शीर्ष स्तम्भ वाली मूर्तियां इस काल की मूर्तिकला का श्रेष्ठ उदाहरण है। ये पशु मूर्तियां सभी दिशाओं में दर्शनीय है तथा चारों ओर से इन्हे गढा गया है। अतः ये पूर्णत मूर्तिकला की परिधी में आती है।

स्तम्भ का दूसरा भाग गला (एबेक्स) है। जिस पर चक्र,पशु,पुष्प व लताएँ आदि अंकित की गई है। यह देखने में घण्टा कार जान पड़ता है किन्तु वास्तव में यह उल्टे कमल की आकृति है; जिसकी पखुड़िया तंरगवत रेखाओं से स्पष्ट की गई है। भारतीय परम्पराओं में उल्टे कमल का अपना विशिष्ट महत्व है। इसे स्वर्गीय पुष्प की मान्यता प्राप्त है। मौर्यकालीन कलाकारों ने उल्टे कमल को पृथ्वी का परिचायक माना है, तथा सिंह, गज, अश्व आदि चिन्हों के रूप में सम्राट अशोक के विविध उदान्त पक्षों को प्रतिकात्मक उत्कीर्ण किया हैं।

स्तम्भ का तीसरा भाग ध्वज या तना हैं इसी भाग पर महान् सम्राट अशोक के लेख अंकित किए गए है जिन पर उपर के भाग के समान ही ओपदार पालिश की गई है। यह ओपदार पालिश मौर्ययुगीन कलाकृतियों की विशेष महत्वपूर्ण विशेषता है जो हजारों साल व्यतीत हो जाने पर भी उतनी चमकदार है जैसी निर्माण काल में थी। चीनी यात्री युवांग च्वांग ने अशोक द्वारा स्थापित पन्द्रह स्तम्भों का उल्लेख किया है। जिनमें से तेरह स्तम्भ निम्नलिखित स्थानों पर प्राप्त हुए हैः–

1. दिल्ली मे –दिल्ली दरवाजे के बाहर फीरोजशाह के कोटले पर उपस्थित है। यह स्तम्भ फीरोजशाह द्वारा अंबाले के तोपरा गांव से उठवा कर लाया गया था।
2. दिल्ली के उत्तर पश्चिम ढांग पर इस स्तम्भ को भी फीरोजशाह द्वारा मेरठ से उठवा कर यहां लाया गया था।
3. कौशांबी में – यह जैन मन्दिर के नजदीक प्राप्त हुआ है जिसे वहाँ के लोग लाठ लौर कहते है।
4. इलाहाबाद के किले में से प्राप्त स्तम्भ।
5. सारनाथ के बौद्ध भग्नावेशों में प्राप्त स्तम्भ।
6. मुज्जफरपुर के बखीरा ग्राम से प्राप्त स्तम्भ।
7. चंपारन के लौरिया नन्दगढ से प्राप्त स्तम्भ।
8. चंपारन के रढ़िया गांव से प्राप्त स्तम्भ।

9.–10. चंपारन के रामपुरवा गांव से प्राप्त स्तम्भ।

11. नेपाल राज्य में, तराई के रूम्मिनदेई ग्राम से प्राप्त स्तम्भ।
12. नोपाल राज्य में ही निगलीवा गांव से प्राप्त स्तम्भ।
13. सांची (भूपाल राज्य, मध्यभारत) प्रसिद्ध स्तूप के पास से प्राप्त।

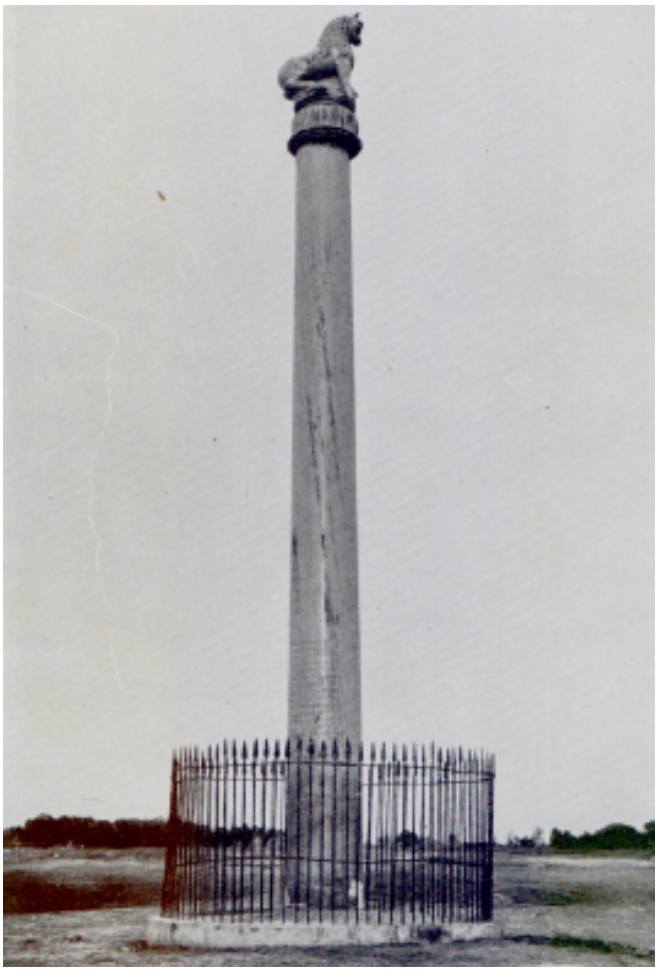

चित्र 1 – लाट लौरिया नन्दगढ़

इन तेरह स्तम्भों के अतिरिक्त चार और स्तम्भों का पता चला है जिनमें (1) संकीसा (जिला फरूंखाबाद) में एक स्तम्भ के उपर का परगहा जिस पर हाथी की मूर्ति कोरी गई है। (2) काशी में एक स्तम्भ का ठूँठ है जिसे लाठ भैंरो कहा जाता है। (3) पटना की पुरानी बस्ती के एक अहाते में एक स्तम्भ पड़ा है (4) बुद्ध गया के बोधिवृक्ष के आयतन (मन्दिर) की जो प्रतिकृतियाँ भरहुत की वेदिका पर अंकित है उनमें एक अशोकीय स्तम्भ दिखाया गया है।

अशोक द्वारा निर्मित स्तम्भ व उनके शीर्ष कला की दृष्टि से बेजोड़ है। रामपुरवा का वृषभ शीर्ष परगहा, लौरियानन्दगढ़ का तथा रामपुरवा का सिंह शीर्ष परगहा आदि श्रेष्ठ कारीगरी का उदाहरण है; किन्तु सारनाथ सिंह का सिंह शीर्षस्थ परगहा मौर्यकालीन मूर्तिकला की दृष्टि से अद्वितीय है।

सारनाथ का सिंह शीर्ष

इस सिंह शीर्ष में अशोक कालीन कला शिल्प और स्थापत्य कला का सर्वोत्तम विकास प्रतिध्वनित होता है। यह विशाल शिल्पकृति रूपाकारों के सौंदर्यपूर्ण गठन की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। ब्रहमसूत्र या भूलम्ब रेखा और पार्श्वगत भागों के सन्तुलित विन्यास में कलाकारों ने अद्भूत निपुणता प्रस्तुत की है। इसके विवधि अंगो के विन्यास के चारो दिशाओं को आधार मान कर मध्य के एक केन्द्र में गूंथना शिल्पीं की अतुलनीय प्रतिभा का प्रमाण है। केन्द्रीय गत विस्तार को चारो दिशाओं मे समरूप समभाव में विस्तार देना अद्भूत शिल्प का उदाहरण है। यह शीर्षस्थ परगहा अपनी कलात्मक विशेषता के साथ धार्मिक अर्थ भी रखता है।

शीर्ष के शिखर में धर्मचक्र प्रवर्तन का स्थान अर्थात सर्वोपरि बुद्ध को महत्वपूर्ण व श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया गया है। चौकी पर उत्त्कीर्ण चार पहिए धर्म चक्र के लक्ष्य है। शीर्ष पर चार सजीव केशरी पीठ से पीठ मिलाए चारो दिशाओं की ओर मुँह किए हुए निर्भयता व गौरव का भाव लिए हुऐ आसीन है। इनकी आकृति भव्य तथा गौरवपूर्ण है। जिसमें सिंह की स्वभावगत उग्रता, हिंस्रता व प्रचण्डता के भाव परिलक्षित नहीं होते। सिंहो का खुला हुआ मुख, स्वपनिल आँखे तथा मूंछो का प्रदर्शन अपने आप में स्वभाविक न होते हुए भी भाव संवेदना की दृष्टि से बहुत प्रभाव शाली है। उनके फहराते हुए लहरदार एक एक बाल बड़ी बारीकी, चारूता व कला दक्षता से निर्मित हुआ है। जो उसके सौंदर्य की उत्तरोतर वृद्धि करता है। चारों मूर्तियाँ में नपी हुई समानता है।

चित्र 2 – सिंह शीर्ष – सरानाथ

शीर्ष सिंहो में आज भी इतनी ताजगी प्रतीत होती है, मानो आज ही बनी हुई है। रायकृष्णदास के अनुसार ''कहीं से लबरपन, बोदापन या भद्दापन नहीं है। न एक छेनी कम लगी है, न एक छैनी अधिक'' सौन्दर्य और समानुपातिक समविभक्तता की दृष्टि से श्रेष्ठ है। वस्तुतः शिल्प की सम्पूर्ण रचना लावण्य शैली, भाव, मुद्रा आदि की दृष्टि से आदर्श रूप में है। मार्शल महोदय ने समीक्षा करते समय लिखा है कि ''सारनाथ की शीर्ष मूर्ति यद्यपि अद्वितीय तो नहीं तथापि तृतीय शती ई.पू. में विश्व की समस्त विकसित कलाओं में यह सर्वाधिक विकसित कला कृति है। इसके शिल्पी को पीढ़ियों का अनुभव प्राप्त था। शक्तिशाली सिंहो की उभरी हुई शिराए और माँसपेशियाँ तनी हुई है। फलक पर निर्मित पशु आकृतियों में ओज पूर्ण आदर्शात्मक अंकन है। इस समग्र शिल्प में आदिम कला को कोई चिन्ह नहीं है। जहाँ तक नैसर्गिकता अभिष्ट थी, मूर्तिकार में आकृति का आदर्श नैसर्गिक रूप ही रखा है और बड़ी ही स्पष्टता एवं विश्वास के साथ आकृति को कोरा है।''

बैंजामिन रोलैण्ड ने स्तम्भ की कल्पना ब्रहमाण्ड के प्रतीक के रूप में की है। उन्होंने चारों दिशाओं की ओर मुँह किए हुए तथा पीछे से संयुक्त सिंहो को चार दिशाओं के प्रतिनिधि के रूप में, फलक पर उत्कीर्ण चक्र को ग्रहों के रूप में तथा शीर्ष पर स्थित चक्र को सूर्य के प्रतीक के रूप में स्वीकार किया है।

सारनाथ स्तम्भ का यह सिंह शौर्य परगहा जिसकी ऊँचाई छः फीट से अधिक है जो कभी 50 फुट ऊंचे स्तम्भ पर रखा हुआ था। परन्तु किसी प्राकृतिक दुर्धटना से यह गिर गया। सौभाग्य वश हल्की चोट खाकर यह सुरक्षित बच गया और वर्तमान में सारनाथ संग्रहालय में सुरक्षित है।

स्तम्भ शीर्ष के विविध अंग

1. बिना माठा हुआ नीचे का बुनियादी पत्थर जिसके ऊपर स्तम्भयष्टि खड़ी की गई है। इसके चौकोर छेद में से स्तम्भ का कुद भाग बिठाया गया है।
2. स्तम्भ अथवा ऊंची लाट।
3. पूर्णघट जिसमें बड़ा और प्रफुल्लित पद्मकोष है; जिसकी लहराती हुई पंखुड़िया या मौजपत्ते बाहर की ओर लहरा रहे है।
4. गोल अण्ड या चौकी जो दिकमण्डल या चक्रवाल की आकृति की है। उस पर चार महा आजानेय पशु हाथी, सिंह, घोड़ा, वृषभ और चार छोटे चक्र अंकित है।
5. चार सिंह जो पीठ सटाए उकडू बैठे है।
6. महाचक्र जो वर्तमान में खण्डित हो चुका है, जिसके कुछ टुकड़े ही शेष बचे है।

मौर्यकालीन शिल्प कला में प्राप्त स्तम्भों के अतिरिक्त मूर्तिशिल्प भी प्राप्त हुए है। जिसे विद्वान मौर्य कालीन लोक–कला परम्परा के अन्तर्गत स्वीकार करते है। जिसका कारण मात्र राजकीय संरक्षण में इन मूर्तियों का निर्माण न होकर, गैर शासकीय शिल्पियों द्वारा लोक परम्परा से हुआ है। लोक जीवन में यक्षों और यक्षिणियों की पूजा परम्परा बुद्ध के पूर्व से ही चली आ रही थी। ऋग्वेद, अथर्ववेद गोभिल गृह्यसूत्र आदि वैदिक ग्रन्थों में यक्ष पूजा के संकेत मिलते है। वैदिक काल से चली आ रही इस यक्ष पूजा की प्रथा का हिन्दू,जैन और बौद्ध धर्मो ने समान रूप से स्वीकार किया है। धन धान्य, समृद्धि तथा शक्ति के प्रतीक के रूप में उनकी उपासना प्रचलित थी। इसके साथ ही इनका सम्बन्ध अमरता, दीर्घजीवन, और उत्तम स्वास्थ्य के साथ माना जाता था। प्रत्येक गांव में इनका चौर (स्थान) निर्मित किया जाता था। ये अतिमानवीय महाकाय मूर्तियाँ खुले आकाश के नीचे स्थापित की जाती थी।

इन यक्ष–यक्षिणि मूर्तियों की शैली मानवीय यथार्थ को लिए हुए थी ये मूर्तियाँ महाकाय या महाप्रमाण है और माँस पेशियों की बलिष्ठता व दृढ़ता उनमें प्रत्यक्ष है। इनको चतुर्मख दर्शन के आधार पर काट कर गढ़ा गया है। परन्तु इनके दर्शन का प्रभाव संमुख कोण से प्रभावित होता है। मानों शिल्पकार ने इनको सम्मुख दर्शन के प्रयोजन से ही गढ़ा है। इन यक्ष मूर्तियों के वेष में सिर पर पगड़ी, कन्धों और भुजाओं पर उतरीय जिसका बन्धन छाती पर भी दिखाया गया है। नीचे धोती पहने है जो कमर में कायबन्धन अथवा मेखला से बन्धी है।

इनके आभूषण में कानों में भारी कुण्डल, गले में भारी कंठला, छाती पर चपटा तिकोना हार, बाहुओं पर अंगद है। मूर्तियों को

थोड़ा स्थूल या धटोदर दिखाया है; जैसे कि परखम और पवाया की मूर्तियों में स्पष्ट है।

यक्ष मूर्तियाँ को कला इतिहासकार किसी राजवंशीय प्रतिष्ठित शैली में न मानकर लोक शैली का एक रूप मानते है। इस प्रकार की अनेक मूर्तियाँ मथुरा से उड़ीसा, वाराणसी से विदिशा और पाटलीपुत्र से शुर्पारक तक के विस्तृत क्षेत्र में पाई जाती है। जिनमें मथुरा जिले के परखम, बड़ोदा, झींग का नगरा, पटना के विभिन्न भागों से प्राप्त तथा ग्वालियर, भोपाल के बेसनगर से यक्ष–यक्षिणि मूर्तियाँ विशेष उल्लेखनीय है। इन प्राप्त मूर्तियों में पटना शहर से प्राप्त यक्ष मूर्ति तथा पटना के ही दीदारगंज से प्राप्त चामर ग्रहिणी यक्षी मूर्तियों पर मौर्यकालीन शैली की चमक है।

दीदारगंज की यक्षी (चामर ग्राहिणी)

पटना के पास दीदारगंज मोहल्ले से मिली चामर ग्रहिणी की ओपदार मूर्ति जो वर्तमान में पटना संग्रहालय में सुरक्षित है। अपने आदमकद, प्रतिमारूप तथा अद्‌भूत गठनशीलता के कारण विशेष महत्व रखती है। इसकी बायीं भूजा खण्डित है; किन्तु दाहिने हाथ में चामर उठाये हुए है। इस पर मौजूद चमकदार ओप मौर्य काल के सुन्दरत्तम उदाहरण में से है।

यह यक्षिणी मूर्ति लगभग पांच फीट छः ईंच ऊंची है। अत्यन्त कोमल व तरल प्रवाह युक्त, मोहक व कमनीय यक्षिणी रूप लिए यह मूर्ति भारतीय शिल्पकला की विशिष्ट नारी मूर्ति है। मूर्ति का मुख मण्डल चिकनाई लिए हुए गोलाकार रूप में है तथा शरीर गठिला है। पेट की सलवटों का उभार अतीव स्वभाविक है। मूर्ति के दाहिने हाथ में चवर है, केश राशि गुन्थि हुई है, हाथ की कलाई में चूड़ियाँ तथा कंगन पहने है। गले में एकावली पड़ी है तथा दो लड़ियों से युक्त लम्बा मुक्ता हार पुष्ट गोल स्तनों के मध्य झूल रहा है। कमर में करधनी पहने है जिसमें पांच लड़िया गुंथी है। पैरो में मोटा कड़ा (आभूषण) है। अधोभाग के वस्त्र सलवटों को दिखाने के लिए लहरियादार गहरी रेखाएँ बना दी गई है। शरीर के उपरी भाग को ढकता हुआ एक पारदर्शक वस्त्र बाऐं कन्धे के उपर से दाहिनी भूजा के नीचे पैर तक फैला हुआ है। पीठिका पर खड़ी इस यक्षिणी मूर्ति पर मौर्यकालीन ओपदार पोलिश की हुई है।

दीदारगंज की इस यक्षिणी मूर्ति में भारतीय नारी सौन्दर्य को मूर्त करने में शिल्पकार पूर्णत' सफल रहा है। जांघ से नीचे की तरफ क्रमशः पतले होते हुए पैर, ग्रीवा की सुडौलता तथा उसके हल्के झुकाव के माध्यम से गति संचार लिये मूर्ति का सौंदर्य ओर भी निखरा प्रस्तुत हुआ है। निहार रंजन राय के अनुसार नगर नवेली की सम्भवतः यह पहली मूर्ति है। उसके सजीव स्वरूप को इस मूर्ति में अंकित किया गया है। आगे चलकर भारतीय कला और साहित्य में रमणी का यही रूप अमर हुआ है।

चित्र 3 – यक्षिणी मूर्ति, दीदारगंज

शुंगकाल (ई.पू. 188–30 ई.)

मौर्यशासकों के शासन काल में संप्रति के बाद मौर्य शासक असफल रहे। अंतिम मौर्यशासक बृहद्रथ के समय राज्य व सेना में असन्तोष अपने चरम पर था; इसका फायदा उठाकर सेनापति पुष्यमित्र ने सेना के सामने ही वृहद्रथ को मार कर समूचे राज्य पर अधिकार कर लिया था। उसका वंश शुंग वंश कहलाया। इसी शुंगकाल में स्तूपों का निर्माण करवाया गया। पुष्यमित्र ने अपने सम्राज्य का विस्तार किया। इसके राज्य की सीमाएं अफगानिस्तान, पंजाब व सियाल कोट तक फैली थी। अपनी राजकीय प्रभुसत्ता को स्थापित करने के लिए इसने दो बार अश्वमेघ यज्ञ भी करवाया।

इस काल की कला के मुख्य उदाहरण सांची व भरहुत है। शैली की दृष्टि से शुंग कालीन मूर्तियों को दो भागों में बाटां जा सकता है–

(क) मौर्यशुंग कालीन कला – उदाहरण स्वरूप सांची की वह मूर्तियां, जिनमें अशोक कालीन शैली की प्रधानता है।

(ख) शुंग कालीन कला – उदाहरण स्वरूप भरहुत की मूर्तियां है।

शुंगकाल भारतीय कला के इतिहास में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है इस काल में मूर्तिकला के कई केन्द्र विकसित हुए, जिसमें सांची, भरहुत, बोधगया व मथुरा आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। स्तूप, चैत्य, विहार, स्तम्भ, चतुः शालवेदिका समेत तोरण और देवस्थान शुंगकाल की कला की ही देन है। स्तूप मिट्टी का बड़ा भारी थूहा होता था जो चिता के स्थान पर बनाया जाता था। इस कारण उसे चैत्य भी कहा जाता था। यह प्रथा बुद्ध के पूर्व से चली आ रही थी। चिता के स्थान पर स्मृति रूप में पीपल का वृक्ष रोपा जाता था या मिट्टी का थूहा बना दिया जाता था। दोनों को ही चैत्य ही कहा जाता था। चैत्य के ऊपर काष्ठ का खम्भा खड़ा किया जाता था, जिसको ''चैत्य–स्तूप'' कहा जाता था। छोटे स्तूप को 'अल्पेशाख्य' तथा बड़े स्तूप को ''महेशाख्य'' कहा जाता था।

स्तूप का सम्बन्ध वर्तमान बौद्ध धर्म से जाना जाता है। परन्तु यह उससे कहीं अधिक प्राचीन है। स्तूप की कल्पना ऋग्वेद में पाई जाती है। वहां अग्नि की उठती हुई ज्वाला को स्तुप कहा जाता है। ऋग्वेद में अंगिरस के एक पुत्र का नाम हिरण्यस्तूप पाया जाता है। जिसका शब्दार्थ है सौने का थूहा या ढेर।

इस युग में मूर्तिकला के विकास हेतु अनुकूल धरातल मिला। इस काल में सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक विकास को बल मिला। भारत का उत्तरी भू–भाग धार्मिक जीवन व्यवस्था में विश्वास रखता है। हिन्दू धर्म में भागवत परम्परा का विकास होने लगा तथा मूर्ति पूजा को स्थान दिया जाने लगा। मथुरा से इस समय विष्णु की कुछ प्रतिमाएँ प्राप्त हुई है; जिन्हें इतिहासकारों ने ई.पू द्वितीय शती में रखा है। मथुरा से प्राप्त बलराम की मूर्ति, बंगाल के चन्द्रकेतु गढ नामक स्थान से प्राप्त हुई सूर्य की मृण्मयी मूर्ति। बोध गया तथा उदयगिरी व खण्डगिरी पहाड़ियों से मिली सूर्य प्रतिमा निश्चित रूप से भक्ति प्रधान तथा सम्प्रदाय प्रधान हिन्दू धर्म के गतिमान विकास के परिणाम है। जिसने कला को प्रेरित किया तथा मूर्तिकला के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस काल का एक पंचमुख शिवलिंग भीटा में प्राप्त हुआ। एक अन्य शिवलिंग दक्षिण के गुड़िमल्लम नामक स्थान पर प्राप्त हुआ। यह अन्य शिवलिंग से भिन्न है। पांच फीट लम्बे लिंग के सहारे प्रकांड शिव डट कर खड़े है। इन उदाहरणों से प्रतीत होता है कि शिव–उपासना व्यापक स्तर पर की जाती रही थी। इस काल में हिन्दू सम्प्रदाय के देव मन्दिरों की बहुतायत थी।

शुंग शासक हिन्दू थे किन्तु उन्होंने बौद्ध व जैन सम्प्रदाय सम्बन्धी कला कार्य में पूर्ण रूची दर्शायी। मौर्यकालीन स्तूप पर विशाल मूर्ति शृंखलाओं का शुंग काल में निर्माण कराया जाना इस बात का द्योतक है। इस काल के सबसे महत्वपूर्ण मूर्तिकला का उदाहरण सांची के अशोक कालीन बड़े स्तूप, चारों दिशाओं वाले तोरण और उसकी परिक्रमा की दोहरी वेदिका है।

सांची का स्तूप

मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल के समीप विदिशा से लगभग नौ किलोमीटर की दूरी पर सांची नाम स्थान से प्राप्त स्तूप की कुछ कृतियाँ शुंगकालीन मूर्तिकला का श्रेष्ठ उदाहरण है। यहाँ से प्राप्त स्तुप सं. 2,3,4 व 7 में संख्या 2 का स्तुप अन्य स्तूप की अपेक्षा अधिक बड़ा है। इस विशान स्तूप का निर्माण अशोक के शासन काल में हुआ है। पर्सी ब्राउन के अनुसार इस स्तुप का विकास चार चरणों में पूर्ण हुआ है। प्रथम चरण में ई.पू. 250 में अशोक द्वारा ईंटों से इस स्तूप का निर्माण हुआ। दूसरे चरण में लगभग डेढ़ सो वर्ष पश्चात् इसे पाषाण खण्डों से ढका गया तथा तृतीय चरण में लगभग 100 ई.पू. के करीब मध्य भाग के चारों तरफ से वेदिका का निर्माण हुआ और चतुर्थ चरण में ई. पू. 53 स्तूप के चार तोरण द्वार निर्मित हुऐ। स्तूप के चारों दिशाओं वाले तोरण और उसकी परिक्रमा की दोहरी वेदिका है। इसका भारी प्रस्तर शिल्प सात वाहन शासको द्वारा बनवाया हुआ है। जो शुंगकाल के आरम्भ से कुछ पूर्व का है। इन तोरणों में चौपहल खम्भे निर्मित किये हुए है जो चौदह फीट ऊँचे है। इन पर तेहरी बडेरियां है जो बीच में हल्की कमानीदार है। इन बडेरियों के ऊपर सिंह, हाथी, धर्म चक्र, यक्ष तथा त्रिरत्न (बुद्ध, धर्म व संघ) के सम्प्रदाय चिन्ह बने है। समुचे तोरण की ऊँचाई चौंतीस फुट है। जिससे इसकी भव्यता का अनुमान लगाया जा सकता है। तोरण पर चारों तरफ बुद्ध के जीवन के तथा उनके पूर्व जन्म के अनेक दृश्य बड़ी सुन्दर अंकन शैली से उभार कर अंकित किये गये है। बडेरियों के दोनों तरफ हाथी, मोर, हिरन,ऊँट, बैल तथा पंख वाले सिंह अंकित किये गए है। उभार कर अंकित किये गए ये शिल्प बड़ी ही सफाई और वास्तविकता से बनाये गये है। अलकरण व सादृश्यता का पूर्ण ध्यान रखा गया है। उदाहरण स्वरूप हिरण के जोड़े को विपरीत दिशाओं में मुँह बनाकर उभारा गया है। खम्भे के नीचे के भाग में अगल–बगल में ऊँचे पूरे द्वार रक्षक यक्ष बने है। खम्भा ऊपर जहाँ पूरा होता है वहाँ ऊपर की बडेरियों के बोझ झेलने हेतु चौमुखे हाथी या बौने बनाए गये है। इनके बाहरी और सहारा

देने की दृष्टि से वृक्ष पर रहने वाली यक्षिणियाँ (वृक्षिकाएं) बनाई गई है। इन यक्षिणियों की भाव–भगिमाएं अत्यन्त मोहक है। समूचा तोरण द्वार अपने आप में साँस्कृतिक परम्पराओं तथा जीवन कौशल को समेटे हुए है।

पत्थर पर उकेरी हुई मूर्तियाँ इतनी सुन्दर व सूक्ष्मता को संजोये है मानो किसी ने पत्थर पर न उकेर कर लकड़ी अथवा हाथीदांत पर बड़ी ही कोमलता व सूक्ष्मता से उभारा है। बुद्ध के जीवन की घटनाओं का अंकन अतिकुशलता के साथ तोरण पर किया गया है। बुद्ध के जन्म के रूप में गज का प्रतीक रूपी अंकन यहाँ किया गया है। कलाकारों के जन्म के रूप में जातक कथाओं का अंकन इस तोरण द्वार पर बड़ी कलात्मक सुन्दरता के साथ किया गया है। बुद्ध के महाभिनिष्क्रमण, माया देवी का स्वप्न, मार विजय तथा सुजाता द्वारा खीर खाने की घटना का मनोहारी अंकन तोरण की बडेरियों पर किया गया है।

सांची के स्तूप के तोरणों पर बुद्ध से सम्बन्धित अनेक प्रतीक चिन्ह जैसे गज, अश्व,वज्रासन बुद्ध पर चिन्ह, चंक्रमपथ और चुड़ा की पूजा का अंकन भी किया गया है। इसके अतिरिक्ति जातक कथाओं का अंकन भी सांची के स्तूप के तोरण द्वार पर अंकित है। शिल्प की दृष्टि से कुछ विशेष उल्लेखनीय है जैसे– वेसान्तर जातक कथा का दृश्य, महाकपि जातक कथा का दृश्य, षडदंत जातक कथा का दृश्य इत्यादि।

जातक कथाओं के अतिरिक्त कुछ ऐतिहासिक घटनाओं का दृश्य भी बड़ी ही कलात्मकता के साथ प्रदर्शित किया गया है एक दृश्य में सम्राट अशोक को तिष्यरक्षिता के साथ हाथी से उतरते हुए दिखाया गया है। एक स्थान पर बुद्ध के अस्थि अवशेष के विभाजन की घटना को बड़े विस्तार से उकेरा गया है, जिसमें बुद्ध की अस्थि राख को आठ बराबर भाग में विभाजित कर दिया गया था।

देवताओं, यक्ष, यक्षिणियों व वृक्षिकाओं का अंकन भी सांची के तोरण पर सुन्दरता के साथ हुआ है। यक्षिणियों के अंकन में शरीर के सौंदर्य तथा परिरेखा द्वारा कमनीय नारी का रूप स्थापित किया गया है। आम व अशोक के वृक्ष की शाखाओं के पकड़े हुए वृक्षिकाओं को स्तूप के तोरण पर स्थान–स्थान पर प्रदर्शित किया गया है।

स्तूप की दोहरी वेस्टनी (बाड़) जो बहुत भारी तथा काफी ऊंची है। उस पर जगह–जगह फुल्ले बने है जिनमें गज लक्ष्मी, कमल कलश तथा खिले हुए कमल अंकित किये गए है। अनेक स्थान पर अनवरत गौ मूत्रिका की दौड़ है। पूरे स्तूप मे कहीं भी बुद्ध की प्रतिमा नहीं उकेरी गई है। जहाँ उनका स्थान है वहां प्रतीक रूप में स्वस्तिक, कमल,या चरण आदि के संकेत से सूचित किये गए है।

तोरणों पर कलाकारों द्वारा अंकित किए गए पुष्प, पती एवं पशु समूह वह उनकी अनुभूति तथा स्वभाविक अभिव्यक्ति का प्रतीक है। गज,हिरण, कमल, लताएं , पीपल आदि अनेक वृक्ष आदि को सौन्दर्यात्मक विशेषता के साथ यहां अंकित किया गया है पशु पक्षियों की आकृतियां प्रायः जोड़े के साथ उन स्थानों पर अंकित की गई जहाँ से बड़ेरियों को एक दूसरे से पृथक होती है। विभिन्न अभिप्रायों के सजीव और कलात्मक अलंकरण की दृष्टि से सांची की तोरण की कला अधिक उत्कृष्ट व रोचक प्रतीत होती है।

चित्र 4 – स्तूप, सांची

कलात्मक विशेषताएं

(1) शुंगकालीन मूर्तिकला में तत्कालीन जन जीवन का चित्रण बड़े ही यथार्थ रूप में प्रस्तुत हुआ है। सांची की मूर्तियों में समर्पण व सौन्दर्य की भावना बहुत सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त हुई है।

(2) इस कला में अलंकरण के प्रति कलाकार का सहज अनुराग स्पष्ट होता है। सजावट की दृष्टि से कलाकार ने बहुत से विधान प्रयुक्त किए है।

(3) सांची की कला में विषय की कहानी अथवा घटना के वर्णन को विस्तार के साथ प्रस्तुत किया है जिससे एक ही इकाई के अन्दर अनेक रूपों का अंकन किया है; जिससे मूर्तिया अधिक घनी हो गई है।

(4) सांची के चित्रों में संयोजन बहुत प्रभावशाली, गठनशीलता लिए हुए तथा अलंकृत है।

(5) इन मूर्तियों को गहराई से न खोदने के कारण उनमें एक विशेष प्रकार का चपटापन परिलक्षित होता है; सम्भवतः चित्रकार काष्ठ शिल्प में अत्यधिक निपुण थे। यद्यपि परवर्ती काल की मूर्तियाँ अपेक्षाकृत अधिक गहराई के साथ उकेरा गया है। यक्ष–यक्षिणी मूर्तियाँ अधिक गहराई के साथ उभर कर बनाई हुई है।

(6) सांची की मूर्तियों के चेहरे की बनावट में 3/4 चश्मीय कोण को प्रायः प्रयुक्त किया गया है।

(7) सांची की मूर्तियों में प्रतीकात्मकता है जैसे बोधिवृक्ष –जिसके नीचे बैठकर बुद्ध ने तपस्या की थी, पद्मासन–जिस पर बैठकर बुद्ध उपदेश दिया करते थे, पादूका–जिसे बुद्ध पहनते थे, अश्व–जिस पर बैठकर वह बाहर गये थे। हीनयान के अनुसार पवित्र बुद्ध को मानव रूप में दिखाना उचित नहीं माना जाता था।

(8) सांची कला ने मौर्य काल से प्रेरित होकर सृजनात्मक आयाम का विस्तार किया और वृहत स्तर पर मूर्तन का कार्य हुआ और कालान्तर में सांची की कला ने स्वयं में निज शैली की मान्यता को प्राप्त कर लिया।

भरहुत का स्तूप

मध्यप्रदेश के सतना जनपद में स्थित भरहुत में निर्मित शुंग कालीन स्तूप को प्रकाश में लाने का कार्य कनिंघम महोदय ने किया। आज भरहुत में स्तूप का कोई अवशेष शेष नहीं है। स्तूप के विभिन्न भाग भारतीय संग्रहालय कलकता, इलाहाबाद, म्यूनिसिपल संग्रहालय तथा अनेक हिस्से विदेशी संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। 1893 ई. में कनिंघम महोदय ने भरहुत में एक बौद्ध विहार के अवशेष तथा वेष्टिनी वेदिका के तीन स्तम्भ देखे थे, जो तोरण के आधार थे। ये वेष्टिनी मूल में गोलाकार रूप में थी। इस वेष्टिनी की परिधि दौ सौ बारह फुट, नौ ईंच थी। एक वृताकार घेरा जिसकी परिधि अठ्ठासी फुट छः ईंच के लगभग थी जो इस वेष्टिनी के अन्दर प्राप्त हुआ।

कनिंघम का मानना था कि 1670 ई. के लगभग भरहूत स्तूप जीर्ण शीर्ण अवस्था में अवश्य रहा होगा। जिसकी पुष्टि नागौद राज्य के जमींदारो ने भी की है। इस अवशेष में युक्त ईंटो से यह माना जाता है कि यह मौर्यकाल की है। अतः यह माना गया कि इसका आरम्भिक निर्माण मौर्यकाल में ही हुआ है। भरहुत के स्तम्भों से जो लेख उत्कीर्ण हैं, जिसमें राजाओं के नाम का उल्लेख है। इस लेख में सुमनमरजो (शुंग राजा) लिखा है। सम्भवतः शुंगकाल के राजाओं ने स्तूप का विस्तार करवाया है तथा इसकी वेदिकाओं का निर्माण तथा अलंकरण करवाया।

इतिहासकारों का यह मत है कि इस स्तूप का प्रारम्भिक निर्माण अशोक कालीन है तथा इसकी वेदिकाओं का निर्माण तथा अलकंरण–शुंग कालीन ई.पू. द्वितीय व प्रथम शती का है। भग्नावशेषों के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि स्तूप के चतुर्दिक एक प्रदक्षिणा पथ तथा स्तूप के शीर्ष भाग पर एक हर्मिका थी। स्तूप के चारों ओर नौं फीट ऊंची वेदिका थी। भरहुत स्तूप की प्राप्त इन वेदिकाओं पर उत्कीर्ण आकृतियों से तत्कालीन शिल्प विधान और कला शैली का ज्ञान होता है।

सांची के स्तुप के बाद कला के क्षेत्र में इसका स्थान महत्वपूर्ण हैं। भरहुत के स्तूप के कटघरे, द्वार तथा खम्भे स्थूल बने हुए है। यहां कि मूर्तियां भारी एवं अनगढ़ बनी हुई है। इनके विषय यक्ष, यक्षिणी, नाग, बौद्ध धर्म के दृष्य तथा जातकों की कहानियाँ है। जो चक्रो पर अलकृंत की गई। अर्धचक्रो पर तथा उनको मिलाने वाली जगहों पर फूल, पत्तियों द्वारा अंलकृत किया गया है। इनकी कलात्मक गुणवत्ता सांची जितनी श्रेष्ठ तो नहीं कही जा सकती पर प्रभावी अवश्य है। यहां मूर्तियाँ चपटे डिल–डौल में बनी हुई है। कुछ मूर्तियाँ में थोड़ी गति अवश्य प्रतीत होती है, पर अधिकांश मूर्तिया जड़ सी प्रतीत होती है। यहां उकेरी गई मूर्तियों में लगभग चालीस मूर्तियाँ बौद्ध जातक कथाओं पर आधारित हैं तथा छः मूर्तियाँ भगवान बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्धित है। इन दृश्यों में दो दृश्य विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रथम तथागत के दर्शन हेतु जाते हुए कौशलाधीश प्रसेनजीत के रथ का दृश्य तथा द्वितीय तथागत के दर्शन को हाथी पर जाते हुए अजातशत्रु का दृश्य। दोनो ही चित्र बहुत सजीव बने हुए है।

चित्र 5 – प्रसेनजित का आगमन

सांची की कला के समान ही यहाँ पर भी भगवान बुद्ध की मूर्तियों का अभाव है। इनके स्थान पर संकेतो द्वारा उनकी उपस्थिति दर्ज करवाई गई है। भगवान बुद्ध के स्थान पर कमल के समान पैर, धर्म चक्र, छाता, खडाऊं, बोधि वृक्ष इत्यादि का अंकन किया गया है। एक स्थान पर सीढ़ी चित्रित की गई है। उसकी ऊपरी सीढ़ी पर पाद चिन्ह अंकित है जो भगवान बुद्ध का स्वर्ग को जाना संकेत करता है। यहां की मूर्तियों की गुणवत्ता साधारण है। पशु अंकन बहुत ही रूचिकर हुआ है तथा पेड़ो और वास्तुकला को बारीकियों के साथ बहुत सुन्दर ढंग से उत्कीर्ण किया गया है।

यहाँ पर एक दृश्य में कमल पर बैठी देवी माया के ऊपर उल्टे घड़ों से हाथियों द्वारा पानी डालते हुए बताया गया है। कुछ विचारक इसे गजलक्ष्मी रूप में भी स्वीकार करते हैं। बौद्ध स्तूपों को देवताओं द्वारा पूजते हुए भी बनाया गया है। यहाँ पर भी जन सामान्य जीवन का दर्शन भी इन शिल्प से ज्ञात होता है। यहाँ की मूर्तियों में घर की स्त्रियाँ, सड़क पर चलते लोग, नाच–गाने, जंगली पशु इत्यादि हैं। शहर के द्वार लकड़ी तथा ईटों के बने हुए बताये है, ऊपर मेहराब बने हुए हैं। बुर्जाकार विथिकाओं का अंकन भी यहाँ पर किया गया है। लकड़ी के कई मंजिलों वाले मकान बनाए गये हैं, यहाँ की छते गुम्बजाकार हैं, मन्दिरों के ऊपर शिखर बने है खम्भों पर देवताओं व पुज्य लोगो की मूर्तियां बनाई गई है। जो तत्कालीन जीवन परिवेश, संस्कृति की झलक प्रस्तुत करती है।

यहाँ उत्त्कीर्ण दृश्यों में लगभग चालीस जातक कथाओं को बड़े स्तर पर बनाया गया है जिसमें वेसंतर जातक कथा, महाकपि जातक कथा, षडदंत जातक कथा कला की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

चित्र 6 – माया देवी का स्वप्न, भरहुत

भरहुत की मूर्तियों की विशेषताएं

1. भरहुत की मूर्ति शिल्प में यक्षिणियों की मूर्तियां अधिकतर वामन मनुष्य की पीठ पर खड़े अंकित की गई है।
2. भरहुत की कला में लोक शैली के दृश्य बहुतायात से अंकित हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भरहुत का शिल्प लोक कला से प्रभावित है।
3. यहाँ की कला में सांची की कला जितना सुथरापन नहीं है, मूर्तियों में सांची के समान सजीवता एवं सुनियोजित गठनता का अभाव है।
4. यहाँ पूरी आकृतियां चूनेदार बलुआ पत्थर से बनी हुई है।
5. भरहुत की आकृतियां अपेक्षाकृत छोटी है तथा इनके निर्माण में काल्पनिक अनुपात को महत्व दिया हैं।
6. भरहुत में बनी मूर्तियों की आँखें पूरी खुली हुई बनाई गई है जो की अन्य स्थान की कलाओं में नहीं पाई जाती।
7. यहाँ की मूर्तियों की आकृतियाँ माँसल व पर्याप्त उभार के साथ उकेरी गई है।
8. स्त्रियों अथवा यक्षिणी मूर्तियों में मुद्राओं को लयात्मक बनाने के प्रयोजन से पैरों को मोड़ कर अथवा हाथ को कमर पर रखे या झूलते हुऐ बनाया गया है।

बोधगया का शिल्प

शुंगकाल के प्रतिनिधि मूर्ति शिल्प में सांची व भरहुत के अतिरिक्त बोधगया के शिल्प को महत्वपूर्ण माना गया है, बोधगया वह स्थान है जहाँ बुद्ध ने सम्बोधि प्राप्त की थी। यह गया से 6 मील दक्षिण प्राचीन उरूविल्व ग्राम के समीप है। अशोक ने वहीं बोधिघर का निर्माण करवाया था। बोधिगृह के चारो तरफ ईंटो से एक वेदिका बनवाई गई थी। शुंककाल में ईटो के स्थान पर पत्थरों का प्रयोग किया गया तथा भरहुत व सांची के समान ही स्तम्भ, सूची और उष्णीय निर्मित करवाये गये। यह वेदिका पूर्णरूप से नष्ट हो गई परन्तु अधिकांश स्तम्भ और सूचियों के अवशेष इस कला की बानगी प्रस्तुत करते है। आज बोधिगया में जो महाबोधि मन्दिर है उसका स्वरूप ग्यारहवीं श्ताब्दी के लगभग शिल्पियों ने मरम्मत करके प्रदान किया हैं ऐसा मानना है कि चीनी यात्री हवेनसांग ने जिस स्वरूप का वर्णन किया था, अवशेष रूप में आज भी विद्यमान है। हवेनसांग के अनुसार लगभग 160 फीट ऊंचा तथा 50 फीट चौड़ाई के इस विहार पर प्लास्टर किया गया था। यहां बुद्ध की अनेक स्वर्ण मूर्तियां तथा विहार की विथिकाओं की पंक्तियां सुसज्जित थी। बोधगया मन्दिर का अधिकांश भाग शुंग–युगीन कला का परिचायक है। मन्दिर के एक अहिच्छत्र पत्र ई.पूं. प्रथम शती शुंग कालीन शासक इन्द्रमित्र तथा ब्रह्ममित्र की रानियों के नाम खुदे हुए है।

बोधगया मन्दिर की रेलिंग के उत्कीर्ण का समय भरहुत व सांची के मध्यकाल का माना गया है। बोधगया की रैलिंग प्रथम शती के पूर्वार्द्ध में निर्मित की गई जान पड़ती है। वर्तमान बोधगया मन्दिर तथा शिखर कुषाण कालीन माना जाता है, क्योकि मन्दिर के वज्रासन के पास कुषाण कालीन सम्राट हुविष्क का एक सिक्का मिला है। वर्तमान में बोध मन्दिर के वृक्ष, वज्रासन तथा चंक्रमपथ वेदिका से घिरे हुए है, कुछ छोटे–छोटे स्तुप परिधि क्षेत्र से बाहर है। इसका तोरण द्वार पूर्वी दिशा में बना है तथा वेष्टनी का भाग उत्तर–पश्चिम में ही शेष रह गया है। बोधगया की वेष्टनी पर उत्कीर्ण कथानक व प्रतीकों से यह प्रतीत होता है कि ये हीनयान से सम्बन्धित है।

भरहुत की वेदिका के अलंकरण की अपेक्षा बोधगया की कला अपेक्षाकृत उन्नत मानी गई है। कलाकारों के पास पर्याप्त चित्र धरातल उपलब्ध न होने के बावजूद आकृति को सुन्दर बनाया गया है। आकृति सुगढ़, गोलाकार रूप लिये व सजीव है एक गतिमान ऊर्जा का संचार समुचे दृश्य में प्रतीत होता है। पर्याप्त स्थान होने से संक्षिप्तकरण व सूक्ष्मता से अंकन किया गया है। फिर भी कला की दृष्टि से उत्कर्ष्ट प्रतीत होता है। दृश्य चित्रों में अनावश्यक आकृतियों को सीमित कर श्रेष्ठ लयात्मक आकृतियों का अंकन किया गया है।

वेष्टीका वेदिकाओं पर उत्कीर्ण शिल्प में बुद्ध की उपस्थिति को प्रतीक रूप में ही प्रस्तुत किया है तथा बुद्ध जन्म के अनेक दृश्यों का अंकन किया गया है। माया देवी को सोते हुए, सुजाता द्वारा तपस्वी को खीर देना, मार की कन्या व सैनिको का आक्रमण आदि का चित्रण बोधिवृक्ष के नजदीक ही किया गया है। वेष्टनी पर अनेक जातक कथाओं का अंकन किया गया है। जिनमें वेसांतर, षडदंत व महाकपि आदि जातक कथाओं का चित्रण हुआ है। बुद्ध के जीवन की कई घटनाओं के चित्र है जिनमें राजगृह के नालाहस्ति दमन का दृश्य, जेतवन विहार का दृश्य, वैशाली के महाप्रदर्शन आदि का दृश्य तथा राजगृह के नालाहरित दमन का दृश्य शिल्प व संयोजन की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

बोधगया की वेष्टनी पर हिन्दू देवता सूर्य का चित्रण भी हुआ है। इसमें सूर्य एक चक्र वाले रथ पर सवार है जिनको चार घोड़े खींच रहे है तथा सूर्य के हाथ में घोड़ो की रास है। दोनों ओर एक–एक धुनर्वाणधारी स्त्रियां प्रदर्शित की गई है जो ऊषा व प्रत्यूषा है। कला की दृष्टि से उत्त्कर्ष कलाकारी का उदाहरण है। घोड़ो की उठती टापों व उनकी मुद्रा में अविराम गति, शक्ति को स्फूर्तिमान रूप से अभिव्यक्त किया गया है। बौद्ध मन्दिर पर हिन्दू मान्यता का अंकन तत्कालीन धार्मिक सहिष्णुता का परिचायक है। एक अन्य विलक्षण चित्र भी बोधगया की वेष्टिका पर उत्कीर्ण है। यह उल्लेखनीय अंकन बारह राशि चिन्हों का है। जिसे प्रमुखता के साथ स्थान दिया गया है। इन बारह राशियों की आकृतियों को ज्योतिष के आधार पर निर्धारित किया गया है। राशि आकृति की मूर्ति को देखकर ही सम्बन्धित राशि का ज्ञान स्वतः हो जाता है। हालांकि इन राशियों के नीचे इनके नाम अंकित नहीं किये गये है, परन्तु अपने रूप विधान से ही पहचानी जा सकती है जैसे पुष्पमाला धारण किए तथा पुष्प मुकुट पहने नवयौवना को आकृति से कन्या राशि, आसन पर अधिष्ठित मानव से तुला राशि, मृग शरीर वाले धनुर्धारी से धुन राशि तथा प्रणय क्रीड़ा में रत स्त्री–पुरूष आकृति से मिथुन राशि का ज्ञान स्वतः ही जाता है।

इसके अतिरिक्त बौध गया की प्रस्तर वेदिका पर श्री लक्ष्मी व गजलक्ष्मी रूप वाली मूर्तियाँ भी उत्कीर्ण की हुई है।

आन्ध्रसातवाहन काल (271 ई.पू. से 30 ई.पू.)

भारतीय मूर्तिकला के विकास में आन्ध्र सातवाहन काल का विशेष महत्व है। इक्ष्वाकुवंशीय व सातवाहन शासन कला में मूर्तिकला को विशेष प्रोत्साहन मिला जिसके परिणाम स्वरूप दक्षिण पूर्वी भारत में अनेक स्तूपों का निर्माण हुआ। यह काल व्यापारिक समुन्नत सम्बन्धों व आर्थिक समृद्धि का था। आर्थिक सम्पन्नता से कला का विकास व मूर्ति निर्माण कार्य निर्विध्न व रूचिकर रूप से प्रफुल्लित हुआ। नासिक, कार्ले, अमरावती आदि से मिले अनेक अभिलेखों में दानदाताओं द्वारा दिये गये दान का उल्लेख प्राप्त होता है। धर्म और कला के प्रयोजनार्थ दान करना सामाजिक प्रतिष्ठा का सूचक माना जाने लगा था तथा धार्मिक रूप से दान की प्रवृति दानदाता को पुण्य प्रदान करती थी।

इस युग की मूर्तिकला सम्पदा गोदावरी तथा कृष्णा नदियों के मध्य भू भाग से प्राप्त होती है। यह भू भाग जिसमें जग्यपेट, भट्टि प्रोलु एंव नार्गाजूनकोण्डा आदि प्राचीन नगर आते है, वे तीसरी से पांचवी शती ई. तक बौध धर्म व कला के महत्वपूर्ण केन्द्र थे।

अमरावती

अमरेश्वर शिव के नाम पर वर्तमान नाम धारण करने वाला यह स्थान गुण्टूर से 18 मील की दूरी पर, कृष्णा नदी के दाहिने तट पर स्थित है। अमरावती के पास ही धरणीकोट अथवा धान्य कोट नामक स्थान सातवाहनों की एक राजधानी थी एंव बौद्धों का महत्वपूर्ण केन्द्र भी थी। अमरावती के प्राप्त अवशेषों से यह सिद्ध हो जाता है कि यह अपनी उत्कर्ष कला के कारण कला इतिहास में विशिष्ट स्थान रखता है। स्तूप के मूल स्थान पर अब कुछ भी शेष नहीं रहा है। कर्नल मैंकेजी 1797 ई. में जब इसको देखा तो विध्वंसित अवस्था में था। इन्होंने इसके उपलब्ध अवशेषों

तथा वस्तु विन्यास के आधार पर मानचित्र निर्मित करवाया तथा यहां से प्राप्त अवशेषों को मद्रास, कलकत्ता तथा लन्दन के संग्रहालयों में सुरक्षित करवाया। कर्नल मैकेजी, स्वेल, वर्गेस ने अमरावती शिल्प का विस्तृत अध्ययन कर उसको व्यवस्थिति रूप देने का प्रयास किया। विभिन्न कला इतिहासकारों ने माना कि यह काफी बड़े आकार का था। जिसका अर्द्ध व्यास 108 फीट तथा इसकी ऊंचाई 14–15 फीट थी। ऊपर भाग पर संगमरमर का आवरण बना हुआ था। स्तूप के वृताकार आधार के ऊपर गुंम्बद निर्मित था, जिसका निचला भाग भी संगमरमर के फलको से ढंका हुआ था। जिस पर बौद्धधर्म से सम्बन्धित उनके दृश्य उत्कीर्ण थे। इसके विकास के कई चरण थे। कला इतिहासकारों ने इसे चार चरण में विभाजित किया हैं। जिसका आधार अवशेषों से प्राप्त लिपि को आधार बनाया गया है।

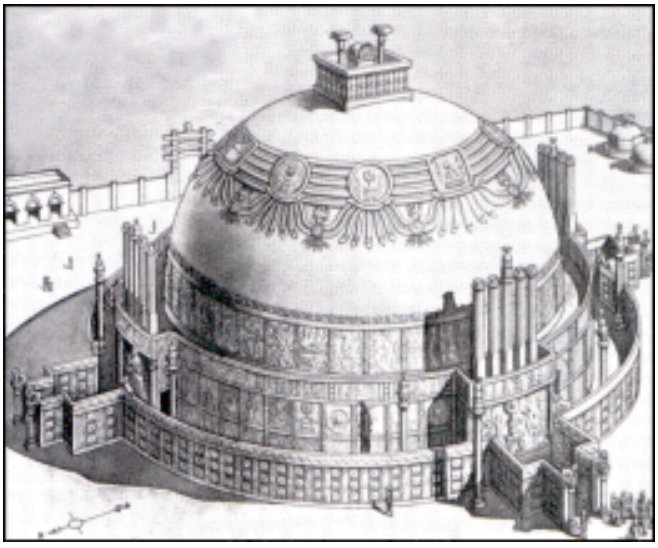

चित्र 7 – अमरावती स्तूप का रेखाचित्र

प्रथम चरण (200 ई.पू. 100 ई.)

प्रथम चरण में अमरावती स्तूप का निर्माण हुआ था। स्तूप की स्थापना उससे भी पूर्व द्वितीय शती ई. पू. की मानी जाती हैं इस चरण के अन्तर्गत वेदिका के मूल आधार के अंश आते है। जिनमें काल्पनिक पशुओं एवं मानवीय रूपों से युक्त चित्र बल्लरियों का निर्माण हुआ है। इस चरण की मूर्तियों की संख्या काफी कम प्राप्त है और जो प्राप्त है वह अधिकांश रूप से खण्डित है। इनमें सिंह शरीर के साथ गुरूड़ मस्तक तथा मकर के मुख से निकलते पत्र–लताऐं आदि उकेरी है। इस चरण में बुद्ध के स्थानों पर प्रतीक का ही प्रयोग हुआ है। वेदिका के ऊपरी भाग में यक्ष मूर्तियों तथा बुद्ध जीवन की घटनाओं का अंकन हुआ हैं। जिनमें महानिभिस्क्रमण, जटिलों का धर्म–परिवर्तन, वानरेन्द्र द्वारा बुद्ध को मधुदान, पादूका–पूजा, भिक्षापात्र की पूजा आदि दृश्यों का अंकन हुआ है। इस चरण की मानव आकृतियों के अंगो में गति की अपेक्षा स्थिरता का भाव अधिक है तथा संयोजन व मुद्रा विनिमय में समविभक्तता का अभाव है। पशु अंकन में अपेक्षाकृत अधिक ऊर्जा, गति व चपलता का प्रभाव है।

द्वितीय चरण (100 ई. 150 ई.)

द्वितीय चरण में स्तूप की शिल्पकला अधिक स्वभाविक है। अनेक अलकृंत रूपों द्वार शिला खण्डो को सुसज्जित किया गया है। इस काल की कला में अभिप्रायों में वृद्धि हुई है। आकृतियों के विभिन्न नई मुद्राओं में स्वभाविक मुख मुण्डल तथा मुद्राओं में प्रभावोत्पदकता है। दृश्यों को आलंकारिक रूचि से सुन्दरता के साथ सुसज्जित किया गया है। विषय में पूर्व के समान ही बुद्ध के जीवन से जुड़े प्रसंगों को अंकित किया गया है। बुद्ध के स्थान पर पूर्णघट, पादूका, धर्मचक्र, भारघर्षण, नागराज का दृश्य अंकित हुए है। नारी आकृतियां भी मथुरा शिल्पकाल के समान परिवेश के साथ साम्य रखती है। शारीरिक गठन शीलता में हल्का भारीपन उपस्थित है। नारी आकृतियों में कमर के नीचे पटका बनाया हुआ है।

तृतीय चरण (150 ई. 200 ई.)

यह कला के चरमोत्कर्ष काल का चरण है। इस काल में अमरावती स्तूप के वेदिका स्तम्भ, उष्णीय तथा अन्य शिला पट्टों पर सुन्दर कलात्मक व भावपूर्ण दृश्यों का अंकन मिलता है। इस चरण की कला में आकृतियों का अंकन बड़ी ही भावपूर्ण है। मानवीय संवेदनाओं को पूर्ण रूप से ये कला–आकृतियाँ अभिव्यक्त करती है। धर्म प्रधान विषय होते हुए भी कलाकारों ने भॉव–भंगिमाओं द्वारा जीवन के आनन्द को ओजस्वी रूप में अपनी कलाकृतियों से प्रस्तुत किया है। अलंकरण के प्रति सहज रूचि तथा द्वितीय चरण में ही फलित अलंकरण चित्रण की प्रवृति तथा तृतीय चरण की भावयुक्त अंकन ने कला को उत्कर्ष स्तर पर पहुंचा दिया। बुद्ध के जीवन से तथा बुद्ध के जन्म की जातक कथाओं के दृश्यांकन में लालित्य पूर्ण अभिव्यक्ति तथा आकृतियों को विन्यास रूचिकर बना हुआ है। मानवीय अंकन में शारीरिक गठन और परिष्कृत रूप से उद्भासित सौन्दर्य कला को श्रेष्ठ मानक प्रदान करता हैं।

चतुर्थ चरण (200 ई. 250 ई.)

इस चरण में निर्मित मूर्तियों में मानवाकृतियां किंचित लम्बी निर्मित हुई है। मानवीय गठनशीलता में क्षीणता नजर आने लगती है तथा अलंकरण के प्रति रूचि को कलाकारों ने इन मानव आकृतियों, मोतियों के हार को उत्त्कीर्ण करके दर्शाया है। मकर के मुंह से निकलते मोतियों के गुच्छों का अलंकरण प्रथम बार यहां प्राप्त हुआ है। इस अलकरण को ''सीमंत–मकरिका'' कहा गया है। इस चरण में भी जातक कथाओं का दृश्यांकन

तथा बुद्ध के जीवन प्रसंगों का अंकन हुआ है। जिनमें नागों द्वारा रक्षित रामग्राम–स्तूप, नन्द की धर्म दीक्षा, राहुल का उतराधिकार विशेष उल्लेखनीय है।

स्मिथ महोदय ने अमरावती की कला पर कहा है कि ''अमरावती के शिला पट्टों पर पशु जीवन तथा परम्पराबद्ध अलंकरणो को आकर्षक रूप में उद्धृत किया गया है और उनमें मानवीय आकृतियों की विभिन्न एवं जटिल गतिविधियों को अत्यन्त कुशलता एवं लाघवता के साथ उकेरा गया है।''

कुषाणकालीन मूर्तिकला (50 ई – 300 ई.)

मौर्य वंश के बाद भारतीय इतिहास में कुषाण वंश अत्यन्त गौरवशाली राजवंश के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है। मौर्य शासकों के पतन के बाद उत्तर भारत में दो सौ वर्षो तक उथल–पुथल चलती रही। कुषाणों ने एकता व स्थिरता को पुनः स्थापित किया। कुषाण राज्य अरब सागर से लेकर गंगा तक विस्तार लिए हुए था। कुषाणों के संरक्षण में कला शिल्प एक विकसित परम्परा को प्राप्त हुई है। मथुरा व गांधार जैसे कला केन्द्रों की शिल्प व ख्याति समूचे भारतवर्ष में सम्मानपूर्वक स्वीकार की जाती थी। मथुरा से बनी शिल्पकला दूर–दूर तक भेजी जाती थी।

कुषाण बड़ा शक्तिशाली योद्धा था उसने अपने शौर्य से हिन्दू कुश के दक्षिण भाग के स्थापित चार शक राज्यों को अपने आधिपत्य में ले लिया तथा अफगानिस्तान, पश्चिम पूर्वीय गांधार को भी जीत लिया। कुषाण राज्य की पश्चिमी सीमा पूर्वी ईरान तक पहुंच गई। कुषाण बौद्ध था। लम्बे शासन के बाद उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र विमकफस ने लगभग 30 ई. में सत्ता संभाली। विमकफस शैव मतावलम्बी था। उसने मथुरा को भी अपने राज्य में शामिल कर लिया था। सुप्रसिद्ध महाराजा कनिष्क विमकफस का पुत्र था। जिसने अपनी सीमाओं का विस्तार कर मध्यदेश और मगध तक अपनी सता विस्तारित कर ली थी तथा पुरूषपुर (पेशावर) को अपनी राजधानी बनाया।

मथुरा

उत्तरी भारत में मथुरा कला का बहुत बड़ा केन्द्र था। मथुरा हिन्दू, बौद्ध, जैन और लोकधर्म का केन्द्र रहा है कला की दृष्टि से मथुरा का स्थान अतिमहत्वपूर्ण है। मथुरा न केवल हिन्दू धर्मावलम्बियों के लिए यह कृष्ण की जन्म भूमि होने से महत्वपूर्ण है। अपितु बौद्धों में भी मथुरा की काफी मान्यता है। बुद्ध का यहां आगमन हुआ था अतः इस स्थान की महिमा बौद्ध अनुयायियों में भी है। जैन तीर्थकर सुपार्श्वनाथ और नेमिनाथ का भी मथुरा से सम्बन्ध रहा है। यहां पर बौद्ध, जैन व हिन्दू मत से सम्बन्धित धार्मिक मूर्तियों का व स्तूपों का निर्माण हुआ है। मथुरा शिल्प में प्रयुक्त सुन्दर मंजीठियां रंग का पत्थर रूपबास ओर सीकरी खदानों से लाया जाता था।

मथुरा में कला और शिल्प के लगभग पांच हजार अवशेष मथुरा से प्राप्त हुए है। जिनमें से अधिकांश कुषाण युग के है। कुषाण शासको में से कनिष्क, हुविस्क तथा वासुदेव के राज्यकाल में मथुरा की कला अपने चरमोत्कर्ष पर थी।

सौन्दर्य की दृष्टि से मथुरा के कला शिल्पकार सांची व भरहुत की सूक्ष्म कारीगरी को और भी श्रेष्ठता के साथ प्रयुक्त किया। रूप निर्माण में बाह्यरूप निर्माण और आन्तरिक भावों में समन्वय स्थापित कर भावपूर्ण शिल्प कार्य किया है। इनका सौन्दर्यात्मक मानक अपने श्रेष्ठ स्तर पर पहुंच गया था। मथुरा वेदिका स्तम्भ अन्य जगहों से प्राप्त स्तम्भों से भिन्न प्रकार है। क्योंकि इन शिल्पकारों ने पराम्परागत अलंकरणों व विषयों के साथ नवीन विषयों को भी जोड़ा। मनुष्य की प्रसन्नता को अभिव्यक्त करने के प्रयोजन से प्रकृति चित्रण, उद्यान क्रीड़ा व सलिल क्रीड़ाओं को स्वच्छन्दता के साथ स्तम्भों पर उत्कीर्ण किया है। मथुरा कला की एक अन्य महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही है कि यहां प्रथम बार मूर्तियों के सम्मुख दर्शन को अनिवार्यता त्याग कर पार्श्वगत, पृष्ठगत आदि कई प्रकार के स्थान या मुद्राओं में पुरूष व स्त्रियों की मूर्तियां उत्कीर्ण की गई है। मूर्तियां श्रेष्ठ लालित्यपूर्ण है। स्त्री मूर्तियों को लयात्मक गठनशीलता के साथ अलंकार पूर्ण आभूषण व वस्त्रों को दर्शाया है। नैसर्गिक लावण्य को रूचि के साथ गढ़ा गया हैं।

मथुरा की शिल्प कला, कला इतिहास का मानक स्थापित करती है। यहां पर प्रथम बार बुद्ध की प्रतिमा का निर्माण हुआ जो यहां के शिल्पियों की कला जगत को अद्वितीय सौगात है। इसी प्रकार हिन्दू धर्म सम्बन्धि देवी–देवताओं की मूर्तियों के प्रथम निर्माण का श्रेय भी मथुरा के शिल्पकारों को ही है। विष्णु, दुर्गा, सप्तमातृकाएं, कार्तिकेय आदि की सबसे प्राचीन मूर्तियां मथुरा से ही मिली है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि भक्ति आन्दोलन का प्रारम्भ भी मथुरा से ही हुआ ओर धीरे–धीरे वह सारे उत्तर भार में प्रसारित हुआ। जैन मूर्तिकला के विषय में भी यह श्रेय मथुरा को ही जाता है, क्योंकि सबसे प्राचीन जैन प्रतिमाएं तथा जैन स्तूप मथुरा से प्राप्त हुए है। मथुरा के शिल्पकारों ने जैन तीर्थकरो की भी अनेक मूर्तियां बनाई तथा आरम्भिक रूप निर्धारण के मानक तय किए उसी आधार पर भविष्य में तीर्थकर प्रतिमाओं का विकास हुआ तथा समूचे भारत में इनके रूप को स्वीकार किया गया। जैन तीर्थकर की मूर्तियां दो प्रकार की है। प्रथम खड़ी हुई मुद्रा में जो कायोत्सर्ग मुद्रा में है और इनमें दिगम्बरता प्रत्यक्ष है। उनके हाथ लताहस्त मुद्रा में है। बैठी हुई मूर्ति पद्मासन मुद्रा में है दोनो हाथ अंक के बीच एक–दूसरे के ऊपर रखे हुए है तथा ध्यान की मुद्रा में है। तीर्थकर मूर्तियों की छाती पर श्रीवत्स का चिन्ह है तथा मस्तक पर ऊष्णीय नहीं बनाया गया है। ऋषभ देव के कन्धों पर लटे तथा पार्श्वनाथ के मस्तक के पीछे सर्पफण का टोप बनाया गया है।

मथुरा में बौद्ध जैन व हिन्दू मतावलम्बियों की मूर्तियों का अनवरत निर्माण चल रहा था। वस्तुतः मथुरा धार्मिक सहिष्णुता का अद्वितीय उदाहरण है। विभिन्न मतों की समन्वयात्मक जीवन पद्धति ने प्रेमपूर्ण परिवेश को धरातल दिया जिससे शिल्प कला अपने उत्कर्ष शिखर तक पहुंच सकी। लोक धर्म का भी मथुरा में प्रचार था। यहां यक्ष–यक्षी, नाग, श्री लक्ष्मी व अनेक मातृकाएं आदि की बहुसंख्यक मूर्तियां प्राप्त हुई है।

मथुरा के कुषाणकालीन मूर्ति शिल्प

जैन

मथुरा में ''देवनिर्मित स्तूप'' नामक एक बहुत पुराना स्तूप था जो थूहे के रूप में मौर्यकाल से भी पुराना रहा है। मुनि सुकृत की एक प्रतिमा इस स्तूप की खुदाई से प्राप्त हुई है। जैन स्तूप में अनेक प्रकार के लेख उत्कीर्ण किये हुए है जिन पर कुषाण कालीन तिथियों दी गई है। इस स्तूप से प्राप्त आयग पट्टो का शिल्प की दृष्टि से विशेष महत्व है। आयग पट्ट एक प्रकार का प्रस्तर खण्ड होता है, जिन पर तीर्थकरों की व अन्य पूजनीय आकृतियां बनाई जाती है। मथुरा में कुषाण काल में निर्मित इन जैन तीर्थकर मूर्तियों में स्थानक मुद्रा में निर्मित मूर्तियां दिगम्बर रूप में प्रदर्शित है। इनकी भुजाएं घुटने से नीचे तक फैली है और इनकी भोंहो के मध्य उर्णा (रोम गुच्छ) तथा वक्ष पर श्रीवत्स का चिन्ह बना है। आसन मुद्रा में निर्मित मूर्तियां ध्यान मुद्रा में है तथा नासाग्र स्थिति में है।

बौद्ध मूर्ति

भरहुत, सांची और बोध गया, अमरावती आदि में कही भी बुद्ध की मूर्ति प्राप्त नहीं है। वहां पर बुद्ध के स्थान पर प्रतीक चिन्ह ही प्रयुक्त किए गए है। समूचे शुंगकाल में बुद्ध मूर्ति का अभाव है। किन्तु मथुरा में प्रतीक तथा बुद्ध मूर्ति दोनो का अस्तित्व पाया जाता है कई अवशेषों में प्रतीक व बुद्ध दोनो को एक साथ ही अंकित किया गया है। बुद्ध व बोधिसत्व की मूर्तियां मथुरा में भव्य रूप लेकर उपस्थित हुई है। इनमें राजा कनिष्क के पूर्वकाल की एक भी नहीं मिली है। कुछ विचारकों का मानना है कि कनिष्क से पूर्व वेमकदफ के सिक्कों पर बुद्ध की प्रतिमा बनी है। किन्तु कला इतिहासकार इसे बुद्ध का न मानकर किसी राजा की ही प्रतिमा स्वीकार करते है। राजा कनिष्क के समय प्रचलित सिक्कों पर बुद्ध की मूर्तियां उकेरी गई है जो पूर्णतः बुद्ध की मूर्तियों से समानता रखती है।

मथुरा से प्राप्त बुद्ध मूर्तियों में स्थानक मूर्तिया व आसनगत दोनो ही प्रकार की बुद्ध प्रतिमाएं प्राप्त हुई है। स्थानक मूर्तियों में बुद्ध को यक्ष प्रतिमा कला परम्परा के प्रभाव स्वरूप विशाल डील–डोल वाला निर्मित किया जाने लगा। बुद्ध की मूर्ति निर्माण में महापुरूषों के लक्ष्ण भी सम्मिलित किए जाने लगे। बुद्ध व बोधिसत्व की मूर्तियों में विशेष अन्तर रखा गया। मूर्तिकार द्वारा बुद्ध व बोधिसत्व में अन्तर दिखाने के पीछे एक मान्यता यह भी है कि गौतम ने इक्कीस वर्ष की अवस्था तक राजसिक जीवन का भोग किया था उसके बाद जब सम्बोधि मिली तो बुद्ध हो गए। मूर्तिकारों ने प्रथम जीवन को बोधिसत्व का आदर्श बनाकर बोधिसत्व मूर्तियों को जीवन्त रूप दिया तथा बुद्ध को एक भिक्षु अथवा योगी के रूप में प्रस्तुत किया। जो अलकारों से युक्त ऐश्वर्य भाव को प्रदर्शित कर रहा है वो बोधिसत्व मूर्ति है तथा जो अलंकार रहित है वह बुद्ध मूर्ति है।

चित्र 8 – आसनस्थ बुद्ध, कटरा

स्थानक प्रतिमाओं में कनिष्क काल में निर्मित बोधिसत्व प्रतिमा जो सारनाथ से प्राप्त हुई वह भी मथुरा के लाल पत्थर से निर्मित है। जिसमें बुद्ध का बाया हाथ कमर पर तथा दायां हाथ अभय मुद्रा में है। आसन मुद्रा में निर्मित प्रतिमाओं में प्राचीनतम प्रतिमा बोधिसत्व की है जो कटरा से प्राप्त है। इसमें बुद्ध को बोधिवृक्ष के नीचे पद्मासन मुद्रा में है तथा दाहिना हाथ अभय मुद्रा में उठाते हुए निर्मित किया गया है। यक्ष मूर्तियों के समान धोती के परिधान है। ऊपर भाग ढका हुआ है, किन्तु

दाहिना कन्धा खुला है, बांए कन्धे और भुजा पर संधाटी की चुन्नरे दिखाई गई है। मूर्ति में बुद्ध की हथेली और तलवों पर धर्मचक्र और त्रिरत्न का चिन्ह है। केश उष्णीय से ढ़का हुआ है। प्रतिमा के दोनो और चँवरधारी परिचारक उत्त्कीर्ण किये गए हैं और ऊपर दोनो ओर से आकाश से देव पुष्प वर्षा करते हुए अंकित है। इस प्रतिमा में बुद्ध के पीछे वृताकार प्रभामण्डल प्रदर्शित किया गया है।

बोधिसत्व मैत्रेय तथा काश्यप बुद्ध की प्रतिमाएं भी कुषाणकालीन मथुरा कला में निर्मित होने लगी थी। मैत्रेय भविष्य में होने वाले बुद्ध है और ऐसा मानना है कि शाक्य बुद्ध के निर्वाण के चार हजार वर्ष बाद मानव रूप में उनका अवतार होगा। कुषाण कालीन मैत्रेय बुद्ध की मूर्तियों में उनके बाये हाथ में अमृत घट दिखाया गया है तथा अभय मुद्रा में कमल नाल लिये हुए है।

चित्र 9 – मैत्रेय बुद्ध

हिन्दू मूर्तियां

कुषाण कालीन मथुरा की कला में बौद्ध व जैन के साथ ही हिन्दू धर्म सम्बन्धि अनेक मूर्तियों का निर्माण किया गया है। प्रथम शती ई. पू. में मथुरा से प्राप्त अभिलेखों में वासुदेव व संकर्षण, पंचवीरो के देवग्रह तथा उनकी पूजा के उल्लेख प्राप्त है। मथुरा के पास एक स्थान से बलराम की मूर्ति प्राप्त हुई है। ई. शती के आरम्भ के समय में बड़ी संख्या में हिन्दू मूर्तियों का निर्माण हुआ। विष्णु, शिव, सूर्य, कार्तिकेय, बलराम, कुबेर, दुर्गा, लक्ष्मी, गणपति इत्यादि अनेक मूर्तियों का निर्माण शिल्पकारों ने करना आरम्भ कर दिया था। ये मूर्तियां सामान्यतः सम्मुख दर्शन लिए ही बनाई जाती थी।

विष्णु मूर्ति

विष्णु की चतुर्भुजा वाली मूर्तियों की अधिकांश रचना हुई है किन्तु कुछ अष्टभुजा धारी भी है। अग्रवाल वासुदेव शरण ने मथुराकाल में निर्मित विष्णु की चौदह मूर्तियों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है।

विष्णु मूर्तियों के हाथो में शंख, चक्र, गदा और चतुर्थ हाथ अभय मुद्रा में है। अष्ठ भूजी मूर्तियां कम है। दो अष्टभुजा मूर्तियां, मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। जो कुषाण कालीन है। कुछ मूर्तियों में चतुर्भज विष्णु के बाई और लक्ष्मी है और दोनो के मध्य गरूड़ मूर्ति है। मथुरा में विष्णु के विभिन्न रूपों की मूर्तियां बनी है। जैसे– विष्णु की खड़ी मूर्ति, नृसिंह, वराह विष्णु, वासु, आदित्य, रूद्र आदि रूप की विराट स्वरूपवाली विष्णु मूर्तियां तथा शेषशायी विष्णु की मूर्तियां।

ब्रह्मा मूर्ति

ब्रह्मा का प्राचीनतम रूप पंचाल देश के राजा प्रजापति मित्र के सिक्को पर मूर्ति के रूप में प्राप्त होता है। मथुरा में ब्रह्मा के चार मस्तक दिखाए गए है। सम्मुख मूर्ति में तीन मुख बनाने का भी प्रचलन था। मूर्तियों में ब्रह्मा का दाहिना हाथ अभय मुद्रा में तथा सिर पर जटाजूट एंव चेहरे पर दाढ़ी तथा पेट बाहर निकला बताया गया है। ब्रह्मा का यह रूप ब्राह्मण वर्ग का होने की घोषणा करता है। देवताओं में ब्रह्मा व अग्नि को ब्राह्मण वर्ग से माना गया है। यहां से प्राप्त एक मूर्ति में ब्राह्मण के तीन मुख नीचे तथा चौथा मुख ऊपर छायामण्डल युक्त है, जो मूर्ति के पूर्वकाय भाग है। पृष्ठ भाग में अशोक वृक्ष और उसके पल्लव प्रदर्शित है। यह मूर्ति के कुषाण काल की है। ऊपर वाले भाग में चतुर्थ मुख की मूर्ति का दाहिना हाथ अभय मुद्रा में तथा उसके बाये कन्धे पर उत्तरीय है। मध्यकाल में सरस्वती के साथ ब्रह्मा की मूर्तियां देश के कई भागो से प्राप्त हुई है। आरम्भिक काल में ब्रह्मा की पूजा समूचे भारत में की जाती थी। ब्राह्मा का

एक मन्दिर कुम्भ कोणम् में है। वर्तमान में ब्रह्मा का एक मन्दिर अजमेर के समीप पुष्कर तीर्थ में है तथा दूसरा नवनिर्मित मन्दिर बाड़मेर जिले में बालोतरा के समीप आसोतरा ग्राम में स्थित है।

शिव

कुषाण शासक वेमकदफ्स कालीन सिक्को पर शिव या उनके बैल नन्दी का अंकन है। इसके पश्चात् परवर्ती शासकों कनिष्क, हुविष्क तथा वासुदेव के सिक्को पर भी शिव मूर्ति का अंकन जारी रहा। शैव धर्म से सम्बन्धि मथुरा से प्राप्त मूर्तियों से यह प्रतीत होता है कि शैव धर्म काफी लोक प्रिय था। यहां शिव मूर्तियों के कई रूप मिलते है। जैसे लिंग विग्रह जो बिल्कुल साधारण है। एक मुखी शिवलिंग जिसमें शिवलिंग के एक और मान मुख है तथा पंचमुखी शिवलिंग जिसमें चार मुख चार दिशाओं में है और एक सबसे ऊपर है। यह पंच ब्रह्मा सिद्धान्त पर आधारित है। शिव के पांच मुखों के नाम क्रमशः सद्योजात, अधोर, तत्पुरूष तथा ईशान है। शिवलिंग स्वयं सृष्टि का प्रतीक है और पाँच मुख व्यक्त पंच भौतिक विश्व के प्रतीक है।

शिव के अन्य रूपों में नन्दिकेश्वर, शिव पार्वती रूप, अर्धनारीश्वर के रूप में मूर्तियों का निर्माण मुथरा में किया गया है। शिल्प की दृष्टि से शिव की मूर्तियां अत्यन्त प्रभावशाली है। शारीरिक गठन में कोमलता व लावण्य मय गति विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मुख मुद्राओं व मुखांगो के निर्माण से दैवीय आलौकिकता को दर्शाने का प्रयास किया गया है।

सूर्य

मथुरा में सूर्य प्रतिमाओं के निर्माण में भिन्न दृष्टिकोण उपस्थित हुआ है। सूर्य को उदीच्य वेश में निर्माण किया गया है। सूर्योपासना में ईरानी परम्पराओं के प्रभाव से सूर्य मूर्तियों का यह स्वरूप उभर कर आया है। कुषाण युगीन सूर्य की मूर्तियों के लक्षण इस प्रकार है। :–

1. सूर्य मूर्ति के सिर पर पगड़ी, शरीर पर कोट, कमर में पटका, एवं तंग वस्त्रयुक्त और पाँव में जूते पहने है। जो योरोपीय मुद्राओं से समानता रखती है।
3. उनके दाहिने हाथ में फूलो का गुच्छा तथा बाये हाथ में चौडे फल की कटारी लिए हुए है।
4. आरम्भिक मूर्तियों में सूर्य दो घोड़ो के रथ पर बैठे है। घोड़ो की संख्या बाद में चार और फिर सात हो गई।

अन्य हिन्दू देवताओं में कार्तिकेय, गणेश, इन्द्र, अग्नि, लक्ष्मी, कुबेर, सप्त मातृका व दूर्गा आदि की मूर्तियां मथुरा से प्राप्त हुई है। जिसमें पंचेन्द्र की मूर्ति, वज्रपाणि की मूर्ति, कार्तिकेय की खड़ी मूर्ति कला व शिल्प की दृष्टि से अत्यन्त ही उत्कर्ष कला की परिचायक है।

चित्र 10 – सूर्य मूर्ति

गांधारकाल

उत्तर पश्चिम भारत को प्राचीन समय में गांधार नाम से जाना जाता था। वैदिक साहित्य में यह नाम अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद, अथर्ववेद में उल्लेख मिलता है। ऐतरेय व शत पथ ब्राह्मण ग्रंथो में इसे परिभाषित किया गया है। छान्दोन्य उपनिषद् में गंधार देश में पश्चिम में कहा तथा लिखा कि एक जान पहचाना मार्ग मध्यप्रदेश व गांधार से मिलता था। यह महाजन पद था जिसे सिन्धु नदी दो भागो में बाटती थी। एक पूर्व गांधार जिसकी राजधानी तक्षशीला तथा दूसरा अपर गांधार जिसकी राजधानी पुष्कलावती थी। इस विशाल भू भाग में अनेको स्थान पर कला अवशेष मिले है।

इन स्थानों पर ई. पू. द्वितीय शती से कला शिल्प बनने लगे थे। किन्तु इस कला का विकास कुषाणकाल में श्रेष्ठ रूप में होने लगा। अनेक स्थान कला के महत्वपूर्ण केन्द्र बन गये थे। इन

स्थानों से भारी मात्रा में प्राप्त कला अवशेष इस बात का प्रमाण है। ये स्थान थे – तक्षशिला, पुष्कलावती, स्वात घाटी अथवा उड्डीयान, कापिशी, बामियान तथा बाल्हीक। कला इतिहासकारों का मानना है कि यहां की मूर्ति कला युनान की प्रेरणा से विकसित हुई। विंसेट स्मिथ, सर जॉन मार्शल आदि ने इस मत का समर्थन किया। परन्तु डॉ. आनन्द के.कुमार स्वामी तथा जायसवाल ने इसे विशुद्ध भारतीय कला का क्रमबद्ध विकास बताया। इस हेतु अनेक तर्क प्रस्तुत भी किये। उन्होने कहा कि गांधार कला का सम्पूर्ण प्रभाव आध्यात्म भाव लिए है। अगर यूनानी कला से प्रेरित होता तो आध्यात्म की जगह यथार्थ चित्रण उभर कर प्रस्तुत होता। आध्यात्म व सांसारिक यथार्थ दो विपरित भाव है जिसका समायोजन संभव नहीं हो सकता।

यहां का प्रसिद्ध स्थान तक्षशिला जिसका एक नाम भद्रशिला भी था, प्रधान कला केन्द्र बनी। यहां पर अनगिनत मूर्तियाँ सलेटी रंग के परतदार पत्थर द्वार बनाई गई। यहां के तीन कला क्षेत्र भीर, सिरकप और सिरमुख पर अनेक कलावशेष प्राप्त हुए। भीर के टिले से मिट्टी के बर्तन, उकेरे हुए टुकड़े, गोल फुल्ले, मिट्टी के खिलौने, पत्थर की तश्तरियां, हाथी दांत व अस्थियों से बनी प्रसाधन सामग्री तथा सोने व कांसे के गहने प्राप्त हुए है। इसी प्रकार सिरमुख में एक शिरोदान स्तूप तथा एक अन्य स्तूप अशोक द्वारा निर्मित है। तक्षशिला में सबसे महत्वपूर्ण अवशेष धर्मराजिका या चीर स्तूप है। यह स्तूप आकृति में गोल और एक ऊंची मेधि पर बना है तथा चार दिशाओं में चार सौंपान है। इस स्तूप के आस–पास कई छोटे स्तूप है।

तक्षशिला के समान ही पुष्कलावती केन्द्र भी कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान था। यहां हारीति का एक बड़ा मन्दिर पाया जाता है। यहां अनेक प्रकार के अवशेष जैसे सिक्के तथा सलेटी रंग के पत्थर की मूर्तियाँ प्राप्त हुई। बुद्ध की मूर्ति तथा अनेक शिलापट्ट पाये गये जिन पर जातक कथा और बोधिसत्व की मूर्तियाँ मिली है। इस मन्दिर से कुछ दूरी पर सहरी बहलोल में एक स्तूप पाया गया है जिसमें बोधिसत्व मूर्तियाँ तथा लघु स्तम्भों चौखटे प्राप्त हुए है। यहां बुद्ध मूर्तियाँ का भण्डार मिला है जिनमें बोधिसत्व, बुद्ध के जीवन के दृश्य मिले है जैसे –परिनिर्वाण, असित द्वारा भविष्यवाणी, दीपंकर जातक, कश्यप द्वारा धर्मपरिवर्तन, नल गिरी हस्ति विजय व कुबेर व हारिति आदि। सहरी बलोल के उत्तर में तख्त–ए–बाही में स्तूप और विहार मिले है जहां बोधिसत्व की महाकाय मूर्तियाँ मिली हैं।

शाहजी की ढेरी नामक स्थान पर कनिष्क द्वारा निर्मित महास्तूप के अवशेष प्राप्त हुए है। उसके धातु गर्भ में सोने की परत चढ़ी तांबे की मंजुषा मिली है जिसकी ऊंचाई साढ़े सात इंच है जो अति महत्वपूर्ण है। इस मंजुषा के ढ़क्कन के ऊपर मध्य में पद्मासन में बुद्ध बैठे है जो छाया मण्डल से युक्त है मूर्ति कमल दण्ड पर विराजमान है तथा मंजूषा की उपरी धरातल पर कमल पखुड़िया बनी है। पद्मासन बुद्ध को बायी और ब्रह्मा तथा दाई और इन्द्र अंजली मुद्रा में खड़े है। बुद्ध के दोनो कंधो पर संधाटी है। मंजुषा के ढक्कन के उपरी घेरे के कड़े पर उड़ते हंसो की पक्ति है। मंजूषा नीचले घेरे पर मालाधारी देव या कन्धों पर माला उठाए यक्ष बने है। माला भी लचक पर बुद्ध की तीन आकृतियां ध्यान मुद्रा में हैं। एक स्थान पर कनिष्क की खड़ी मूर्ति भी है जिसके एक तरफ सूर्य तथा एक तरफ चन्द्र प्रतिमा है। इसी प्रकार की एक स्वर्ण मंजुषा बामियान स्तूप में भी मिला है। गांधार का एक अन्य महत्वपूर्ण केन्द्र जो कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है वह कपिशा। इस केन्द्र पर बहुत से दन्त फलक प्राप्त हुए है जो किसी समय श्रृंगार पेटियों अथवा मंजूषाओं के अंग रहे थे। इन दन्त फलको पर बेजोड़ मूर्तियों उकेरी गई है जो कला की दृष्टि से भारतीय कला के अनुपम उदाहरण है। इन दन्तफलकों पर विविध विषयों यथा–महाहार लिये प्रसाधिका,नृत्य दृश्य, पान गोष्ठी,पूर्ण घट, प्रसाधनरत स्त्रिया, शुक्र क्रीड़ा पद्मपत्र पर बैठा हंस आदि। इसी प्रकार बमियान, बल्ख आदि अन्य स्थानों पर भी अनेक कलावशेष प्राप्त हुए है।

चित्र 11 – बुद्ध मूर्ति, गांधार

गांधार कालीन बुद्ध मूर्तियों के लक्षण पर दृष्टि डाले तो स्पष्ट परिलक्षित होता है कि बुद्ध के स्वरूप निर्धारण में स्वस्थ निर्दोष शरीर के आधार पर गढ़ी गई है। शरीर रचना में विशेष ध्यान दिया गया है तथा अध्यात्म भाव के अनुसार वास्तविक परिमाप से इतर प्रयोग किए गए है। सभी मूर्तियों के हाथ पाँव की अंगुलियों की गठन में युनानी सादृश्यता न होकर भारतीय भावपूर्ण लोच व बांकपन है। आँख की रचना में कटाक्ष बना है तथा पलक को कुब्बदार बनाया गया है तथा भौंह के नीचे से शुरू होकर आँख की तरफ गतिमान है। यह विशेषता विशुद्ध भारतीय कल्पना नुसार ही है। ग्रीक कला की आँख बड़ी तथा कटाक्ष का उसमें अभाव रहता है। यूनानी कला की आँख की पलक छोटी तथा भौंह में धंसी होती है।

पद्मासन बुद्ध मूर्ति में उर्ध्वमुखी चरण तल सदैव एक सरल रेखा में होते है। यह यथार्थपरक प्रयोग नहीं अपितु आकृति को सरसता व गति प्रदान के प्रयोजन से भारतीय अवधारणा को सम्मिलित किया गया है। बुद्ध मूर्तियों में कोहनियाँ जाँघो तक

चित्र 12 – बुद्ध मूर्ति, गांधार

पहुँच गई है; जो भारतीय रूप विधान में सन्यासियों की दीर्घ बाहु की कल्पना के आधार पर है। मौर्यकालीन तथा शुंगकालीन यक्ष–यक्षनियों के मूर्तियों का पूर्व में किये अध्ययन से सहज सिद्ध हो जाता है कि शारीरिक मुद्राओं में वास्तविकता को ध्येय न बनाकर लावण्य मप गतिक मुद्रा को अपना लक्ष्य बनाया गया था वही परम्परा मथुरा व गांधार से प्राप्त मूर्ति शिल्प में भी अधिक सुरूचि पूर्ण निभाई गई है। इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं की गांधार में युनानी प्रभाव सहज था; युनान के राजनीतिक परिपेक्ष्य में गांधार की कला व जीवन शैली में उसका पक्ष अवश्य रहा है; किन्तु बुद्ध की मूर्ति निर्माण की परम्परा अपनी 'निजत्व' कला के आधार पर ही आगे बढ़ी है।

गांधार शिल्प में निर्मित हिन्दू देवी–देवताओं की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई है जिनमें पंचिक कुबेर हारिति, इन्द्र, ब्रह्मा तथा सूर्य आदि का निर्माण हुआ है। कुबेर और हारिती की एक युगल मूर्ति प्राप्त हुई जो वर्तमान में लाहौर संग्रहालय में सुरक्षित है। इस मूर्ति में कुबेर के वाम पार्श्व में शिशुओं की अधिष्ठात्री देवी हारिती की यह युगल मूर्ति गांधार शिल्प की उत्कृष्ट कृती है।

चित्र 13 – कुबेर–हरिति–सहरी–बहलोल

कनिष्क की मंजूषा पर भी इन्द्र तथा ब्रह्मा की मूर्ति का निर्माण हुआ है। गांधार प्रदेश से प्राप्त सलेटी काले पत्थर की उत्कीर्ण सूर्य मूर्ति भी प्राप्त हुई है जो उदीच्यवेश में है तथा चार

अश्वों वाले रथ पर आसीन प्रदर्शित किया गया है तथा दोनो ओर दो अनुचरियों को भी निर्मित किया गया है।

गांधार शिल्प कला में निर्मित मूर्तियों में आभूषणों का प्रयोग प्रचुरता के साथ किया गया है। प्रायः बोधिसत्वों की मूर्तियों को इतना अलकृंत किया है कि उनमें राजसी वैभव प्रदर्शित होता है। यहां की मूर्तियों की एक विशेषता यह भी उल्लेखनीय है कि यहां की मूर्तियों में अध्यात्मिक दिव्यता के प्रदर्शन हेतु प्रभा मण्डल का निर्माण किया गया है। कालान्तर में भी देव मूर्तियों के आलौकिक दिव्यता हेतु प्रभा मण्डल की परम्परा विद्यमान रही। यह भारतीय कला को गांधार शैली को विशेष महत्वपूर्ण देन है।

गांधार काल अपनी अनुपम नक्काशी, प्रचुर अलंकरण और प्रतीको का नियोजन लिए अनूठी परिधान शैली व सूक्षम अंकन के साथ शिल्प कला के सम्मान में समर्पित दिखाई पड़ती है।

गुप्तकाल (220 ई. – 600 ई.)

कुशाण राज्य के पाटलीपुत्र से शासन समाप्त होने के साथ ही गुप्तकाल की स्थापना विधिवत हो जाती है। प्रयाग प्रदेश में 275 ई. के आस–पास गुप्त नामक शासक की लोकप्रियता बढ़ने लग गई थी। गुप्त के पौत्र चन्द्रगुप्त ने अपने राज्य को विस्तार दिया। चन्द्रगुप्त शासनकाल 319 ई. से 340 ई. माना जाता है। चन्द्रगुप्त का पुत्र समुद्रगुप्त रणकौशल में अद्वितीय था। इसका शासन काल 340–380 ई. माना जाता है। समुद्र गुप्त में राजनैतिक निपुणता कूट–कूट कर भरी हुई थी। सम्पूर्ण भारतवर्ष पर विजय पश्चात् अश्वमेघ यज्ञ किया तथा राज्य का विस्तार करते हुए काबुल, तुखिस्तान व सिंघल आदि सभी द्वीपों के राजाओं ने समुद्रगुप्त का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। समुद्रगुप्त बड़ा कला प्रेमी था, इनके काल में कला को भरपूर प्रश्रय मिला। समुद्रगुप्त के पुत्र चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वारा इस परम्परा को आगे बढ़ाया। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य अपने पिता से भी अधिक समृद्ध, सुंसस्कृत तथा वैभावशाली था। इनके काल में आध्यात्मिकता तथा बौद्धिकता की सामानान्तर उन्नति हुई। इन्हीं कारणों से ही गुप्तकाल को भारत का स्वर्णयुग कहा जाता है। सम्राट चन्द्रगुप्त के द्वितीय पुत्र कुमारगुप्त ने 415–455 ई. तक राज्य किया। कुमारगुप्त के समय भारत में शान्ति, समृद्धि तथा संस्कृति का वातावरण था। कुमार गुप्त ने ही नालन्दा विश्वविद्यालय की स्थापना की जो संस्कृति एंव विद्या का श्रेष्ठतम केन्द्र माना जाता था।

गुप्त शासको का कला प्रेम और उत्कृष्ट रूचि उनके युग की प्रत्येक कलाकृति से टपकती है। जनमानस में तथा शिल्पकारों में गुप्तकालीन मानको की स्वीकार्यता इतनी गहरी थी कि गुप्त शासन के समाप्त हो जाने के बाद भी इस कला का उत्कर्ष सौ साल से अधिक तक बना रहा। यह इस बात का द्योतक है कि गुप्त कालीन कला सौन्दर्यात्मक मान्यताओं के उच्चस्तर शिखर पर थी। अधिकांश गुप्त शासक हिन्दू मतावलम्बी थे। इनके संरक्षण में हिन्दू मान्यताएँ अधिक सशक्त रूप से प्रतिष्ठित होने लगी। इस काल में सामाजिक सहिष्णुता उच्चतम आदर्श पर थी। समाज में बौद्ध व जैन धर्म में आस्था रखने वालो को भी विकास के समान अवसर प्राप्त थे। गुप्तकाल के कलाकारो ने विशुद्ध राष्ट्रीय अनुभूतियों, भावों व आदर्शो के अतिरिक्त धार्मिक, सांस्कृतिक तथा अध्यात्मिक तत्वों को भी कला मानको में सम्मिलित कर कला को गौरवमय स्थान दिलाने में सफल रहे है। गुप्त शासको ने इन मान्यताओं को न केवल स्वीकार किया अपितु इसके विकास व प्रसार के लिये मजबूत संरक्षण प्रदान किया। गुप्तकला सामान्य वाकाटक मूर्तिकला की ही परम्परा में है परन्तु गुप्त शासको की कला के प्रति अतीव रूचि तथा कलाकारो की रूचिकर सक्रियता ने वाकाटक राज्य की काया को भी अपने मानको द्वारा प्रभावित कर गुप्तकला की विशेषताओं से परिभाषित कर दिया। वाकाटक राज्य की कला में भी गुप्तकालीन आभा, वैशिष्टय स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

गुप्तकाल से पूर्व भी भारत का पश्चिमी जगत से व्यापारिक व सांस्कृतिक व्यवहार रहा है तथा पूर्व में कला परम्पराओं पर भी विदेशी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। गुप्तकाल की कला की विकास अवधारणा शुद्ध भारतीय तत्वों पर ही आधारित है। पूर्व की कलाओं के विदेशी प्रभाव का गुप्तकाल के शिल्पकारो ने सूक्ष्मता से भारतीयकरण कर दिया। गुप्तकाल में मूर्ति निर्माण भारतीय सौन्दर्य अवधारणा पर आधारित था। कलाकारो ने इससे आगे बढ़कर अपने शिल्प में आध्यात्मिक भावों को भी अभिव्यक्त किया। मूर्तिकारों का उद्धेश्य धार्मिक साधना को सरलीकृत रूप देना और उसमें वे पूर्णतया सफल हुए। मूर्तियों में आध्यात्मिक कान्ति व आन्तरिक सौन्दर्य दर्शक को अभिभूत कर देता है। सारनाथ और सुल्तानगंज से प्राप्त बुद्ध मूर्तियां मानसिक संतुलन, शान्ति तथा अध्यात्म संतुष्टि का श्रेष्ठ उदाहरण है।

सौन्दर्यपूर्ण अभिव्यक्ति तथा भावमय प्रस्तुति हेतु गुप्तकालीन शिल्पकारो ने प्रचलित रूपों में नवीन प्रयोग भी किए उदाहरणार्थ कुषाण युग की मथुरा की मूर्तियों में सिर पर केश सज्जा, रूचिकर प्रतीत नहीं होती परन्तु गुप्तकाल में मूर्तियों की सौन्दर्य रचना वृद्धि के प्रयोजन से पुरूष मूर्तियों को लटकते हुए कुंचित केश के साथ बनाया तथा नारी मूर्तियों में अलक जाल के साथ प्रस्तुत किया। शरीर पर पहनने वाले वस्त्र भी कुषाण काल में मोटे बनाये जाते थे जिससे शरीर की लावण्यता छुप जाती थी, गुप्तकाल में वस्त्रों को भी पारदर्शक रूप में बनाया जाने लगा जिससे नैसर्गिक सुकोमल अंग प्रत्यंग प्रभावपूर्ण ढंग से उभर कर आये है। प्रभामण्डल के निरूपण में भी गुप्तकालीन शिल्पकारो ने परिवर्तन कर गांधारकालीन सरल व साधारण प्रभामण्डल को गोलाकार व अण्डाकार रूप लिए अलंकृत ढंग से निर्मित किया

गया है। बेलबूंटो की नक्काशियों द्वारा आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार कुषाण कालीन मूर्तियाँ बुद्ध के दाहिने कंधे पर संधाटी नहीं बनाई जाती थी। गुप्तकाल में अधोवस्त्र कमर में बंधा है तथा संधाटी दोनो कंधो को ढकते हुए नीचे तक प्रसारित है। गुप्तकाल में बुद्ध को नासाग्र स्थिति में बताया जाता था। मूर्ति की अधखुली आँखे, नासिका पर टिकी होती थी। मुख पर आध्यात्मिक कान्ति, होठों की करूणामयी मुस्कान गुप्तकाल की ही देन है।

उत्तर भारत के कला केन्द्रो में मथुरा व सारनाथ प्रमुख कला केन्द्र थे। मथुरा कला की उन्नति का सर्वोत्कृष्ट काल कुषाण युग था। इस समय लाल चितिदार बलुए पत्थर की मूर्तियों भारत भर में पहुंच रही थी। गुप्तकाल में भी मूर्ति निर्माण अनवरत चलता रहा। मथुरा में बौद्ध धर्म के अतिरिक्त जैन व हिन्दू धर्म की मूर्तियाँ भी प्राप्त होती है। गुप्त शासक कुमारगुप्त के शासनकाल में निर्मित ''मनकुंवार की बुद्धमूर्ति'' विशेष उल्लेखनीय हे। यह मूर्ति कुषाणकाल तथा गुप्तकालीन कला सौन्दर्य दोनो मानको का उदाहरण है। मूर्ति का अनुपात, वक्ष की गठनशीलता, मुख का भाव, अतिरंजित गोलाई कुषाण कालीन प्रभाव लिए है परन्तु सिर पर सपाट उष्णीय, गुप्तकाल का द्योतक है। बोधगया से प्राप्त लाल पत्थर द्वारा निर्मित बुद्धमूर्ति भी इसी प्रकार मिश्रित प्रभाव वाली मूर्ति मानी जाती है।

गुप्तकाल का महत्वपूर्ण कला केन्द्रो में सारनाथ का सर्वोपरि लिया जाता है। सारनाथ की कला में निर्मित मूर्तियां उत्कृष्ट सौन्दर्य तथा भाव निरूपण की कुशल अभिव्यजंना द्वारा मोहक प्रभाव लिये हुए है। मूर्तियों में आध्यात्मिक भाव की सफल व्यंजना हुई है। इस कला में निर्मित बुद्ध व बोधिसत्व के रूप निरूपण में अंगो की संरचना में अद्भूत परिष्कार देखने का मिलता है। मूर्तियाँ धनत्व बोझ से बोझिल न होकर सुडौल व इकहरी काया वाली बनाई गई। शारीरिक परिष्कार की दृष्टि से सारनाथ की मूर्तियाँ मथुरा की मूर्तियों से श्रेष्ठ है। सारनाथ में आकृतियों के अंग–प्रत्यंग सुकुमार व लावणयमय दिखाया गया है।

इसी प्रकार पाटलीपुत्र में भी गुप्तकालीन अनेक मूर्तियां प्राप्त हुई है। नालन्दा के उत्खनन से प्राप्त धातु मूर्तियाँ शिल्प की दृष्टि से सारनाथ की मूर्तियों से साम्यता रखती है।

मध्यप्रदेश का नदी क्षेत्र का भाग तथा मालवा में भी गुप्तकालीन मूर्तियों का निर्माण हुआ है। कार्तिकेय मूर्ति जो कला भवन काशी में है। सारनाथ संग्रहालय की लोकेश्वर मूर्ति, मध्यप्रदेश का एकमुखलिंग, ग्वालियर संग्रहालय की मूर्तियां भी शिल्प विधान में सारनाथ के तुल्य है। कौशाम्बी से प्राप्त शिव पार्वती की मूर्ति, प्रयाग संग्रहालय के रामायण का दृश्यपट्ट गुप्तकाल की कला के साथ लोक कला के तत्वों को भी धारण किये है।

पूर्वी क्षेत्र में मनियार, तेजपुर के समीप दहपर बतिया की गंगा जमुना की मूर्ति इस क्षेत्र की कला का प्रतिनिधित्व करती है न केवल मध्य प्रदेश व पूर्वी क्षेत्र बल्कि गुजरात व राजस्थान में भी गुप्तकालीन शिल्प प्राप्त हुए है। कोटा, आबानेरी, इडर राज्य के समीपवर्ती भू–भाग से मिली मूर्तियाँ शिल्प की दृष्टि से अनुपम उदाहरण है। यहां की कला में देशज तत्व भी उभर कर आया है। स्थानीय वेशभूषा को स्थान मिला है तथा लोककला के तत्वों का समादेश भी इस स्थानों की कलाओं में दिखता है।

विशिष्ट मूर्तियाँ

गुप्तयुगीन मूर्तियों में बौद्ध, जैन, हिन्दू धर्म की अनेक मूर्तियाँ समुचे भारतवर्ष में पाई गई है। धार्मिक सहिष्णुता के कारण कला विकास के परिणाम स्वरूप हर धर्म की मूर्तियां कलात्मक उत्कृष्टता को ग्रहण करती है। आध्यात्मिक दिव्यता और पार्थिव सौन्दर्य की लावण्यता लिये ये मूर्ति शिल्प धार्मिक मान्यताओं व सौन्दर्यात्मक अभिरूचि को अलौकिक भाव–संसार का निर्माण सजग कर देती है।

हिन्दू मूर्तियाँ

गुप्त शासको में से अधिकांश शासक वैष्णव धर्म के अनुयायी थे। शंख चक्र गदा पदम लक्ष्मी आदि वैष्णव प्रतीको का अंकन उनकी मुद्राओं पर प्राप्त होता है। जूनागढ़ अभिलेख तथा ऐरण का स्तम्भ लेख विष्णु की स्तुति से ही आरम्भ होता है। गुप्त शासकों के शासनकाल के विकास के साथ वैष्णव धर्म तथा विष्णु की अनेक भावमयी मूर्तियों का भी निर्माण हुआ है। मध्यभारत में भेलसा के समीप उदयगिरी गुफाओं की दीवार पर विष्णु की चर्तुभुज मूर्ति कला की दृष्टि से उल्लेखनीय है। ऐरण से मिली इस युग की विष्णु मूर्ति के गले में हार और केयूर का प्रदर्शन हुआ है।

चित्र 14 – अनन्तशायी विष्णु, देवगढ़

देवगढ़ से प्राप्त विष्णु की अनन्तशायी मूर्ति दशावतार मन्दिर से प्राप्त हुई है। कला की दृष्टि से यह मूर्ति अत्यन्त मनोहारी है। इस मूर्ति में विष्णु की कुण्डल, मुकुट, वनमाला, हार तथा कंयूर आदि अलंकरणों से सज्जित किया गया है। विष्णु की नाभी निकले कमल पर चतुर्मुखी ब्रह्मा को आसीन दिखाया गया है। विष्णु के पैरो को दबाते लक्ष्मी को दर्शाया गया है। विष्णु के दोनो पार्श्वभाग में शिव तथा इन्द्र की बनाया गया है। यह मूर्ति पौराणिक परम्परा के अनुकूल दर्शायी गयी है। गठनशीलता, भाव सम्बोध तथा आदर्शात्मक भावों को सफलता पूर्व दर्शाया गया है।

विष्णु मूर्तियों के निर्माण में गुप्तकाल में स्थानक, आसन व शयन मुद्राओं में द्विभुज, चतुर्भुज तथा अष्ठभुज तीनों ही प्रकार से बनाया गया है। विष्णु की मानव मूर्तियों की अपेक्षा उनके अवतार रूपों की मूर्तियों की संख्या अधिक पाई जाती है जैसे वराह, नृसिंह, वामन आदि अवतार रूप। वराह अवतार मूर्तियों में वराह तथा नृवराह दोनो ही रूप की मूर्तियों का निर्माण गुप्तकाल में किया गया है।

उदयगिरी से प्राप्त नृवराह मूर्ति में वराह की विशाल गढ़ी काया में शक्ति व उत्साह का ओजस्वी अंकन हुआ है। नृवराह आदि शेष के ऊपर पांव रखकर खड़े है तथा कन्धे पर नारी रूप में पृथ्वी की आकृति उत्कीर्ण है। नृवराह अपना मुख उठाकर पृथ्वी को देख रहे है।

वराह अवतार के दूसरे प्रकार की मूर्ति वराह रूप का है जिसमें पूरा शरीर वराह पशु का है। इस रूप की सुन्दर मूर्ति ऐरण से प्राप्त हुई है। इस मूर्ति पर हूण शासक तोरमण का लेख खुदा है। यह मूर्ति पशु रूप लिए है तथा विशालकाय अधिक ओजस्वी तथा धनत्व से भरी–पूरी हैं। पैरो में मोटापन तथा भारीपन है जो वराह की शक्ति का परिचायक है। वराह के दन्ताग्र में पृथ्वी को धारण किये है। पृथ्वी के अंकन नीचे की तरफ झुकने के कारण शरीर के विभिन्न मोड़ मूर्ति में गति प्रदान करते है। भगवान ने तमक कर पातालमग्न पृथ्वी को सहसा ही फूल की तरह ऊपर दांतो पर उठा लिया और साहस के साथ डटे रहे। कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने अपनी भौजाई ध्रुव स्वामिनी का शको से उद्धार किया था। इस मूर्ति में उस उद्धारक तेज तथा वीर्य की स्पष्ट झलक दिखाई देती है।

वराह रूप के अतिरिक्त नरसिंह अवतार की मूर्ति देवगढ़ के मन्दिर से प्राप्त हुई है जिसमें मानव शरीर व सिंह मुख रूप में शंख, चक्र और गदाधारी विष्णु आसन पर बैठे है। इसी प्रकार प्रयाग संग्रहालय में सुरक्षित वामन रूप में बौने ब्रह्मचारी की सरल रूप में सहज अभिव्यक्ति हुई है।

चित्र 15 – वराह अवतार, ऐरण

राम एवं कृष्ण मूर्तियाँ

राम और कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित अनेक मूर्तियों का निर्माण गुप्त काल में हुआ है शिल्पकारों का यह प्रिय विषय रहा है। देवगढ़ के दशावतार मन्दिर में राम के जीवन से सम्बन्धित अनेक प्रसंगों पर मूर्तियाँ बनाई गई है। इस मन्दिर में राम के द्वारा अहिल्या का उद्धार, राम का बनवास, अगस्त्थ ऋषि आश्रम का दर्शन, लक्ष्मण द्वारा सूर्पणखा का नासिकोच्छेदन आदि दृश्यों को रामायण के अनुसार वर्णित घटना के आधार पर दर्शाया गया है इसी प्रकार देवगढ़ के इस मन्दिर में कृष्ण जीवन से सम्बन्धित भी अनेक घटनाओं को आधार मानप कर शिल्प कार्य किया गया है इन दृश्यों में मुख्यतया वासुदेव द्वारा कृष्ण

को गोकुल ले जाते हुए, कलिया नाग का दमन करते हुए और गोर्वधन धारी कृष्ण का उत्कर्ष शिल्प कार्य हुआ है। कृष्ण की एक मूर्ति मथुरा तथा एक लखनऊ संग्रहालय में संग्रहित है। गोर्वधन धारी कृष्ण का अंकन बड़ा उदात्त और ओजपूर्ण हुआ है। वे गोवर्धन पर्वत को बड़ी सहजता से धारण किए दृढ़ता से खड़े है। पहाड़पुर (बंगाल) में भी कृष्ण लीला की अनेक मूर्तियाँ निकली है जो सभी सुन्दर व सजीव प्रतीत होती है– विशेषतः राधा कृष्णा का प्रेमालाप तथा धेनुकवध उल्लेखनीय है।

राम एवं कृष्ण के अलावा, बलदेव व कार्तिकेय की मूर्तियों का निर्माण भी गुप्तकाल में हुआ है। कौशांबी में सूर्यमूर्ति भी बड़ी भव्य और सुन्दर है।

शिवमूर्ति

गुप्तकालीन शिव मूर्तियों का निर्माण लिंग तथा मानव दोनो ही रूप में हुआ है। एक मुखी लिंग रूप की मूर्तियों में शिव के सिर पर जटा–जूट है तथा उस पर अर्धचन्द्र अंकित किया गया है। मस्तक पर त्रिनेत्र दर्शाऐ गए है तथा गले में एकावली दर्शायी गई है। खोद्ध और भूमरा में ऐसी ही मूर्ति प्राप्त हुई है। खोह वाली मूर्ति में सौभ्य मुड़ा तथा सुकुमारता शिल्पकारों की उत्कर्ष प्रतिमा की परिचायक है। मानव रूप में शिव के निर्माण के साथ अर्धनारीश्वर रूप में भी शिव की मूर्तियाँ बनी है। इन मूर्तियों में अद्‌भूत काल्पनिक योजना को साकार रूप दिया गया है। धार्मिक समन्वय के आदर्श रूप को प्रस्तुत किया गया है। मथुरा संग्रहालय में गुप्तकालीन अर्धनारीश्वर रूप की दो मूर्तियाँ संग्रहित है। इन मूर्तियों का दाहिना भाग पुरूष तथा बायाँ भाग स्त्री का है। पुरूष रूप में जटा–जूटधरी अकंन किया है तथा नारी रूप में वक्ष का प्रदर्शन मुख्य रूप में आकर्षक हुआ है। गुप्तकालीन श्रेष्ठ कला शिल्प में हरिहर मूर्ति का भी विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। विदिशा से प्राप्त यह मूर्ति राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में सुरक्षित है। धार्मिक सहिष्णुता तथा समन्वय की अटूट धारणा को इस मूर्ति में पिरोया गया है। इस मूर्ति के रूप निर्माण में शिव के हरिहर रूप को दर्शाने के लिए मूर्ति के बाँऐ भाग में विष्णु के आयुधो का प्रदर्शन हुआ है और दाहिने भाग में जटाभार,यज्ञोपवीत तथा मृग चर्म को दिखाया गया है।

चित्र 17 – एकमुखी शिवलिंग, विदिशा

हिन्दुओं के विध्नहरता देव गणेश की मूर्तियों गजमस्तष्क युक्त तथा लम्बोदर रूप में अकंन किया गया है। भूमरा से प्राप्त गणेश मूर्ति में गणेश अपनी पत्नी विध्नेश्वरी के आलिंगन बद्ध है। इस मूर्ति में रागात्मक भाव का श्रेष्ठ निरूपण हुआ है।

बुद्ध मूर्तियां

बुद्ध मूर्तियों के निर्माण के अनुसार गुप्तकाल इसका स्वर्णकाल युग के रूप में माना जा सकता है। बुद्ध को अनेक रूपों में बड़ी सरलता व सौम्यात्मक स्वरूप में अध्यात्मिक शान्ति को धारण किये हुए अंकित किया गया है। कलाकारों द्वारा अभय, वरदा, ध्यान, भूमि स्पर्श तथा धर्मचक्र–प्रवर्तन आदि विविध रूपों में निर्माण किया गया है। शरीर रचना में कोमलता, आध्यात्मिक दिव्यता इस काल की बुद्ध मूर्तियों की महत्वपूर्ण विशेषताएं है। सरल, गतिमान व कोमल शारीरिक रचना मुख मण्डल पर

शान्ति, तथा प्रभामण्डल का अलंकृत रूप तथा हल्के व पारदर्शी वस्त्र निर्माण कलाशिल्प के अद्वितीय मानक है जो कला को श्रेष्ठतम शिखर पर ले जाते हैं।

मनकुँवार से मिली कुमारगुप्त कालीन मथुरा शैली की मूर्ति की अभयमुद्रा में सिंहासन पर बैठे प्रदर्शित किया गया है। मूर्ति का ऊपरी भाग वस्त्र रहित है। कमर से लेकर घुटने के नीचे तक अद्योवस्त्र प्रदर्शित किया गया है। सिर मुण्डित है तथा उष्णीय सपाट रूप से बनाया गया है। मूर्ति की पीठिका के अग्रभाग के मध्य में चक्र बना हुआ है तथा उसके दोनों ओर एक–एक ध्यानस्थ पुरूष आकृतियां उत्त्कीर्ण है। बुद्ध की एक अन्य मूर्ति जो मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है जिसमें बुद्ध को खड़ी अवस्था में बताया गया है तथा शीर्ष पर अलंकृत प्रभामण्डल बनाया हुआ है। इस मूर्ति में भावबोध को बड़ी गम्भीरता से प्रदर्शित किया गया है। मुख मुद्रा से गम्भीरता झलकती है तथा चिन्तन का भाव परिलक्षित होता है। वस्त्र को पारदर्शी रूप में अत्यन्त महीन बनाया गया है। वस्त्र की पारदर्शिता के कारण शरीर का प्रत्येक अंग दूर से स्पष्ट झलकता है। वस्त्र की सलवटे अन्यन्त रूचिकर लयात्मक है। शिल्प की दृष्टि से मूर्ति प्रभावशाली दिखाई पड़ती है।

चित्र 18 – बुद्ध की अभय मुद्रा, मनकुँवार

चित्र 19 – बुद्ध मूर्ति, गुप्तकालीन

सारनाथ की बुद्ध मूर्ति

सारनाथ से प्राप्त बुद्ध मूर्ति गुप्तकाल की महत्वपूर्ण तथा शिल्प की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट मूर्ति मानी जाती है। इस मूर्ति में पद्मासन धारण किए धर्मचक्र प्रवर्तन की मुद्रा में निर्मित की गई है। मूर्ति में माध्यम तथा शरीर की गढ़नशीलता में कही भी भारीपन नहीं झलकता। चेहरे पर अध्यात्मिक ओज तथा सरलता सहज आकर्षण को लिए है। मूर्ति में प्रभामण्डल को अलंकृत रूप से बनाया गया है। प्रभामण्डल में सिर के पिछे मध्य में सपाट तथा किनारे की ओर वृताकार अलंकरण प्रभावशाली है।

चित्र 20 – धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा में बुद्ध, सारनाथ

बुद्ध के मस्तक पर दक्षिणावृत केश तथा उष्णीय बनाया गया है, केश को वृतुल सभ्यक रूप में निर्मित है। प्रभामण्डल के दोनो तरफ ऊपरी भाग में पुष्प पात्र लिये नारी मूर्तियां बनाई गई है जो आलीढ़ व प्रत्यालीढ़ अवस्था में बनी है। मूर्ति की पीठिका पर अग्रभाग के मध्य धर्मचक्र प्रवर्तन तथा दोनो ओर दो मृग आकृतियाँ तथा पूजा करते हुए मानव आकृतियाँ उत्कीर्ण है। बुद्ध के मुख पर शान्त व आत्मीय भाव विशेष आकर्षण के साथ परिलक्षित होते है। शरीरिक सन्तुलन तथा गतिमय दृष्टि संचार मूर्ति के सौन्दर्य को लावण्यता प्रदान करते है।

शिल्पी की दृष्टि से यह मूर्ति अद्‌भूत प्रभाव लिए है। बुद्ध मूर्तियों में सुलतानगंज की ताम्र मुर्ति भी शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यह मूर्ति बरनिंघम संग्रहालय में सुरक्षित है। अभय मुद्रा में खड़ी यह बुद्ध मूर्ति की शारीरिक गठन शीलता अत्यन्त कोमल व सुगढ़ है। घनत्व न होकर छरहरा पन लिए है कहीं भी मांसलता का अभास नहीं होता। वस्त्र को पारदर्शी ढंग से बनाया गया है, जिनमें से शारीरिक बनावट स्पष्टतः दिखाई पड़ती है। अंगो को वर्तुलाकार आकृति विशेष दृष्टव्य है। सम्पूर्ण मूर्ति में बुद्ध का गंभीर तथा शालीन व्यक्तित्व झलकता है।

जैन मूर्तियां

गुप्तकाल में बौद्ध तथा हिन्दू मूर्तियों के साथ–साथ जैन मूर्तियों का भी निर्माण समानान्तर रूप से हुआ है। यह काल धार्मिक सहिष्णुता तथा सामाजिक समन्वय का काल था। जैन तीर्थकर की मूर्तियाँ का निर्माण भी इस काल में हुआ है जो शिल्प की दृष्टि से अति उत्तम है, जैन जिन मूर्तियों में जैन धर्म की अवधारणा के अनुसार रूप निर्माण हुआ है। जैन तीर्थकर को नग्न मुद्रा, अजान बाहु, ध्यान मुद्रा आदि में प्रदर्शित किया गया है, जैन मूर्तियों का बौद्ध मूर्तियों से उनके प्रतीको द्वारा विभेद किया जा सकता है। तीर्थकर की मूर्तियों में हथेली व तलवों पर धर्मचक्र का चिन्ह, भौहों के मध्य रोमगुच्छ, मस्तिष्क पर उष्णीय का अभाव, तथा छाती पर श्रीवत्स का चिन्ह, पद्मासन मूर्तियों में दोनो हाथ अंक के बीच में एक दूसरे के ऊपर रखे हुए दिखाया गया है तथा इनकी चौकी पर लिखे लेख से तीर्थकर की पहचान हो जाती है। ऋषभदेव के कन्धे पर बालों की लटे् तथा पार्श्वनाथ के मस्तक के पिछे सर्पफण का टोप दिखाया गया है।

मथुरा में तीर्थकरों की मूर्तियां दो प्रकार की हैं एक खड़ी तथा दूसरी बैठी हुई मुद्रा में। खड़ी मूर्तिया कायोत्सर्ग मुद्रा में है तथा दिगम्बर रूप लिए है। बैठी हुई मूर्तियां पद्मासन में है।

सबसे प्राचीन जैन प्रतिमाएं और स्तूप मथुरा में प्राप्त हुए है। मथुरा जैन धर्म का प्राचीन केन्द्र था। कंकाली टीले से अनेक तीर्थकर की मूर्तियां प्राप्त हुई है, गुप्तकालीन महावीर की पदमासन मूर्ति जो मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है, कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस मूर्ति में अंगो का विन्यास स्थिर न होकर लोचमय है, मुख पर दिव्य शक्ति है। मस्तष्क के पिछे पद्मातपत्र और छल्लेदार केश है। प्राय तीर्थकर की मूर्तियों में गतिज तत्व का उपस्थिति कम रहती है तथा स्थित भाव विद्यमान रहता है। परन्तु इस मूर्ति में गति तत्व विद्यमान है।

चित्र 21 – जैन तीर्थंकर, कंकाली टीला

विदिशा से प्राप्त तीर्थकर की तीन मूर्तियाँ जो विदिशा संग्रहालय में सुरक्षित है। गुप्तकाल की मानी गई है जो गुप्त शासक रामगुप्त के शासन काल में निर्मित मानी जाती है। इन मूर्तियों की पीठिका पर सिंहो का अंकन हुआ है। अंग विन्यास तथा प्रभामण्डल गुप्तकालीन कला के परिचायक है। इसी प्रकार राजगृह, देवगढ़, बेसनगर, तथा बूढ़ी चंदेरी आदि स्थानों से अनेक जैन तीर्थकरों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई है जो गुप्त यूगीन शिल्प लक्षणों को धारण किए है। गुप्तकालीन प्रभाव लिए ध्यान व एकाग्रता के भावों को धारण किये है। लावण्य तथा शिल्प की दृष्टि से सौन्दर्यपूर्ण व उत्कृष्ट है।

गुप्तकाल की शिल्प गत विशेषता में मृण मूर्तियों व पकाई ईटों का भी विशेष उल्लेख प्राप्त होता है जिनका सौन्दर्य पाषाण शिल्प की भांति गरीमापूर्ण है। इन मूर्तियों का शारीरिक गठन प्रादेशिकता को लिए होकर भी शिल्पगत मापदंडो के अनुसार निर्मित है। देवी–देवताओं, मानव आकृतियों पशुओं की अनेक भावमयी मृण मूर्तियां सारनाथ, कौंशाबी, मथुरा, राजघाट श्रीवस्ती आदि अनेक स्थानों से प्राप्त हुई है।

मौर्य काल में लाठ बनाने की विस्तृत परम्परा थी। अनेक स्थानों पर लाठ प्राप्त हुए है लेकिन गुप्त काल में यह परम्परा लुप्त प्राय हो गई थी। स्कन्दगुप्त द्वारा काशी के पास सदैपुर कस्बे में एक लाठ खड़ा किया गया था; जिसे अपनी युद्ध विजय के प्रतीक के रूप में खड़ा किया गया था। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वारा बनवाया गया लौहे का लाट विश्व प्रसिद्ध है। जो कुतबमीनार के पास महरौली में खड़ा है। यह तेइस फुट आठ ईंच ऊंचा लाठ है जिसके शीर्ष पर गरूड़ की मूर्ति निर्मित है जो विक्षत है। इसे 'दिल्ली की किल्ली' भी कहा जाता है। इस लौह स्तम्भ पर भी ओप किया गया है जो आज भी चमकदार है तथा सम्पूर्ण लौहा बिना मुरचेका है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. मौर्यकालीन मूर्तिशिल्प की विषयवस्तु क्या थी?
2. मौर्यकालीन प्रमुख स्तंभ कौने–कौन से है?
3. सारनाथ के 'सिंहशीर्षस्थ परगहा' की प्रमुख विशेषताएं लिखिये।
4. सांची स्तूप कहाँ पर स्थित हैं? इसके निर्माण का उद्देश्य क्या था?
5. भरहुत स्तूप में किस प्रकार का पत्थर प्रयोग में लिया गया?
6. अमरावती मूर्तिकला की तक्षण कार्यशैली किस प्रकार की है ?
7. गांधार मूर्तिकला में कैसा पत्थर प्रयोग में लिया गया।
8. गांधार मूर्तिकला के दो प्रमुख कला केन्द्रों के नाम बताओ।
9. गुप्तकालीन कला के प्रमुख केन्द्र कौन–कौन से हैं?
10. सारनाथ से प्राप्त गुप्तकालीन बुद्धमूर्ति की क्या विशेषता है?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. मौर्यकालीन मूर्तिकला के उद्भव व विकास पर निबन्ध लिखिये।
2. मौयकालीन किन्हीं दो मूर्तियों की कलात्मक व्याख्या कीजिए।
3. सांची के स्तूप का वर्णन करते हुए बताएं कि इसमें निर्मित मूर्तियों का प्रमुख विषय क्या है?
4. भरहुत की मूर्तिकला का वर्णन अपने शब्दों में करें।

5. गांधार शैली की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करो।
6. गांधार शैली और मथुरा शैली में क्या अंतर है?
7. गुप्तकाल मूर्तिकला का स्वर्णकाल क्यों कहा जाता है?
8. हिन्दू धर्म से सम्बन्धित प्रमुख गुप्तकालीन मूर्तिशिल्प की सप्रसंग व्याख्या कीजिये।
9. मथुरा में निर्मित बुद्ध मूर्तियों की शिल्पगत व्याख्या करिये।

प्रायोगिक चित्रकला

अध्याय
10
अंकन एवं अनुअंकन

चित्रांकन एक व्यापक शब्द है। इस शब्द में सृजन शैली तथा प्रविधि दोनों समाहित है। चित्र से तात्पर्य है – किसी भी माध्यम (गेरू, रंग, स्याही, खड़िया, पेन्सिल, तूलिका या वर्तिका) द्वारा किसी भित्ति, कागज या अन्य किसी तल पर अनेक आकृतियों को संयोजित करना।

अंकन

जब हम अंकन करते हैं तो उसमें वस्तुओं, विचारों या भावों के बिम्ब को ही फलक पर किसी माध्यम से प्रस्तुत करते हैं जो मात्र आभास होता है। वह वास्तविक वस्तु नहीं होता। इस आभास की कुछ निजी विशेषतायें होती है। प्रयुक्त माध्यम व सामग्री के अनुसार इस आभास के रूप बदलते जाते हैं। एक ही वस्तुरूप का अंकन तैल रंगों, पेस्टल रंगों, पेन्सिल, कोलाज या छापा चित्रण में अलग–अलग प्रभाव उत्पन्न करता है। इसमें कोई अच्छा या बुरा नही है। प्रत्येक माध्यम का अपना गुण व प्रभाव होता है जिसे उसके प्रयोग से ही समझा जा सकता है। चित्रकार किसी भी माध्यम से द्विआयामी, त्रिआयामी या पुंजात्मक चित्र बना सकता है। चित्रांकन पद्धति के दो पक्ष है – सामग्री तथा रूप योजना।

सामग्री

सामग्री से तात्पर्य है अंकन हेतु प्रयोग में लिये जाने वाले उपकरण, रंग और उनका प्रभाव। उपकरण में पेंसिल, पैन, तूलिका, चाकू, चित्रतल आदि आते हैं तथा टेम्परा, जलरंग, तैलरंग, एक्रेलिक आदि गीले माध्यम है। ये उपकरण व रंग विविध प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

रूप योजना

चित्रकार के मन में किसी भी विषय व भाव को व्यक्त करने के लिये रूप योजना की कल्पना का उद्‌भव होता है। इस रूप योजना के आधार पर ही अर्मूत या मूर्त रूप योजना प्रस्तुत की जाती है। इसके अन्तर्गत हम त्रिआयामी व द्विआयामी रूप योजना को समझने का प्रयास करेंगे।

त्रिआयामी अंकन

चित्रकार किसी वस्तु का अंकन छाया प्रकाश के माध्यम से वास्तविकता के आधार पर ठोस दिखाने के लिये करता है उसे त्रिआयामी, त्रिविधात्मक या त्रिविमिय चित्रण करते हैं। द्विआयामी चित्रभूमि पर तृतीय आयाम के निरूपण के लिये दृष्टिभ्रम अतिआवश्यक है। इसमें क्षय वृद्धि के नियम ध्यान में रखने आवश्यक है। रंग की तान भिन्नता द्वारा आकार निरूपण करने पर आतंकित रेखांकन के द्वारा आकृति के ठोस आकार के भिन्न–भिन्न अंगो पर स्पष्ट चित्रण करने पर, रेखायें अतिआच्छादित करके आकृति की दूरी व निकटता दिखाने पर तथा परिप्रेक्ष्य के नियमों का पालन करने पर त्रिआयामी प्रभाव उत्पन्न होता है।

त्रिआयामी अंकन में दृष्टिभ्रम उत्पन्न करना अत्यन्त कठिन है। जैसे घनाकार के छः पक्ष होते हैं किन्तु एक बार में एक दृष्टिकोण से तीन पक्ष ही देखे जा सकते हैं। इस कारण घनाकार के वर्ग चित्रांकन में वर्ग नहीं रह पाते तथा समकोण भी अधिक कोण व न्यूनकोण में बदल जाते है। त्रिआयामी वस्तु चित्रण में क्षयवृद्धि, परिप्रेक्ष्य तथा छाया प्रकाश महत्वपूर्ण तत्व है।

अंकन में छाया प्रकाश का महत्त्व अत्यधिक होता है। छाया प्रकाश का प्रभाव आकृति तथा चित्र भूमि के द्विआयामी स्वभाव को त्रिआयामी प्रभाव प्रदान करता है। यह आकार को ठोस रूप भी प्रदान करता है। द्विआयामी चित्रतल को छाया प्रकाश के माध्यम से कलाकार त्रिआयामी बना देता है। चित्रित वस्तु प्रकाश के कारण कलाकृति अद्भुत प्रभावयुक्त प्रतीत होती है। सामान्यतः जो तल प्रकाश के स्त्रोत के सर्वाधिक निकट होते हैं तथा जिनका पोत प्रकाश को परावर्तित करने का सामर्थ्य रखता है, वे तीव्र तथा अग्रगामी वर्णों के द्वारा अभिव्यक्त किये जाते हैं। इस प्रकार प्रकाश स्त्रोत से दूर तथा जिनका पोत प्रकाश को परावर्तित करने में सामर्थ्य नही रखता हो वे मंद तथा पृष्ठगामी वर्णों से अभिव्यक्त किये जाते है।

कलाकृति में छाया प्रकाश तथा परछायी के प्रभाव या आभास को प्रकट करने के लिये महत्वपूर्ण दृष्टिकोण का चयन किया जाता है। आकृति की सीमा रेखा भी अत्यधिक महत्त्व रखती है। अंतरेखायें आकृति की स्पष्टता की द्योतक होती है। द्विआयामी चित्रण करने के लिये छः सिद्धान्त प्रमुख है।

1. सीमा रेखा अथवा रंग विभिन्नता के द्वारा आकार निरूपण करने पर आकृति की छाया जैसा प्रभाव उत्पन्न होता है।
2. आंतरिक रेखाकंन के द्वारा आकृति के ठोस आकार के भिन्न–भिन्न अंगो का चित्रण स्पष्ट होता है।
3. सीमा रेखायें तथा आंतरिक अतिआच्छदित करने के कारण आकृति की निकटता तथा दूरी स्पष्ट की जाती है।
4. परिप्रेक्ष्य सिद्धान्तों के द्वारा आकृति में ठोसपन तथा चित्रभूमि पर गहराई अर्थात तीसरे आयाम का आभास उत्पन्न होता है।
5. निकटता तथा दूरी को प्रकट करने के लिये आकृतियों का विशाल तथा लघु रूप भी त्रिआयामी आभास उत्पन्न करता है।
6. आकृति में छाया प्रकाश का चित्रण वास्तविक प्रकाश मात्रा के अनुरूप करना चाहिये। यह छाया प्रकाश आकृति के वास्तविक रूप का निरूपण करता है।

निर्देश

छाया प्रकाश तथा क्षय वृद्धि के द्वारा द्विआयामी चित्रभूमि पर त्रिआयामी चित्रण संभव होता है। दैनिक जीवन के उपयोग में आने वाली वस्तुओं का यर्थातवादी चित्रण करें तथा वस्तुओं पर छाया प्रकाश बाँयी और से आता दर्शायें। अधिक से अधिक तीन वस्तुओं को 2.5x2.5 फीट के मॉडल स्टैण्ड पर या स्टूल पर ड्राईंग बोर्ड रखकर संयोजित करे। पृष्ठभूमि में उपयुक्त रंग का कपड़ा या कागज लगाये। स्टैण्ड की ऊँचाई 50 सेमी से अधिक न हो। अंकन को 1/4 इम्पीरियल (15"x11") आकार के कागज पर पेन्सिल के माध्यम से पूर्ण करें। पेन्सिल में B, 2B, 4B, 6B का प्रयोग करना चाहिये।

द्विआयामी अंकन

सृजन प्रक्रिया में आकृति का संपूर्ण प्रभाव चित्रकार को प्रेरणा देता है। अंकन भी आकृति का छाया चित्र नही होता है। अपितु उसमें भी यथातथ्य के स्थान पर कभी वर्ण, तो कभी संयोजन आदि प्रभावी होता है। द्विआयामी चित्र में कला तत्व प्रभावी होते हैं। सृजनात्मकता के लिये – आकृतियों का मुक्त संयोजन, मुक्त वर्ण नियोजन, स्वतंत्र तल व्यवस्था आदि की सहायता ली जाती है। ज्यामितिय क्षयवृद्धि, वातावरणीय प्रभाव, छाया प्रकाश, रूप रंग व पोत की स्वाभिकता, चित्रतल पर वास्तविक स्थिति से बचकर कलात्मकता प्रभाव की सृष्टि की जा सकती है। अंकन के बंधन से मुक्त होने के लिये कलात्मक रूप की अभिव्यक्ति के लिये प्रमुख आकर्षण मुख्य होता है।

कलाकृति द्विआयामी रूप होती है। कलाकृति में समस्त बुद्धि तथा साधनों का प्रयोग करने पर भी वास्तविकता का केवल भ्रम ही उत्पन्न किया जा सकता है। इस प्रकार वस्तु आकृति के रूप का बंधन चित्रकार को इस भ्रामक स्थिति से ऊपर नही उठने देता। यदि सृजन प्रक्रिया का विश्लेषण किया जाये तो ज्ञात होगा कि आकृति का महत्व इस प्रक्रिया में केवल प्रेरणा का है। यद्यपि सृजन एक स्वतंत्र प्रक्रिया है, परन्तु इस प्रक्रिया का आरम्भ वास्तविक प्रेरक तत्व से होता है।

अनुअंकन

दृश्य कला में एक चित्र की रंगों द्वारा बनावट की प्रक्रिया को अर्नुअंकन कहते हैं। इसे अभिव्यति के एक साधन के रूप में प्रतिपादन किया जाता हैं। द्विआयामी धरातल पर विभिन्न रंगों की तान का प्रयोग करते हुए एक चित्र का निर्माण किया जाता हैं। कलात्मक प्रतिपादन के लिए प्रकाश और छाया का उपयोग कर कलाकार विभिन्न शैलियों में चित्र की संरचना करता हैं। ये चित्र कभी कभी एक रंग की विभिन्न तान तो कभी कभी एक प्राथमिक रंग की विभिन्न तान की सहायता से किये जाते हैं।

जब चित्रण में से रूप को यथा तथ्य ठोस दिखाने का ध्येय गौण कर, चित्रण माध्यम के अनुसार परिवर्तित एवं साधारणीकृत

रूप केवल संयोजन दृष्टि से चित्रित किये जाये, तब यह अनुअंकन, द्विआयामी, द्विविधात्मक या द्विविमिय चित्रण कहलाता है। अंग्रेजी में इसे रेन्डरिंग कहा जाता है। सफल तकनीकी प्रयोग, प्रमाण–परिवर्तन तथा पुनः संयोजन से इस चित्रण में नंदतिक प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। कलाकृति द्विआयामी होने के कारण बुद्धि और साधनों द्वारा वास्तविकता का भ्रम उत्पन्न किया जा सकता है।

चित्र में आकार, रेखा, रंगो का अपना महत्व हैं। उसी के आधार पर चित्र की रचना की जाती हैं। भिन्न भिन्न वस्तुओं के आकार तथा छाया प्रकाश के उचित ज्ञान द्वारा ही चित्र में सन्तुलन व सौन्दर्य का समावेश होता हैं। किसी चित्र रचना में रेखाओं से मधुरता भरने के लिए रेखा सौजन्य के अतिरिक्त स्थान की उचित व्यवस्था और विभिन्न वस्तुओं का समिश्रिण भी आवश्यक हैं। स्थान की व्यवस्था के कारण ही हमें चित्र के बड़े या छोटे होने का अनुमान होता हैं न कि चित्र के लम्बे चौड़े होने से। वस्तुओं का अनुपात भी आपस में एक दूसरे से मेल खाता अथवा वातावरण के हिसाब से बिल्कुल सन्तुलित होना चहिए।

यह वास्तविकता शब्दों के माध्यम से नहीं बल्कि चित्र बना कर ही दर्शायी जा सकती हैं। इस प्रकार सयोंजन का अर्नुअंकन के लिए विभिन्नता तथा अनुरूपता दोनों आवश्यक हैं।

त्रिआयामी प्रभाव मुक्ति के उपाय

त्रिआयामी वस्तु रूप का पूर्वाग्रह समाप्त करने के लिये निष्ठा तथा निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता होती है। द्विआयामी तथा त्रिआयामी कलाकृति अनुभव तथा सतत् अध्ययन, कला, तत्व और सिद्धान्तों के आधार पर निर्भर होती है। द्विआयामी चित्रण के लिये त्रिआयामी प्रभाव उत्पन्न करने वाले तत्वों की सचेतन अवहेलना करने के लिये निम्न उपाय उपयोगी होंगे –

1. आकृतियों को सामने, पीछे, ऊपर, नीचे सभी ओर से काटकर, तोड़कर, फैलाकर अनेक प्रकार से देखें। इस प्रकार के निरीक्षण से जो आकार तैयार हो उन्हें चित्रतल पर नियमानुसार संयोजित करें।
2. आकृतियों को संजोने के पश्चात् मध्यवर्ती रेखा और वर्ण से चित्र पूरा किया जाये।
3. गहराई का बिल्कुल विचार न करे तथा सपाट क्षेत्र में आलेखन की भांति आकार संयोजित करे। आकृतियों को दूरी के अनुसार नहीं वरन् महत्व के अनुसार छोटा या बड़ा बनाये।
4. वस्तु समूह की प्रत्येक आकृति का अलग–अलग रेखाकंन करके उसका स्थानीय रंग भर दिया जाये तथा उन आकृतियों को कैंची से बाह्य सीमा के साथ काट लिया जाये।
5. चित्र भूमि को तल विभाजन के नियमों द्वारा उपयुक्त भागों में बांटकर उसकी पृष्ठ भूमि और अग्रभूमि में रंग भर दिया जाये।

जब चित्रकार आकृति पर दृष्टिपात करता है, तब आकृति का सम्पूर्ण प्रभाव कलाकार के मस्तिष्क पर अंकित होता है। इस प्रभाव में कभी वस्तु की आकृति, कभी वर्ण और कभी योजना बलवान हो जाती है। इस प्रकार कलाकार तथा कैमरे में अंतर प्रकट होता है क्योंकि कलाकार अर्थसार के प्रमुख आकर्षण को चयन कर चित्रित करने का प्रयत्न करता है। जबकि कैमरा यथा तथ्य वर्णित करने का साधन है। अतः इस प्रकार कलाकार कलाकृति सृजन के लिये प्रेरणा तथा आधार प्राप्त कर लेता है। इससे कलाकृति में दो दृष्टिकोण संभव है।

1. यदि चित्रकार के मस्तिष्ट में वस्तु के त्रिआयामी रूप का पूर्वाग्रह होता तो कलाकृति वास्तविकता का भ्रम उत्पन्न करने वाली तथा बंधनयुक्त सी प्रतीत होगी।
2. यदि चित्रकार सृजनात्मकता से प्रेरित होगा तब कलाकृति लयात्मक रचना और संतुलन का उदाहरण बनेगी। इस प्रकार वस्तु का रूप गौण हो जायेगा तथा प्रवाह प्रमाण संतुलन और सांमजस्य आदि सर्वोपरि होंगे।

निर्देश

रेखाकंन के लिये सप्ताह में दो बार विद्यालय परिसर या बाहर जाकर अध्ययन करें। प्राप्त एवं मानव निर्मित पोत का अध्ययन कर ड्राईंगशीट पर कई भागों में विविध पोत सृजित करें। भाग 'अ' वस्तु चित्रण में ली गई वस्तुओं को विविध आयामों, दृष्टिक परिप्रेक्ष्यों में देखकर अंकित कर रूप परिवर्तन करने का अभ्यास करें। उदाहरण के लिये संलग्न वस्तु चित्रण एवं उनके आधार पर बनाये गये, द्विआयामी चित्र देंखे। द्विआयामी चित्रण मुख्य तत्व तल–व्यवस्था, तल विभाजन रेखाकंन, वर्ण सामंजस्य का संतुलित प्रभाव होता है। इसमें वस्तु की आकृति की पूर्ण अवहेलना नहीं करनी चाहिये। द्विआयामी चित्रण में रंगो के अनेक बलों तथा तानों का प्रयोग करना चाहिये। इससे चित्र में आकर्षण उत्पन्न होता है।

वस्तु चित्रण के विभिन्न विकास स्तर

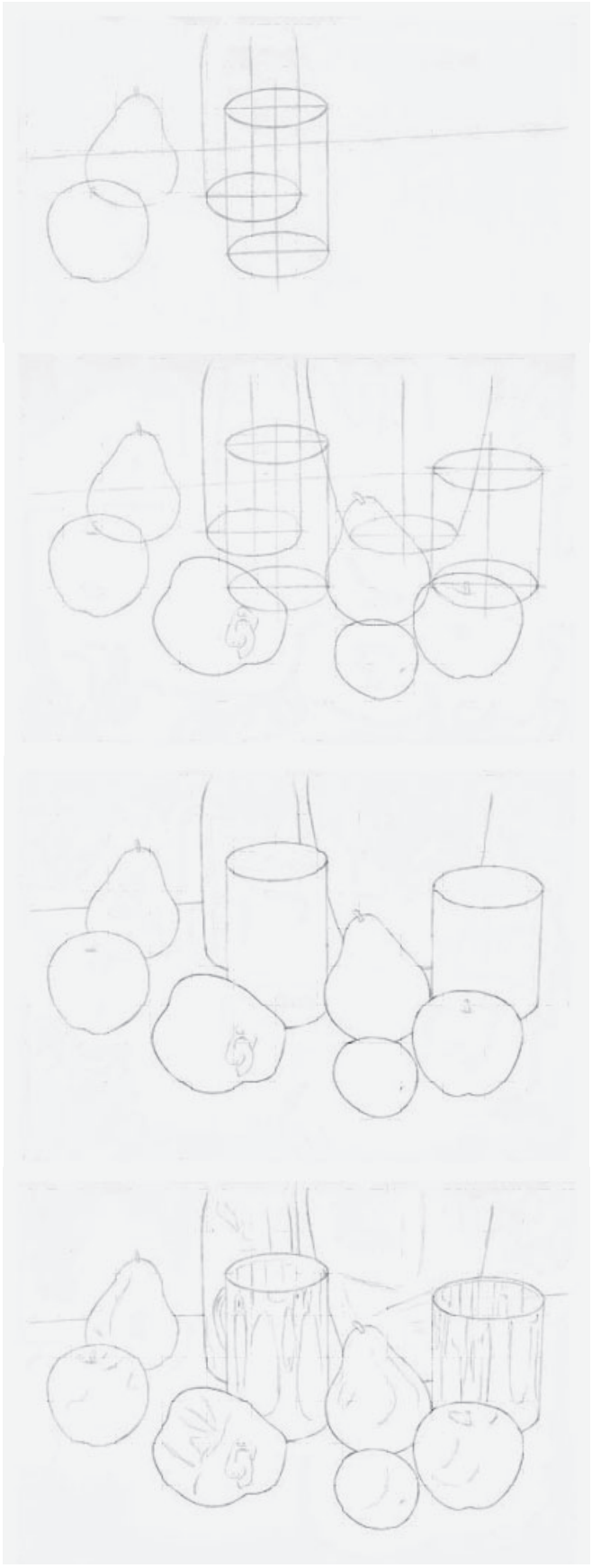

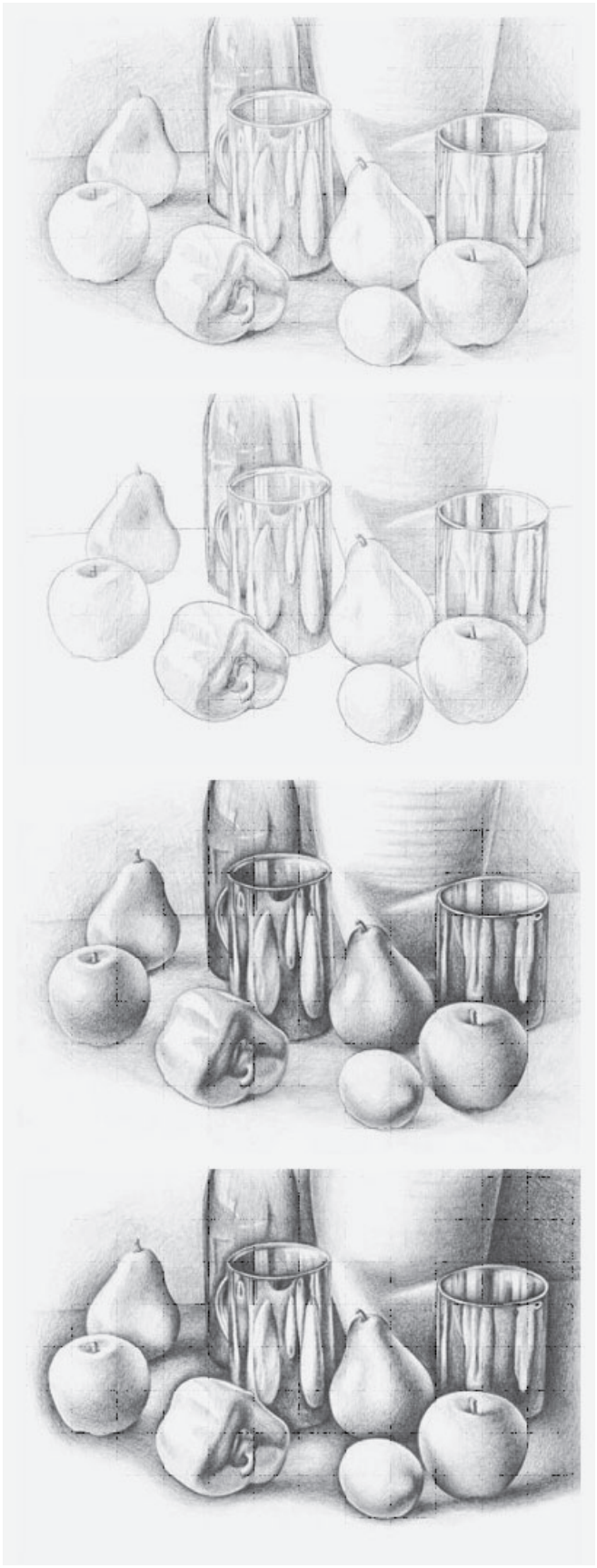

चित्र 1

रंगीन वस्तु चित्रण में विभिन्न विकास स्तर

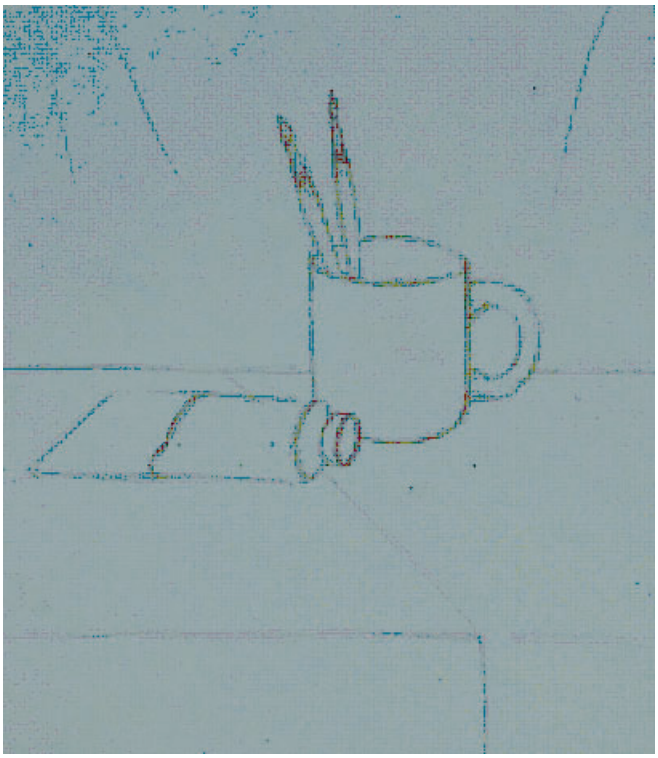

1

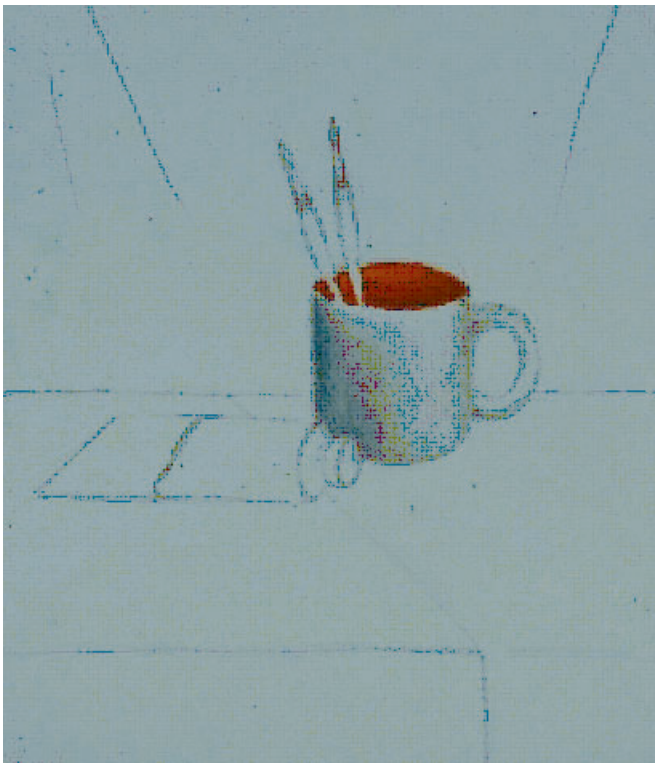

2

3

4

5

7

6

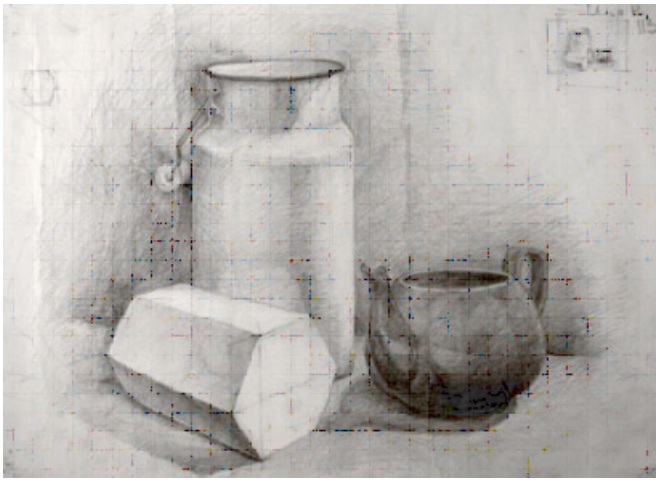

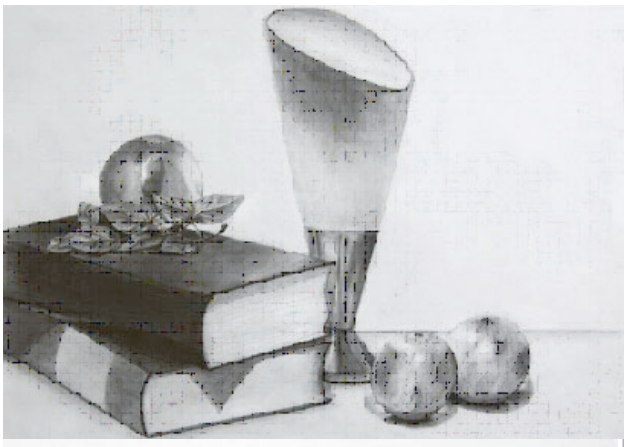

चित्र 3

एक वर्णीय रंग योजना में स्थिर वस्तु चित्रण संयोजन

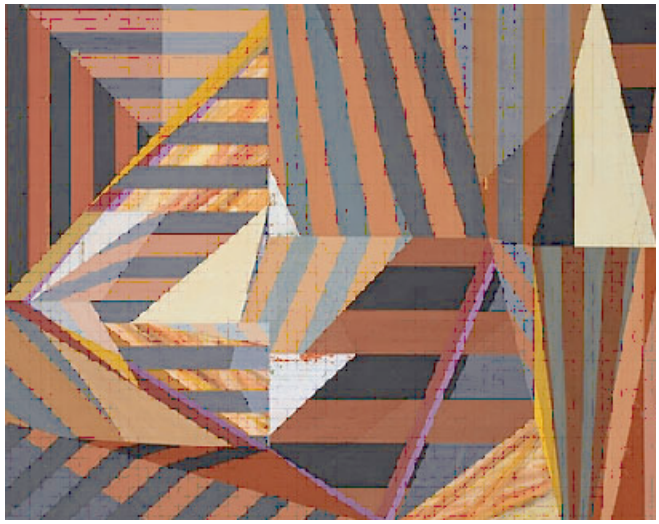

बहु वर्णीय रंग योजना में संयोजन

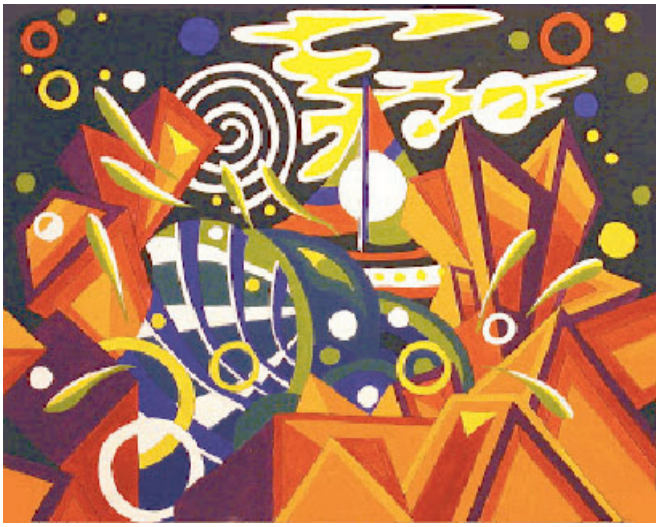

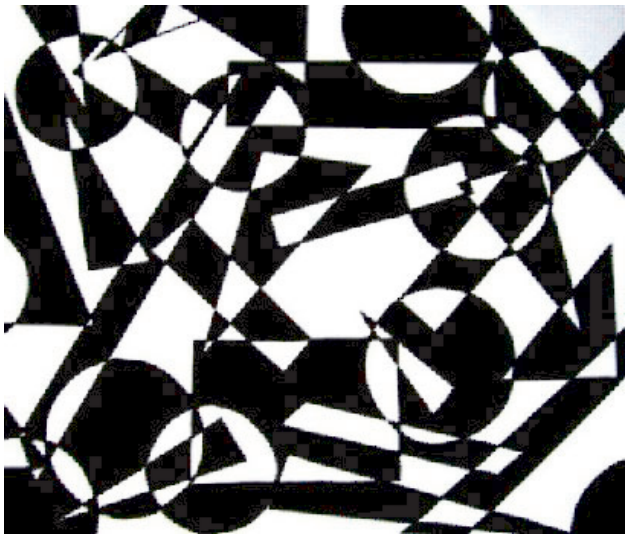

चित्र 4

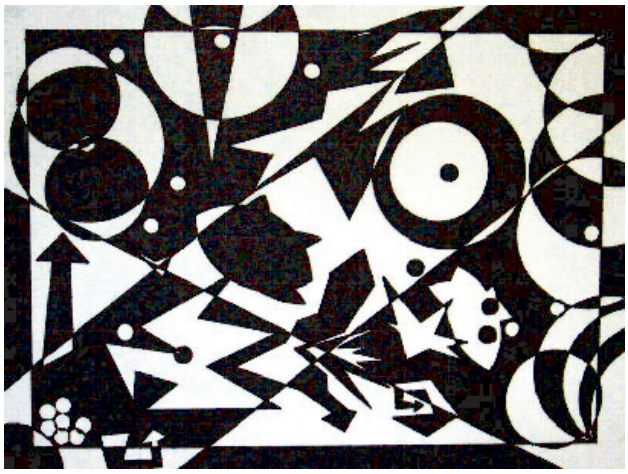

एक वर्णीय संयोजन

चित्र 5

मिश्रित रंगो से संयोजन

चित्र 7

एक ही संयोजन में भिन्न रंग योजना

विशिष्ट परिभाषाएँ

(1) अग्रगामी रंगतें

शुद्ध रंग जो अमिश्रित होने के कारण बहुत चमकदार होते हैं और अन्य रंगों से आगे बढ़ते हुए प्रतीत होते हैं। जैसे लाल एवं नारंगी आदि रंग अन्य समस्त रंगों से आगे बढ़ते और शीतल रंग पीछे हटते हुए प्रतीत होते है। मूलतः गर्म रंग ही अग्रगामी होते हैं।

(2) अग्रभूमि

चित्रभूमि का निचला स्थान जो दर्शक को अपने निकट प्रतीत होता है।

(3) अन्तराल

चित्रभूमि का समस्त विस्तार। यह दो प्रकार का होता है – सक्रिय एवं सहायक। सक्रिय अन्तराल मुख्य आकृतियों के समूह से निर्मित होता है और सहायक अन्तराल पृष्ठभूमि से निर्मित होता है।

(4) अंतराल, आकाश, अवकाश (Space)

यह सम्पूर्ण त्रिमितीय (Tridimensional) व्याप्ति दर्शाता है।

(5) अभिप्राय

किसी विषय, आकृति अथवा घटना का बारम्बार अंकित किया जाने वाला परम्परागत रूप। जैसे : स्वास्तिक, ताण्डव, कमल पुष्प, हाथी आदि।

(6) असम्मात्रा

चित्रसंयोजन में आकृति–रचना को सम्मात्रिक न होने देना। सम्मात्रिकता सो चित्र में जहाँ कृत्रिमता अथवा जड़ता आने की आशंका हो वहाँ सौन्दर्य की दृष्टि से असम्मात्रिक आकृतियों की रचना की जाती है।

(7) अलंकारिक

आकृतियों का वह स्वरूप जिसमें प्राकृतिक रूपों में सूक्ष्मता एवं ज्यामितियता के प्रभाव से सौन्दर्य उत्पन्न किया जाता है।

(8) अनुपात (Proportion)

चित्र में भिन्न रंगों, छटाओं, आकारों की लम्बाइ–चौड़ाई व चित्रित वस्तु या प्राणी के भिन्न अंगों के बीच का अनुपात नैसर्गिक रूप की अपेक्षा परम्परा, शैली, कलाकार की व्यक्तिगत अभिरूचि, अभिव्यक्ति की आवश्यकता, सौन्दर्य की कल्पना, फैशन वगैरह बाह्य तत्वों पर ही अक्सर निर्भर करता है। ग्रीक कला में आदर्श मानव शरीर की लम्बाई शीर्ष से आठ गुना मानी जाती थी। भारतीय शास्त्रों में देव, दानव, मानव वगैरह की आकृतियों के लिए भिन्न अनुपात निर्णित किये हैं। नारी, पुरुष व शिशु के शरीर के अंगों के अनुपात भिन्न होते हैं।

(9) अत्युष्ण रंग (Hot colour)

लाल, सेंदूरी एवं तत्सम अतिउत्तेजक रंग।

(10) अग्रभाग (Foreground)

चित्रित यथार्थ या आकृति मूलक दृश्य का आगे का हिस्सा। वस्तु निरपेक्ष कलाकृति के संदर्भ में इस शब्द का प्रयोग अर्थहीन है।

(11) अभिश्लेषक (Agglutinant)

गोंद जैसा पदार्थ जिसके साथ मिलाने से रंग कागज़ से चिपकता है।

(12) आकार,

कलाकार व दर्शक की भावनाओं एवं प्रकाश जैसे चंचल बाह्य तत्वों को छोड़कर रचना तत्वों पर आधारित वस्तु की मूल बनावट है। आकार वस्तु के अस्तित्व का दर्शक है।

(13) आकृति

किसी भी माध्यम में उपयुक्त सामग्री द्वारा प्रस्तुत किया गया रूप। मुख्यतः मानवीय, पशु–पक्षी एवं वानस्पतिक जगत के रूपों को ही इस वर्ग में रखा जाता है।

(14) आलेखन

ऐसा अंश अथवा खंड (इकाई) जिसकी आवृत्तियों द्वारा चित्र पूर्ण किया जाये।

(15) आर्द्र भित्ति चित्रण

भित्ति चित्रण की वह प्रविधि जिसमें दीवार के गीले पलस्तर पर ही पतले–पतले रंग लगाये जाते हैं जो पलस्तर सूखने के साथ ही पक्के हो जाते है।

(16) आदिम कला (Primitive art)

घने जंगलों में आदिम अवस्था में रहकर संघर्षमय जीवन व्यतीत करने वाली मानव जातियों की कला। इसमें प्रागैतिहासिक (Prehistoric) कला के अतिरिक्त उसके पश्चात् वर्तमान काल तक उसी अवस्था में रह रही जातियों की कला आती है।

(17) ओप

चमकदार तेल या वार्निश माध्यम के प्रयोग से कलाकृति की बढ़ी हुई चमक। इसकी प्रायः तीन पद्धतियां हैं। प्रथम पद्धति में प्रत्येक रंग में अधिक माध्यम का मिश्रण किया जाता है। द्वितीय विधि में चित्र–रचना के उपरान्त अति प्रकाश वाले भागों में स्थानीय हल्के रंग को माध्यम में मिलाकर पुनः लगा देते हैं जिससे वे स्थान बहुत अधिक चमकने लगते हैं। तृतीय विधि में सूख जाने के उपरान्त सम्पूर्ण चित्र पर ही वार्निश अथवा तेल की परत चढ़ा देते हैं जो सूखकर चित्र के ऊपर चमकदार झिल्ली बना देती है।

(18) इण्टेग्लियो

काष्ठ, धातु अथवा लिनोलियम आदि की आकृतियां खोदकर या छीलकर स्याही लगाकर कागज पर छापना।

(19) इम्पेस्टो

पर्याप्त गाढ़े तैल अथवा टेम्परा रंगों से चित्रण करना। इस प्रकार के चित्रों का प्रयोग तूलिका एवं चाकू से किया जा सकता है।

(20) उपवर्ण

तृतीय श्रेणी के रंग जो प्राथमिक एवं द्वितीय श्रेणी के मिश्रित वर्णों के मिश्रण से निर्मित किये जाते हैं।

(21) उष्ण वर्ण

लाल तथा नारंगी रंग जो अग्रगामी भी कहे जाते हैं। इनके सहयोग से बनने वाले कत्थई तथा उन्नावी रंग भी इसी वर्ग में आते हैं।

(22) एकवर्णी रंग योजना

एक ही वर्ण के विभिन्न बलों से चित्र पूर्ण करना। विभिन्न बल निर्बल करने के हेतु श्वेत एवं काले रंग का मिश्रण किया जाता है।

(23) एम्बॉसिंग (Embossing)

उभारदार चित्र या नक्काशी जो धरातल को पीछे से दबाकर या उत्कीर्ण कर बनायी जाती है।

(24) एकाश्मक (Monolith)

एक ही पत्थर को उकेरकर बनाया शिल्प या वास्तु–शिल्प उदाहरणार्थ एलोरा का कैलाश मंदिर।

(25) अकादमिक पद्धति

किसी देश की प्राचीन एवं शैक्षणिक दृष्टि से मान्य परम्पराओं के आधार पर चित्रांकन करना। इस पद्धति में कलाकार स्थापित नियमों से बंधा होता है।

(26) कला

कुशलतापूर्वक किया गया कोई भी कार्य कला कहा जाता है किन्तु सीमित अर्थ में शिवत्व की उपलब्धि के लिए सत्य की सौंदर्यमयी अभिव्यक्ति ही कला है।

(27) कला–ललित एवं उपयोगी

जिनमें सौंदर्य अथवा अभिव्यंजना का उद्देश्य प्रमुख रहता है उन्हें ललित कलाएँ कहते हैं। जिनमें उपयोगिता का ध्यान रखा जाता है उन्हें उपयोगी कलाएँ कहा जाता है। उपयोगी कलाओं को ही प्रायः शिल्प भी कहा जाता हैं किन्तु शिल्प वस्तुतः कलाकृति की रचना से सम्बन्धित पक्ष है जो ललित कलाओं में भी है और उपयोगी कलाओं में भी है।

(28) कला–दृश्य तथा श्रव्य

दृष्टि से सम्बन्धित कलाओं को दृश्य एवं कानों से सम्बन्धित कलाओं को श्रव्य कहा जाता है। चित्र, मूर्ति वास्तु आदि दृश्य कलाएँ और कविता, संगीत आदि श्रव्य कलाएँ है। दृश्य कलाओं को स्थानाश्रित एवं श्रव्य कलाओं को समयाश्रित भी कहा जाता है।

(29) क्षितिज रेखा

चित्र भूमि की सभी आकृतियों की रंखाएँ यदि बढ़ा दी जाये तो वे क्षितिज रेखा पर जाकर मिल जाती है। इसे दृष्टि तल भी कहते हैं। चित्र की आकृतियों के समस्त तल इस रेखा के समानान्तर, ऊपर या नीचे होते हैं।

(30) क्षितिज (Horizon)

वह वृत्ताकार रेखा जहाँ गुरुत्वाकर्षण की दिशा के अभिलम्ब समतल भूमि द्वारा आकाशीय गोल को काटने का आभास होता है।

(31) क्षैतिज रेखा (Horizontal line)

क्षितिज के किन्हीं दो बिन्दुओं को जोड़ने वाली या उसी के समानान्तर रेखा।

(32) खनिज वर्ण

मिट्टी, पत्थर आदि पदार्थों से निर्मित रंग जैसे गेरू, खड़िया, रामरज, हिरोंजी आदि।

(33) गढ़नशीलता
कलाकृति में उभार तथा गहराई के प्रयोग से त्रिआयामी प्रभाव उत्पन्न करने की विधि। इससे वस्तु में घनत्व की सृष्टि होती है।

(34) ग्राफिक कलाएँ
वे कला रूप जिनमें पहले किसी सतह पर उल्टा चित्र अंकित किया जाता है। फिर उस पर स्याही लगाकर सीधा छापा जाता है। इसके हेतु प्रायः पत्थर, काष्ठ, लिनोलियम एवं धातु की प्लेट की सतह का प्रयोग किया जाता है।

(35) गेसो (Gesso)
टेम्पेरा पद्धति के चित्रण से पहले उचित धरातल बनाने के लिए प्लास्टर या चॉक जैसे सफेद चूर्ण व सरेस या केसीन जैसे बन्धक के घोल को मिश्रित करके तैयार किया गया लेप।

(36) घनत्व
किसी वस्तु अथवा आकृति का त्रिआयामी स्वरूप।

(37) चित्रवल्लरी (Frieze)
वास्तु पर चित्रित या तक्षित आलंकारिक माला।

(38) छाया–प्रकाश
रंग के हल्के–गहरे बलों अथवा श्वेत–काले के प्रयोग से आकृतियों के प्रकाशित एवं अंधेरे वाले भागों का चित्रण।

(39) छींट, बातिक (Batik or Battik)
कपड़े पर आलंकारिक आकृति या चित्र बनाने की एक विधि। इस विधि में प्रथम कपड़े पर पिघले हुए मोम से आकृति बनायी जाती है। शेष हिस्से को लाख के रंगों से रंजित करने के पश्चात् मोम को हटाया जाता है।

(40) ज्यामितिक रूप
ज्यामिति में प्रयुक्त होने वाली प्रमुख आकृतियों – घन, बेलन, शंकु एवं पिंड – पर आधारित रूप।

(41) टेम्पेरा रंग (Tempera colour)
अपारदर्शी जलरंगों को भी टेम्पेरा रंग कहते हैं।

(42) टेम्पेरा चित्रण (Tempera painting)
रंगद्रव्य को अण्डे की जरदी जैसे पदार्थ व पानी में मिलाकर चित्रण करने की विधि।

(43) तटस्थ रंग
श्वेत तथा काले वर्ण ये वस्तुओं के छाया–प्रकाश को प्रदर्शित करते हैं।

(44) तान, छटा (Tone)
वस्तु पर छाया अथवा प्रकाश की मात्रा। इसे रंगों के विभिन्न बल अथवा मान प्रदर्शित करते हैं।

(45) निर्वर्ण रंग–योजना
ऐसी रंग योजना जिसमें रंग–हीनता के समान अनुभूति हो जैसे कत्थई, बादामी, काला।

(46) पच्चीकारी मणिकुट्टम् (Mosaic)
रंगीन पत्थर, कांच या मार्बल के टुकड़ों को मसाले में बिठाकर बनाया गया अलंकरण या चित्र। प्राचीन मिस्र व मेसोपोटामिया में छोटे पैमाने पर इस पद्धति से अलंकरण किया जाता था।

(47) पूरक वर्ण (Complementary colours)
1. वर्णक्रम (spectrum) के ऐसे दो रंग जिनके मिश्रण से श्वेत (प्रायः श्वेत) रंग बन जाता है; उदाहरणार्थ लाल व हरा, पीला व जामूनी, नीला व नारंगी।
2. लाल, पीला व नीला इन तीन मूल रंगों में से किन्हीं दो रंगों के मिश्रण से प्राप्त द्वितीय (secondary) रंग शेष तीसरे रंग का पूरक वर्ण होता है।

(48) पायस (Emulsion)
तैलीय पदार्थ का अन्य द्रव में घोल। पायसीकरण के लिए अण्डा, अल्ब्युमेन, केसीन या मोम को साथ में मिलाना पड़ता है।

(49) पोत, बुनावट (Texture)
कलाकृति की सतह का स्पर्शग्राह्य गुण।

(50) पुंज
रंग अथवा छाया–प्रकाश से निर्मित सीमा–रेखा–विहीन क्षेत्र।

(51) पृष्ठभूमि
(1) चित्रतल का वह भाग जो प्रायः क्षितिज तथा आकश से सम्बन्धित रहता है।
(2) किसी चित्र में मुख्य आकृतियों के पीछे अंकित वातावरण अथवा दृश्य।

(52) फिक्सेटिव

चित्र बन जाने पर स्प्रे किया जाना वाला घोल। यह प्रायः पेस्टल द्वारा निर्मित चित्रों पर छिड़का जाता है। इससे रंग स्थायी हो जाते हैं।

(53) फ्रेस्को, भित्ति चित्र (Fresco)

युरोप में फ्रेस्को चित्रण मुख्यतः दो विधियों से किया जाता रहा है। प्रथम विधि में पलस्तर की हुई सूखी दीवार पर जलरंगों से चित्रण किया जाता है जिसे फ्रेस्को सेक्को (Fresco secco) कहते हैं। इससे बनाये चित्र न स्थायी रहते हैं और न उनमें रंगों की एकसी चमक होती है। दूसरी विधि में गीले पलस्तर पर जलरंगों में काम किया जाता है। इस विधि के रंग पक्के हो जाते हैं व पलस्तर को हटाये बिना चित्र को मिटाया नहीं जा सकता। इस विधि को फ्रेस्को बूनो कहते हैं।

(54) बिन्दुवर्तना

छोटे–छोटे बिन्दुओं के द्वारा छाया–प्रकाश देना अथवा रंग भरना।

(55) ब्लूम (Bloom)

पुराने वार्निश किये हुए तैलचित्र पर निकलने वाली धुंधली हल्की नीली परत, इसको Blooming भी कहते हैं।

(56) भूरंग (Earth colours)

कुछ खनिज रंग मिट्टी के रूप में मिलते हैं। इनको भूरंग कहते हैं– उदाहरणार्थ ओकर्स, अम्बर्स, स्टोन ग्रीन, टेरा वर्ट, वान डाइक ब्राउन, वेनिशियन रेड (Ochres, Umbers, Stone Green, Terre Verte, Vandyke, Brown, Venetian Red)

(57) भित्तिचित्र (Mural painting)

दीवार पर बनाया भित्तिचित्र या पट या फलक पर बनाके दीवार को स्थायी रूप से जोड़ दिया चित्र। भित्ति चित्रण के प्रमुख माध्यम हैं फ्रेस्को, टेम्पेरा, तैल रंग, पच्चीकारी व रंगीन कांच चित्र (Stained glass)।

(58) मान

किसी भी रंग का छाया अथवा प्रकाश के विचार से गहरा या हल्कापन। इसे तान का मान भी कहते हैं।

(59) मध्यभूमि

चित्र भूमि का मध्य भाग। इस पर प्रायः चित्र की प्रमुख आकृतियां स्थित रहती है। इसके पीछे पृष्ठभूमि एवं नीचे अग्रभूमि कहलाती है।

(60) माध्यम

वह तरल पदार्थ जिसमें रंग घोल कर चित्रांकन किया जाता है। इसे रंग का वाहन भी कहते है। जल, तैल, टेम्परा एवं शुष्क – ये प्रमुख माध्यम हैं।

(61) मिश्रित वर्ण

वे वर्ण जो प्राथमिक वर्णों के मिश्रण से बनते हैं।

(62) रूप

भोग्य सामग्री को काट–छाँट के साथ प्रस्तुत करने से निश्चित क्षेत्रों में विभाजित चित्र–भूमि।

(63) रेखांकन

चित्रण की एक प्रविधि जिसमें केवल रेखाओं के द्वारा ही आकृति रचना की जाती है।

(64) रेखा (Line)

वस्तुतः ज्यामितीय सिद्धान्तों के अनुसार रेखा दो निकटवती समतलों के बीच की सीमा का आभास मात्र है जिसका भौतिक अस्तित्व नहीं होता। किन्तु कला की परिभाषा में इस आभास को स्पष्ट रूप देने के उद्देश्य से जो गहरे रंग का बारीक अंकन किया जाता है उसे रेखा कहते हैं। आकारों को स्पष्टतया देने के लिए इस तरह का रेखांकन करना पड़ता है।

(65) रूपंकर कलाएँ, लचीली कलाएँ (Plastic arts)

Plastic शब्द का प्रयोग मूलतः गढ़कर बनायी कलाकृति के लिए किया जाता है जो उकेरकर (Carved) बनायी कलाकृति के ठीक विपरीत है।

(66) ललित कलाएँ (Fine arts)

ऐसी कलाएँ जिनके द्वारा कलाकार को अपनी स्वतंत्र प्रतिभा से सर्जनात्मक कृति निर्माण करने का अवसर मिले जैसेकि चित्रकला, वास्तुकला, संगीत, नृत्य, नाटक, साहित्य।

(67) लय, ताल (Rhythm)

कला का एक महत्वपूण्र मूल तत्व जो कलाकृति के भिन्न अंगों को स्वाभाविक गतित्व में बांधकर उसे एकत्व प्रदान करता है जिससे दर्शक कलाकृति के भिन्न अंगों का बिना रूकावट क्रमबद्ध सौन्दर्यग्रहण कर कलात्मक अनुभूति प्राप्त कर लेता है। लय साधने के लिए कलाकार को आकार, रेखा, रंग, छटा वगैरह कला के सभी मूलाधारों का कुशलतापूर्ण प्रयोग करना आवश्यक होता है।

(68) लोक चित्रण
जन–सामान्य द्वारा लोक जीवन का अनुभूत सहज भावात्मक चित्रण।

(69) लोक कला (Folk art)
साधारण लोगों द्वारा निर्मित परम्परागत चली आयी कला। इसमें धार्मिक एवं पुराने रिवाज, सौन्दर्य की परम्परागत कल्पना व उपयुक्तता का महत्व होता है।

(70) वर्ण (Hue)
रंग की वह विशेषता जिसके कारण उसे वर्णक्रम में (spectrum) अपना स्थान दिया जाता है और अन्य रंगों से पृथक् पहचाना जाता है।

(71) वर्ण गुण
वर्ण के तीन गुण हैं – (1) रंगत (2) बल अथवा मान तथा (3) सघनता।

(72) वर्ण एकता
किसी चित्र में वर्ण वृत्त के अनुसार लगाये गये निकटवर्ती उष्ण अथवा शीतल रंगों की योजना जैसे नारंगी–लाल–बैंगनी।

(73) वर्णिका
किसी चित्र में प्रयुक्त रंगों का विशेष समूह।

(74) वर्ण वृत्त
उष्ण तथा शीतल छः रंगों का चक्र एवं ओस्टवाल्ड का आठ रंगों का चक्र।

(75) वस्तुचित्रण (Still-life painting)
सम्मुख रखी निर्जीव वस्तुओं का यथार्थ चित्रण किया जाता है।

(76) वयन
कलाकृति में प्रयुक्त सामग्री से उत्पन्न होने वाला धरातलीय प्रभाव। यह चिकना अथवा खुरदरा आदि अनेक प्रकार का हो सकता है। इसकी रचना के तीन स्रोत हैं–प्राप्त, अनुकृत एवं मौलिक।

(77) वातावरणीय प्रभाव
स्थान, ऋतु, समय अथवा भावना के अनुसार चित्र में रंगों तथा छाया–प्रकाश की योजना।

(78) वायवीयता
छाया–प्रकाश एवं गढ़न शीलता के अभाव से आकृतियों में उत्पन्न होने वाला हल्कापन।

(79) वाश
चित्रतल पर रंग की पतली–पतली सतह लगाना। जब यह स्थानीय रूप से लगाया जाता है तो इसे स्थानीय वाश कहते हैं और जब सम्पूर्ण चित्र पर लगाया जाता है तो इसे सम्पूर्ण वाश कहते हैं।

(80) व्यापारिक कला या व्यावसायिक (Commercial art)
वाणिज्य, प्रकाशन, प्रचार, संचार जैसे व्यापारिक क्षेत्रों में उपयुक्त कला जैसे कि विज्ञापन, व्यंग्यचित्र, पुस्तक–चित्रण, अक्षर–लेखन, पोस्टर आदि।

(81) शीतल वर्ण
वे वर्ण जो शीतलता का प्रभाव उत्पन्न करते हैं। जैसे नीला और हरा।

(82) श्वेतमिश्रित रंग (Gouache)
सफेद रंग मिला के गाढ़ा किये हुए रंग में चित्रण। इसके लिए कभी रंगीन कागज का भी धरातल के रूप में उपयोग किया जाता है।

(83) संयोजन (Composition)
कला के विभिन्न तत्वों (रेखा, रंग, आकार, अवकाश, बुनावट आदि) की इस तरह तल रचना करना कि निर्मित कृति एकरूपता, सुसंगति, संतुलन व प्रभावोत्पादकता के गुणों से परिपूर्ण हो।

(84) सुवर्ण अवच्छेद, स्वर्णिम अनुपात (Golden section)
यह अनुपात प्राप्त करने के लिए रेखा को इस तरह विभाजित किया जाता है कि उसके बड़े हिस्से का छोटे हिस्से से अनुपात समूची रेखा के बड़े हिस्से से अनुपात के बराबर हो। यह अनुपात लगभग 5/8 होता है। यह अनुपात जहाँ कहीं भी प्रयुक्त हो अक्सर आदर्श माना गया है। वोल्तेर ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि ''हाथ से निर्मित कलाओं में भी अदृश्य ज्यामिति होती है।'' स्वर्णिम अनुपात को प्रथम सूत्रबद्ध करने का श्रेय वित्रुवियस को जाता है जिस पर पुनरुत्थान काल में ल्युका पाचिओली ने अधिक संशोधन करके उसे दिव्य अनुपात (Divine proportion) नाम से प्रकाशित किया जिसके लिए लिओनार्दो दा वींची ने रेखा–लेख बनाये थे।

(85) सतह, पृष्ठ, धरातल, तल (Surface)
यह क्षेत्रदर्शक है व उसकी केवल लम्बाई व चौड़ाई होती है, मोटाई नहीं होती।

(86) सम्मिति, सममिति (Symmetry)
आकृति या रचना की मध्यवर्ती रेखा या समतल की दोनों ओर समरूपता।

(87) सुसंगति (Harmony)
रेखाओं, रंगों, क्षेत्रों आदि कला के मूलाधारों का चित्र में आन्तरिक एवं अन्य मूलाधारों से सामंजस्य।

(88) स्टेन्सिल, क्षेपांकन आकृति (Stencil)
कागज जैसे पतले समतलीय पृष्ठ को काटकर छापने हेतु बनायी आकृति या चित्र।

(89) स्वर्णानुपात
यूनानियों द्वारा विकसित अनुपात जिससे सौन्दर्यानुभूति में सहायता मिलती है। इस क्रम 2 : 3 : 5 : 8 : 13 : 21 : आदि है।

(90) स्थिरीकरण (Fixing)
चॉक, पेंसिल, कार्बन या पेस्टल जैसे अस्थिर माध्यमों में बनाये चित्रों को कागज पर उचित द्रव का छिड़काव करके स्थिर करना।

पारिभाषिक शब्दावली

अर्द्धचित्र - Relief
अधखुली आँख - Halfclosed eyes
अर्ध मूर्ति (अर्ध प्रतिमा) - Bust
अर्धछटा - Half-tone
अक्षर कला - Calligraphy, Lettering
अंकन - Drawing
अंग - Limb, Canon
अकादमी - Academy
अश्ममुद्रण - Lithography, Surface printing
अमूर्त - Abstract
अमूर्त - Abstract
अमल–लेखन - Aquatint, Etching
अधिष्ठापन - Installation
अक्षिपटल - Retina
अभिधा - Denotation
अभियोजन - Adjustment
अभिप्राय - Motif
अभिज्ञान - Recognition
अभिव्यंजना - Expression
अभिव्यक्ति - Expression
अभिवृत्ति - Attitude
अतियाथार्थवाद - Surrealism
अतिन्द्रिय - Transcendental
अतिवाद - Extremism
अन्विति - Unity
अभ्यास - Practice, Training
अभ्यास चित्र - Sketch
अपकर्ष - Anticlimax
अपरिष्कृत - Coarse
अपारदर्शी - Opaque
अज्ञेय तत्व - Noumenon
असंगति - Anamoly
असमिमतीय - Asymmetrical
अस्तर - Primer, Priming
अवधारणा - Concept
अवबोधन - Perception
अवकाश - Space
अचेतन - Unconscious
अचल - Region
अर्नुकन - Rendering

अनुरूप - Analogous
अनुकृति - Copy
अनुकरण - Imitation
अनुचित्रित मुद्रण - Offset printing
अनुभव - Experience
अनुपात - Proportion
अनुरेखन - Tracing
अनुदर्शी (प्रदर्शनी) - Restropective (exhibition)
अन्तराल - Space
अन्तर्ज्ञान - Sixth-sense, Intution
अग्रभाग - Foreground
अलंकृत शैली - Decorative -Style
अलंकरण - Decoration
अलकार - Rhetor
अश्लील - Obscene
अलौकिक - Imaginative, Supersensus
आधुनिक कला - Modern art
आयाम - Dimension
आघात - Accent
आख्यान - Fable
आद्यबिम्ब - Archetype
आकृति - Figure, Shape, Form
आकृति उत्कीर्णन - Intaglio
आकृतिमूलक - Figurative
आकार - Size
आकाशीय दूरदृश्यलघुता - Aerial perspective
आदिरूप - Prototype
आदिम - Primitive
आदिम कला - Primitive art
आहार्य - Ariculate, Acquired
आभास - Semblence, Appearance
आरोपण - Projection
आरेख - Diagram
आरेखन - Drawing
आदर्श - Model, Ideal
आदर्शवाद - Idealism
आवक्ष मूर्ति - Bust
आवर्तन - Repetition
आवेग - Impulse
आफसेट मुद्रण - Offset printing

आत्म स्वीकृति - Confession
आत्म–चित्र - Self-portrait
औचित्य - Propriety, Decorum
आनन्द - Delight
आलंकारिक - Ornamental
आलंकारिक रचना - Pattern
आलम्बन - Plumb line
इम्पेस्टो - Impasto
इन्द्रियवाद - Sensualism
इच्छा - Desire
उभार - Relief
उपमा - Simile
उद्दीपक - Stimulus
उपाख्यान - Episode
उद्भावना - Ideation
उदात्त - Lofty, Sublime
उत्कीर्ण - Engraved
उत्तरोत्तर क्रम - Successive order
उज्जवल - Bright
ऊष्ण रंग - Warm colour
ऊर्ध्व - Vertical
एकाकी - Solitary
एकाश्म - Monolith
एकवर्णी - Monochromatic
एकवर्णी चित्रण - Monochromatic painting
ऐन्द्र - Sensuous
ओप - Glaze, Patina, Overcot, polish
कर्णवत् - Diagonal
कठोर किनार चित्रण - Hard-edge painting
कथानक (अभिप्राय)रूढ़ि - Motif
कल्पित - Imaginary
काष्ठ कर्तन - Wood cut
कांच चित्रण - Glass painting
काम - Pleasure
कौशल - Craftsmanship, Virtuosity, Skill
कौतूहल - Interest, Eagerness
कोलाज - Collage
काल - Time, Period
काल दोष - Anachronism
कुण्डली–चित्र - Scroll
कुट्टी - Papier mache
कैनवास - Canvas
कलम (शैली) - Bursh, Style of painting, School
कल्पना - Imagination
कला - Art
कला शैली - School, Style
कला वीथी - Art gallery
कला–तत्व - Art of the art's sake
कलाकार - Artist
कलापारखी - Connoiseus
क्रेयान - Crayon
खड़िया - Chalk
खनिज रंग - MIneral colour
खाका - Lay out
खड़ी रेखा - Vertical line
गति - Movement, Motion
गतिशील - Dyanamic
गीताम्क - Lyrical
गो मूत्रिका - Meander
गोदना - Tattooing
ग्वाश - Gouache
गच - Stucco
गुफा चित्र - Cave art, cave painting
घनत्व - Solidity, Volume
चमत्कार - Amazement
चारू - Lovely
चारण - Bard
चेहरा - Face, mask
चेतन - Conscious
चेतना - Sentience
चित्र - Picture, Painting
चित्रण चाकू - Painting Knife
चित्रकला - Art of Painting
चित्रारोपण - Montage
चित्रोपम - Picturesque
चित्रवल्लरी - Frieze
चित्रित - Painted
चित्रित पर्दा - Tapestry
चित्तवृत्ति - Fluctuations of mind
चिन्ह - Sign
चिन्तन - Thinking
छींट - Batik
छाया - Shade
छाया प्रकाश चित्रण - Chiaroscuro

छायाचित्र - Silhoutte
छाप चित्र - Print
जटिलता - Complication
जनसंचार माध्यम - Mass-media
जनजाति चिन्ह - Totem
ज्यामितिक - Geometric
ज्यामितीय आकार - Geometric form
टेम्पेरा रंग - Tempera colour
ठंडे रंग - Cool colours
ठप्पा - Block, Seal
डाय - Dye
ड्राय पाइंट - Dry-point
ढांचा - Armature, Cradling
ढालना - Casting
तृतीय रंग - Tertiary colours
तंत्र कला - Tantra art
ताम्र - Copper
तारपीन - Turpentine
तादात्म्य - Empathy
तोरण - Arch
तान - Tone
ताल - Head, Cannon of Proportion
ताल - Rhythm
तेल चित्रण - Oil painting
तेल रंगीय छाप चित्र - Oleograph
तनाव - Tension
तूलिका - Brush
तूलिकाघात - Bursh stroke
तिपायी - Easel
थंका - Thunka
दरबारी कला - Court art
दस्तकारी - Handicraft
दूरी - Distance
दूरदृश्यलघुता - Perspective
दृश्य - Visible, Scene
दृश्य कलाएँ - Visual arts
दृष्टि - Vision, Sight
दृष्टि रेखा - Eye-level, Eye-line
दृष्टिजन्य मिश्रण - Optical mixture
दिव्यानन्द - Ecstacy
द्विमितीय - Two dimensional
द्विवर्णिक - Dichromatic
द्वितीय रंग - Secondary colours
धब्बांकन - Patch work
धड़ प्रतिमा - Torso
नीति निरपेक्ष - Amoral
नेत्रीय - Optical
नैतिक - Moral
नैसर्गिक - Innate, Natural
नन्दतिक - Aesthetic
नटराज - Nataraja
नगन–मूर्ति - Nude
नग्न–चित्र - Nude
निष्ठा - Sincerity
निष्कर्ष - Empitome
निष्पादन - Execution
निरूपण - Portrayal
नियम - Rule, Canon of proportion
नियमन - Control
निजिता (रंग की) मान - Hue
पर्यावरण - Environment, Milieu
पर्यवेक्षक - Observer
परिष्कार - Polish, Refinement
परिकल्पना - Design, Disegno
परिमाण - Quantity
परिप्रेक्ष्य - Perspective
पवित्र प्रतिमा या मूर्ति - Icon
पहेली - Riddle, Maze
पर निरपेक्ष - Exclusive
परम्परागत कला - Traditional art
परत पद्धति रंगांकन वाश - Wash painting
पाषाण युग - Stone age
पाण्डुलिपि - Manuscript
पात्र - Character, Pot
पार्श्व - Side
पार्श्व दृष्टि - Side View, Profile
पोस्टर रंग - Poster colour
पोत - Texture
पच्चीकारी - Mosaic
पुराण कथा - Myth
पुरातन - Archaic
पुरालेख - Epigraph
पुनरावृत्ति - Repetition
पट–पत्री, कुण्डलित पट - Scroll

पूर्णरूप - Prototype
पूरण - Filling
पूर्वाभास - Foreshadow
पूर्वापर क्रम - Preceding Order
पलस्तर - Plaster
प्रक्षेपण - Projection
प्रकृति चित्रण - Landscape painting
प्रकृत - Naivite
प्रकार - Genre, Kind
प्रबलता - Intensity
प्रमाण - Size
प्रविधि - Technique
प्रतिमा - Image
प्रतिमा (मूर्ति) - Statue
प्रतिबिम्ब - Image, Reflection
प्रतिक्रिया - Reaction
प्रतिनिधित्व - Representation
प्रतिभा - Talent
प्रतिपादक - Exponent
प्रतिस्थापना - Antithesis
प्रतिच्छाया - Shadow
प्रभाविता - Dominance
प्रशंसा - Praise
प्रौढ़ता - Maturity
प्रागैतिहासिक कला - Prehistoric art
प्रसंग संकेत - Alusion
प्रस्तुति - Representation
प्रत्यय - Idea
प्रतीक - Symbol
फलक - Panel, Paper-board
फूलकारी - Diaper
फ्रेस्को - Fresco
बहुदेववाद - Polytheism
बहुवर्णीय - Polychromatic
बहुआयामी - Multi dimensional
बोध - Perception
बुनकारी - Textile art
बुनावट–पोत - Texture
बल - Value, Emphasis
बिम्ब - Image, Model
भंगिमा - Pose
भाव - Emotion, Mood
भावना - Feeling
भूदृश्य - Land Scape
भित्ति चित्र - Fresco, Mural painting
मृण्मूर्ति - Terra cotta
मेहराब - Arch
मान - Value
मानसिक - Mental, Intellectual Rational
मानवचित्रण - Life Painting
मुलम्मा करना, ओप - Gilding
मनोविकार - Emotion
मनोहर - Seductive
मनोदृष्टि - Attitude
मूर्त - Concretem Formal, Morphological
मूल रंग - Primary colours
मूल्य - Value
मूलभाव (अभिप्राय) - Motif
मिथ्याभास - Hallucination
मूलप्रवृत्ति - Instinct
यथार्थवाद - Realism
युक्ति - Skill
रंजक - Painter
रंग–विधान - Colour scheme
रंगत - Hue
रंगत हल्की - Tint
रंगत गहरी - Shade
रसिक - Critic
रीति - Manner
रोमांच - Thrill
रस - Aesthetic Delight
रसास्वादन - Appreciation
रसानुभव - Aesthetic experience
रचना - Creation
रत्यात्मक कला - Erotic art
रेखीय परिप्रेक्ष्य - Linear perspective
रेखा - Line
रेखांकन - Drawing
रूप - Form
रूपंकर कलाएँ - Plastic arts
रूपान्तर - Adaptation, Transformation
रूपवाद - Formalism
लय - Rhythm, Melody
लघुचित्र - Miniature painting (work of art)

लघुतम कला - Minimal art
लक्षण - Attribute, Sign, Symbol
ललित - Fine
ललित कल्पना - Fancy
ललित कलाएँ - Fine arts (French-Beaux arts)
लाइनो कट - Lino cut
लालित्य - Grace
लावण्य - Charm
लोककला - Folk Art
लोकोत्तर - Supersensous
लोपी बिन्दु - Vanishing point
वर्ण - Chrome, Hue
वर्ण नियोजन - Descriptive art
वर्ण चक्र - Chromatic circle, colour circle
वर्ण तीव्रता - Intensity of colour
वर्णहीन - Achromatic
वर्णक्रम - Spectrum
व्यंग्य - Sugestive
व्यक्ति चित्रण - Life, Life drawing
व्यवहार - Behavior
वयन (धरातलीय गुण) - Texture
वर्णिक - Chromatic
वर्णिका भंग - Brushing
वर्तिका - Brush
वर्तिका - Pencil, Crayon, Pastel
वारनिश - Varnish
वास्तविक - Actual, Real
वास्तु कला (वास्तु विद्या, स्थापत्य) - Architecture, Architectonics
वास्तुकार - Architect
वातावरणीय परिप्रेक्ष्य - Aerial perspective
वस्तुचित्रण - Still-life painting
वस्तुनिष्ठ - Objective
वस्तुनिरपेक्ष कला - Abstract art
वर्तना - Shading
वेदी - Altar
विबग्योर - VIBGYOR(Violet, Indigo, Blue, Green, Orange, Red)
विषयवस्तु - Content
विकृतिकरण - Distoration
विकास - Development
विरोध - Contrast
विज्ञापन - Advertisement
विस्तरण - Elaboration
विस्तार - Extension
विश्वसनीय - Believable
विट्रुवियन आकृति - Vitruvian figure
शबीह - Portrait
शरीर रचना विज्ञान - Anatomy
शास्त्रीय - Classical
शैक्षणिक - Academic
शैली - School, Style, Diction
श्वेत मिश्रित रंग - Gouache
शिष्ठता - Decorum
शिल्प - Craft
शिल्पकारिता - Craftsmanship
शिलाचित्र - Rock painting
शिलालेख - Epigraph
सद्य - Instantly
संयोजन - Composition
संयोग - Accident
संरचना - Structure
संवाहन - Conduction
संवेदन - Sensation
संवेदनशील - Sensitive
संगति - Consistency
संग्रहालय - Museum
सम्प्रेक्षण - Communication
समाधि - Concentration
समाधि गुफाएँ - Catacombs
स्मारकीय - Monumental
समन्वय - Synthesis
सम्मिति - Symmetry
सहयोग - Unity
सहज - Spontaneous, Naive
सक्रान्ति - Transition
सुवर्ण अवच्छेद - Goldern section
सुन्दर - Beautiful
सत्य - Face
सतही मुद्रण - Surface printing
सत्याभास - Verisimilitude
सज्जा कला - Decorative art
सर्जनशीलता - Creativity
सूक्ष्म - Abstract, Mycoroscopi

सृजनात्मक - Creative
स्थायीभाव - Sertimert, Pemianert mood
स्थापित कला - Academic art
स्वर्णिम अनुपात - Golden section
स्फ्यूमातो (इटा.) - Sfumato
स्वप्न - Fantacy
स्वचलता या स्वयंचालितता - Automaticism
स्तम्भ - Pillar
स्तर - Layer, Standard, Level
स्तूप - Stupa
साधारणीकरण - Generalisation
सामंजस्य - Concordance, Harmony
सादृश्य - Similitude
सौम्यरूप - Idyll
सौन्दर्य - Beauty
सौन्दर्यशास्त्र - Aesthetics
सिद्धान्त - Principle
स्थिति - Situation
स्थिर - Static
हरण - Plagiarism
हस्तलिपि कला - Chirography
श्रृंगारिक - Erotic
श्रृंगार - Erotice
क्षैतिज - Horizontal
क्षेपांकन–आकृति - Stencil drawing, stencil
क्षितिज रेखा - Horizontal line